१

विधि-विधान

उन्नीसवीं सदी और बीसवीं सदी के संधि-काल में इस संसार में एक नए प्राणी का जन्म हुआ !

दुनिया में प्रतिक्षण कितने ही प्राणी जन्म लेते हैं और कितने ही मरते हैं। जन्म के समय बालक की माता को भी बालक के भविष्य के संबंध में तनिक भी कल्पना नहीं होती है। संसार के प्रसिद्ध महापुरुषों के विषय में प्रायः ऐसी घटनाएँ होती हैं, कि उनके नाम और पराक्रम जब समस्त धरती पर छा जाते , तभी लोग उनके जन्म-काल, तिथि, मास और शुभाशुभ-योग देखने लग हैं और उनके विषय में चर्चा करने बैठते हैं। इसके बाद ही, लोगों को पुरुषों का जन्म-काल अलौकिक लगता है, नक्षत्र ऊँचे और अनुकूल प्रतीत हैं और उनकी जन्म-पत्रिकाओं के दूसरे लक्षण भी शुभ लगते हैं; परन्तु, जन्म-काल में तो उनके भविष्य को लेकर, किसी को कोई कल्पना नहीं है।

लेकिन ऊपर वर्णित मानव-प्राणी के जन्म के समय एक ऐसा व्यक्ति वहाँ स्थित था, जिसके मन में इस प्राणी के भावी पराक्रम से संबंधित अपेक्षाएँ, हलचल था। यह व्यक्ति दूसरा कोई नहीं, शिशु की माता ही थी।

रत्नागिरि ज़िले के राजापुर गाँव में, सुन्दर आँगन वाले एक घर में आज

निस्तब्ध शांति छाई थी। सूर्योदय होने में कुछ देर थी। सदा के नियमानुसार सत्यवती आज भी ब्राह्ममुहूर्त में उठी और मुँह धोकर, उस खण्ड में गई, जहाँ देव-प्रतिमा रखी थी। वह प्रभु-प्रार्थना में मग्न हुई।

बचपन से ही उसका स्वभाव भावुक, श्रद्धालु और प्रेमल था, अतएव उसने भक्ति-पथ पर पर्याप्त और त्वरित प्रगति पाई थी। आज वर्षों की उसकी मनोकामना पूर्ण होने का सुयोग आ पहुँचा था। इसके पहले, बालक को जन्म देने की घड़ी समीप आ गई है, यह जानकर उसके हृदय में आनन्द समाता न था। परन्तु, इसके साथ ही उसके मन में कुछ भय भी था। अपने पति के प्रेम का प्रतीक आज उसे साकार दृष्टिगोचर होगा, इस विचार से तरंगित उसका आनन्द उछल रहा था, किन्तु, भूतकाल की सुखद स्मृति के पश्चात भविष्य की कल्पना आते ही उसके मन में थोडा भय भी फैल जाता।

सत्यवती को बचपन में अच्छा शिक्षण-संस्कार मिला था। वह दिन का महत्व जानती थी और उसका हृदय पुकार-पुकार कर कह रहा था कि अब वह वेला आ पहुँची है। अंतःकरण से उत्कट श्रद्धापूर्वक ईश्वर की प्रार्थना करने के उपरान्त, वह ऊपर गई, और वहाँ ऐसी सुन्दर रीति से कि उसे किंचित त्रास न हो, एक बालक का प्रसव हुआ।

दो सदियों के संधि-काल में इस बालक ने इस संसार में जन्म लिया!

वह बालक को अपने दोनों हाथों में लेकर, अकल्प्य-आनन्द से बार-बार उसकी ओर देखने लगी। उस समय उसके अंतर में अनेक विचार उठ रहे थे। कितना सुन्दर, कैसा गोरा और प्यारा था यह शिशु!

"यह अवश्य अपने बड़े मामा-जैसा ही दिखता है।"—सत्यवती ने मन ही मन कहा और, एक अज्ञात स्मृति के उदय होने से, उसका हृदय काँप उठा।

"ठीक उसी समय इसने क्यों जन्म लिया है? कोई अघटित-कृत्य तो इसके हाथ से नहीं होने वाला है? हे ईश्वर! इसके अदृष्ट भविष्य में भाग्य में, कौन जाने क्या-क्या लिखा है?"—ऐसे कई विचार उसके मन-मस्तिष्क में घूमने लगे।

भोर का मंद-मंद शीतल वायु खिड़की से आ रहा था। बाहर के बगीचे में, डालियों पर झुके हुए फूलों की गंध को हवा ने चारों ओर बिखरा दिया था। वह आँखें बंद किए विचार मग्न थी। उसके अंतर्सागर में अनेक तरंगे उठ रही थीं, चल-चित्र के समान, विगत-काल के कई प्रसंग एक-एक कर उसके मन-श्चक्षु के सम्मुख आ-जा रहे थे—

यही घर! आज से लगभग तीस साल पूर्व इसी घर में उसका भी जन्म हुआ था।

उसके स्वर्गीय, तेजस्वी पिता उसके सामने आ खड़े हुए। पुराने जमाने में वे एक शूरवीर, स्वदेश-प्रेमी और प्रखर पराक्रमी सैनिक थे। उनका स्वभाव स्वतंत्र था। प्राचीन हिंदू-संस्कृति के पवित्र-वातावरण में उनका पालन हुआ था और इसी संस्कृति में, वे पूर्णरूपेण रँगे थे।

असीम देशानुराग और राष्ट्र-प्रेम की प्रेरणा से उन्होंने सन् १८५७ के विप्लव में भाग लिया था। वे मातृभूमि की स्वतंत्रता के निमित्त, प्राणों की परवाह न कर, वीरतापूर्वक लड़े थे, किन्तु दुर्भाग्य ने रास्ता काटा कि उनका समस्त देशाभिमान, उनका पराक्रम और उनकी वीरता सब व्यर्थ रहे। उन्हें शस्त्र छोड़ देने पड़े और जिन हाथों में तेज़ हथियार चमकते थे, उन्हीं हाथों में उन्हें हल पकड़ना पड़ा।

उत्तर छोड़कर, वे दक्षिण आए। और अपने पूर्वजों के गाँव में रहने लगे। इसके बाद, वे भी, दूसरे लोगों की तरह, लोक-व्यवहार में लग गए, परन्तु भीतर-ही-भीतर उनके हृदय में धक्-धक् कर एक ज्वाला जल रही थी।

अपनी पराजय का बदला लेने और मातृभूमि को स्वतंत्र करने के लिए, वे अपने मन-ही-मन तड़प रहे थे। सारा देश दासता की बेड़ियों में बँधा था और उनकी ओर देख रहा था। लोगों में तेज न रहा था, देश पतन के पंथ पर जा रहा था।

और यह हकीकत उनके हृदय को कष्ट दे रही थी।

लेकिन वे अकेले क्या कर सकते हैं? परिस्थिति तेजी से बदलती जा रही थी। जूना जमाना अदृश्य हो गया था और, उसके स्थान पर, नए जमाने का

सर्वभक्षक प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगा था।

उनके अपने गाँव में भी पश्चिमी सुधारों ने अपना प्रभाव फैलाना शुरू कर दिया था, परन्तु उनके प्रचण्ड आत्म-तेज ने यह सहन नहीं किया।

अँग्रेजों के बनाए रास्ते पर वे चलते न थे। रेलगाड़ी का प्रवास तो उन्होंने किया ही नहीं। उन्होने यंत्र-निर्मित वस्त्र कभी न पहने। उन्होंने अपने-आपको मानो अपने घर में ही समा दिया था। दूसरे लोगों से उन्होंने कोई संबंध न रखा था। मन में इस नई (अंग्रेज़) सरकार को वे शाप देते थे और उसके विनष्ट हो जाने की कामना करते थे।

उनके चार पुत्र और एक पुत्री, यों पाँच संतानें हुईं। अब तो इन बालकों पर ही उनकी समस्त आशाएँ निर्भर थीं। उन्होंने बालकों को बचपन से ही राष्ट्र-स्वातंत्र्य और फिरंगी-द्वेष का मंत्र दिया था। ऐसा करने से उनका आशय यह था कि बालक बेर-अबेर अपना कौशल दिखलाएँ और देश का विगत वैभव पुनः प्राप्त करें।

उन्होंने बालकों के नाम भी इस प्रकार रखे थे, कि वे पराक्रम के द्योतक प्रतीत हों—विक्रान्त, महेन्द्र, उपेन्द्र और विजयेन्द्र, और पुत्री का नाम रखा था, सत्यवती।

विक्रान्त से उन्हें बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। इस याद के साथ ही सत्यवती को अपने प्यारे भाई का स्मरण हुआ। और उसका हृदय गद्गद हो गया—"अहा, कितना समझदार और धीर था वह! मुझे वह कितना प्रिय था! कितना प्रेमल, उदार और कितना त्यागी!"—इस याद पर, सत्यवती ने एक निःश्वास लिया।

विक्रान्त की बुद्धिमत्ता अलौकिक थी। उसकी देह सुदृढ़ थी। पिता ने उसे और दूसरे पुत्रों को यथाशक्ति शिक्षा दी थी। संस्कृत के अतिरिक्त अरबी और फारसी भाषाएँ सिखलाई थीं। घुड़सवारी, वीरों के खेल और वीरोचित कलाओं की उन्हें समुचित शिक्षा दी गई थी। पिताजी के पितृवत्सल हृदय में प्रतिपल यह आकांक्षा रहती थी कि विक्रान्त शिवाजी-जैसा कुशल सेनानायक बने और देश में स्वराज्य लाए!

अँग्रेजों से द्वेष रखनेवाले इस वृद्ध वीर को बेमन भी अपने बेटों को अँग्रेज़ी शिक्षा देनी पड़ी। इसमें उनका यह उद्देश्य था और उन्होंने यह कल्पना की थी कि बेटों को विदेश भेजकर सैनिक और यंत्र-विद्या हस्तगत कर लेनी चाहिए। और जब वे देश लौट आएँ, तो उन्हीं के हाथों विप्लव का दावानल सुलगाना चाहिए।

जिस समय उस वृद्ध व्यक्ति का हृदय इस प्रकार अनेकानेक मनोरथों की रचना कर रहा था, उस समय विक्रान्त की मनोभूमि एक दूसरे ही आधार पर बन रही थी। अपने पिता का देशाभिमान और आत्म-तेज उसमें भी था, परन्तु उसके मन में विद्वेष की प्रेरणा न थी।

विक्रान्त का मन अधिक उदार, विशाल और विचारवान् बन रहा था। उसमें सहृदयता का विकास हो रहा था। घोड़े को चाबुक मारना या पशु-पक्षियों का शिकार करना, उसे असह्य लगता था। वह पितृ-भक्त था। वह जानता था कि उसके प्रिय पिता की सभी अभिलाषाएँ उसी पर केन्द्रित हैं। उसके भाई भी इस अभिलाषा में सम-भागी हैं, यह भी उसे ज्ञात था। लेकिन पिताजी की अभिलाषा उसके हृदय को पूरी तरह आकर्षित न कर सकी।

वह प्रत्येक व्यक्ति से घुल-मिल जाता और सबका प्रिय बन जाता था। गोरे अध्यापक भी उस पर प्रसन्न रहते थे और अध्यापकों की इस प्रसन्नता के परिणाम में अँग्रेज-समाज में उसके कई मित्र बन गए थे, जो उसपर ममता रखते थे। परंतु, पिताजी कहते—"गोरों का यह सब ढोंग है और यदि ढोंग न हो, तो भी, वे तुझ अकेले के साथ अच्छा व्यवहार रखते हैं, इससे देश को क्या लाभ? हमारी गुलामी तो प्रतिदिन बढ़ती जाती है, यह क्या तुझे नज़र नहीं आता?"

यों, विक्रान्त की दशा करुण होने लगी। अन्न-जल उसे रुचता नहीं। ऐसी स्थिति में उसे धीरज देने वाला, आश्वासन देने वाला इस संसार में कोई न था। उसकी माँ का भी सरस्वती के जन्म के पाँचवें वर्ष बाद देहान्त हो गया था।

विक्रान्त कवि था। भावना-प्रधान था। परन्तु उसके करुण गीत और

ललित लेख उसके पिता को ज़रा भी पसन्द न थे। उनका तिरस्कार करते हुए, वे कहते—"वीरों को तो तलवार ही शोभा देती है। ऐसे रस-गीत तुम्हारे जैसे लोगों को ही शोभा देते हैं।"

विक्रान्त बीस वर्ष का हो गया था। उसके पिता ने अब उसे विदेश भेजकर अपना पिछला स्वप्न पूरा करने का निर्णय किया। विक्रान्त को पास बुलाकर, उन्होंने अपने मन की सभी बातें समझाईं और उस पर जो उत्तरदायित्व है, उसका भान कराया।

पिता की बातें सुनकर, उनसे इन्कार कर देने की, विक्रान्त की ज़रा भी हिम्मत न हुई। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर, उसने विदेश प्रस्थान किया।

विदेश जब पहुँचा, तो विक्रान्त वहाँ के क्रान्तिकारियों से सम्पर्क साधने में लग गया। उसकी सहृदयता और मुक्त-प्रकृति तथा बुद्धिमत्ता का वहाँ के लोगों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। गोरी लड़कियाँ उसके शारीरिक सौन्दर्य पर मोहित हुईं और उसकी वीरता से प्रभावित हुईं। उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पण कर देने की तत्परता भी दिखलाई। किन्तु, विक्रान्त का शील और उसकी नैतिकता उच्चकोटि की थी कि वह उन सब प्रलोभनों के जाल से बच गया और अविचल रहा।

सरकार की तीक्ष्ण दृष्टि और लम्बे हाथों का उसे पूरा ख़याल न था। कुछ दिनों बाद उसके दोनों भाई भी आ पहुँचे। इन सब ने दूसरे क्रान्तिकारियों के साथ मिलकर, एक बड़ा दल और व्यूह बनाया और इस व्यूह को अमल में लाने के लिए, निश्चयपूर्वक सब स्वदेश लौटे। स्वदेश लौटे उन्हें एक हफ्ता भी न बीता होगा कि विश्वासघातियों ने अपना दाँव लगाया। तभी एक अधरात पुलिस ने विक्रान्त के डेरे पर छापा डाला और तलाशी ली। इस समय विक्रान्त का आत्मतेज झलक उठा। चाहे कुछ भी हो, वह वीर पुत्र था। कायर की भाँति गिरफ्तार होकर, जेल में सड़ते रहना, उसे कैसे सहन हो सकता था ? शेर की तरह लड़ता-लड़ता, घायल होकर, वह गिर पड़ा।

मरणोन्मुख विक्रान्त के घायल सीने पर अपना घुटना टिकाकर, इंस्पेक्टर ने उसे पिस्तौल का निशाना बनाते हुए पूछा था—"विक्रान्त और लड़ोगे ?"

दिव्य-तेज से जगमग विक्रान्त के मुख से अग्नि-शलाका निकली—"जब तक तन में प्राण हैं, स्वतंत्रता के लिए लड़ूँगा।"

इंस्पेक्टर यह सुनकर, दंग रह गया और उसके सीने से पैर हटाकर, सम्मान में अपना टोप उतार लिया। उस वक्त सत्यवती वहीं थी। पाँच वर्ष बाद उसका भाई स्वदेश लौटा है, इसीलिए उससे मिलने के लिए वह बम्बई गई थी। पूरे पन्द्रह वर्ष की तरुणी थी वह। इस घटना का कारण क्या है, इसकी उसे कुछ खबर न थी। उसका भाई सिंह की भाँति लड़कर, घायल हुआ है और गिर पड़ा है, यह देखकर, उसका हृदय वश में न रहा। वह एकदम दौड़ी गई और भैया का मस्तक अपनी गोद में लेकर आँखों से अश्रु बहाने लगी।

यह प्रसंग, घटना आज सत्यवती की नज़र के सामने, साकार आकर खड़ी हो गई थी। वह उदास, अकेली और भयानक कमरा! जहाँ-तहाँ रक्त की रेखाएँ, चारों बाजू खड़े काले कपड़ों वाले पुलिस के सिपाही! और इन सब के बीच, मरण के तट पर खड़ा हुआ, उसका प्यारा भाई विक्रान्त! और उसी विक्रान्त का सिर अपनी गोद में रक्खे वह झर-झर आँसू बहा रही थी।—यह दृश्य उसकी दृष्टि का चल-चित्र बना। यह भयानक दृश्य कभी विस्मृत हो सकता है!

उस समय विक्रान्त ने कहा था "मुझे ज़रा उठाकर बिठा दे और पानी पिला!" सत्यवती ने यही किया। इसके बाद विक्रान्त ने अपने गले में लटकी एक छोटी तस्वीर अपने काँपते हुए हाथ में ली। यह तस्वीर भारतमाता की थी। इसे अंतिम वंदन किया और अपने गद्गद कंठ से उसने राष्ट्र-गीत गाना शुरू किया। माता की सेवा में तन, मन, धन अर्पण कर देने वाले एक साहसी और सहृदय आत्मा का भावगीत था वह! सत्यवती ने देखा कि उस वक्त, वहाँ उपस्थित व्यक्तियों में से एक भी आदमी ऐसा न था, कि इस करुण गीत को सुनकर, जिसके नयनों से अश्रुधारा न बहने लगी हो।

विक्रान्त ने उसके कान में कहा—"पिताजी से कहना कि आपकी आज्ञा के अनुसार मैंने अपनी देह जन्मभूमि के लिए अर्पित की है। मेरा साक्षी ईश्वर है। मैंने यथाशक्ति, यथाभक्ति प्रयास कर देखा है। ईश्वर इच्छा। मेरे इस जन्म का काम आज पूरा हो रहा है।"

इतना कहने पर, विक्रान्त के प्राण-पँखेरू उड़ गए। फिर सत्यवती के रुदन का पार न रहा। विक्रान्त उसका जीवन-सर्वस्व था। वह उसका आदर्श वीर था। उसके स्नेह से सत्यवती को अपार सांत्वना मिलती थी।

अब कौन रहा? वृद्ध पिता और एक मात्र भाई, विजयेन्द्र! परन्तु विजयेन्द्र भी इस असार संसार में अधिक दिन न रहा। अपने भाई से दगाबाज़ी कर, जिस व्यक्ति ने भाई को गिरफ्तार करवा दिया था, उसे विजयेन्द्र ने मार डाला और हँसते-मुँह फाँसी पर चढ़ गया। हो गया! वृद्ध पिता की आशाएँ यों टूक-टूक हो गईं। पिता को बड़ी ठेस पहुँची। उनके हृदय को यह बात बार-बार सालने लगी कि उनकी शिक्षाओं का प्रतिफल इस सीमा तक, धारणा से बाहर प्रकट होगा! अब इस विष के घूँट उन्हें असह्य लगने लगे। इसके उपरान्त, तुरन्त ही पुलिस की छिपी हुई, गुप्त छायाएँ उनके आस-पास मँडराने लगीं। लोग भी उन्हें सशंक दृष्टि से देखने लगे। भयभीत पड़ौसी उनसे घनिष्ट संबंध रखते डरते थे।

पिताजी को विक्रान्त की मृत्यु से भयंकर आघात पहुँचा था। विक्रान्त के गुण, उसका सहृदय स्वभाव, और दूसरे सुलक्षण बारम्बार याद कर, इस वृद्ध को अपरम्पार पीर होती थी। कई बार उनके मन में यह भी विचार आता कि मैंने नाहक ही विक्रान्त का बलिदान दिया है, और विक्रान्त पर एक प्रकार का जुल्म किया है। परन्तु अब शोक करने से क्या लाभ! तथापि, वृद्धावस्था में लगे इस आघात और मर्मान्त दुःख के फलस्वरूप वे बिछौने पर पड़ गए। उन्हें यह प्रतीत होने लगा कि मृत्यु अब उनकी राह देख रही है। घर में इकलौती पुत्री के सिवाय, दूसरा कोई न रहा था, और वह भी भोली भाली और नादान! "मेरे जाने पर इसका क्या होगा?"—ऐसा विचार उन्हें आता रहता और उनकी बीमारी बढ़ती जाती।

सत्यवती को यह पुरानी बात याद आई और उसके मुँह से एक सिसकी निकल गई। उस समय उसके भाई का, बचपन का मित्र विश्वनाथ, जो कई वर्षों से अपने व्यवसाय को लेकर उत्तर में भ्रमण कर रहा था, इस घटना की खबर पाकर, पिताजी को आश्वासन देने के लिए दौड़ा आया। उसने लोक-

समाज से बहिष्कृत इस घर में आकर, पिता की सेवा-चाकरी की थी। अंतकाल निकट आ जाने पर, वृद्ध पिताजी ने अपने हाथ से किस प्रकार इसे विश्वनाथ के हाथ में सौंप दिया था—यह दृश्य आज सत्यवती के सामने प्रत्यक्ष हुआ।

पिताजी मृत्यु-शैया पर अंतिम घड़ियाँ गिन रहे थे, उनके दोनों ओर विश्वनाथ और सत्यवती खड़े थे। पिता ने दोनों के हाथ मिला दिए और शुभ-आशीर्वाद देते हुए—सत्यवती से कहा था—

"बेटी! आज इस अन्तिम घड़ी में मैं तुझे जो कुछ कह रहा हूँ, उसे याद रखना। मैं तो जा रहा हूँ, लेकिन तेरे लिए कोई भौतिक वस्तु नहीं छोड़े जा रहा हूँ, इसका मुझे खेद है; किन्तु अपने पीछे एक वारसा छोड़े जाता हूँ, उसे तू बराबर यत्न से सहेजना। वह है मेरा ध्येय! जिस ध्येय को सिद्ध करने के लिए मैंने इतना-कुछ सहन किया, जिसके लिए मैंने अपने सर्वस्व का बलिदान दिया वह अपूर्ण, अप्राप्त ध्येय आज भी तेरे पिता के हृदय में सुलग रहा है। तू मेरी अंतिम कोंपल है। अब मैं अपनी समस्त आशाएँ तुझ पर छोड़कर, उस लोक जा रहा हूँ! तेरा सृजन वीर-माता बनने के लिए हुआ है। जो काम मेरे हाथ से अधूरा रहा, वह तेरे वीर-पुत्र के हाथों पूरा होगा—इस अभिलाषा को मन में लिये, मैं जा रहा हूँ।"—वृद्ध के ये अंतिम शब्द थे।

सत्यवती के सजल लोचनों से आँसू बहने लगे। वह उत्तर दे—इसके पूर्व ही पिताजी का प्राण-पंछी, इस लोक को छोड़कर, उड़ चला।

आज चौदह वर्ष-पूर्व का यह प्रसंग सत्यवती को याद हो आया। जिस कमरे में उसकी प्रसूति हुई, उसी में उसके पिता का स्वर्गवास हुआ था। इसी पलंग पर उन्होंने अपनी अंतिम इच्छा व्यक्त की थी। आज नई शताब्दी के आरंभ काल में वह एक पुत्र को जन्म दे रही है! यह पुत्र भविष्य में कौन-सा कौशल दिखलाएगा! क्या यह अपने वृद्ध नाना की अंतिम इच्छा, जो अधूरी रह गई थी, पूरी करेगा? और करेगा, तो किस मार्ग का अनुगामी बनकर?—इस विचार-चक्र पर वह चढ़ी थी!

वह अपने शिशु की ओर निर्निमेष देखती रही—"मानो विक्रान्त ने ही पुनर्जन्म लिया है।" वह बड़बड़ाई—"बेचारे की कितनी ही आशाएँ अधूरी रही होंगी। मुझ पर उसका अनन्त प्यार था।" और यों कहते-कहते उसकी आँख से आँसू छलकने लगे।

फिर-फिर वह नवजात-शिशु को देखने लगी और उसे चूमने लगी, और मन ही मन प्रभु-कृपा-किरण की याचना करने लगी।

२

शैशव

सत्यवती ने अपने बेटे का नाम मुकुन्द रखा।

सत्यवती की अंतर्दृष्टि से, अपने पिता और भाई का चित्र, कभी ओझल हुआ, परन्तु उसने तय किया था कि वह पूर्णतया सावधान रहेगी।

सत्यवती अपने पिता की मृत्यु से उत्पन्न दुःख को भूल जाय—इस प्रयत्न विश्वनाथ ने उसे भारत-भर के अनेक रमणीय स्थानों और पवित्र तीर्थों यात्रा कराई और कई वर्षों तक वे दोनों देश के विभिन्न प्रांतों की सैर करते जब भ्रमण और प्रवास से ऊब गए, तो राजापुर लौट आए। अब श्वनाथ ने बाहर का अपना काम-काज समेट लिया और खेती तथा पारमा- कार्यों में अपना मन लगाने का प्रयत्न किया। परन्तु सत्यवती के मन में तान-कामना सदै‿ रही थी, और कई वर्षों तक अपूर्ण रहने पर, अब भग- त्-कृपा से वह भी पूरी हुई और उसे मुकुन्द मिला था।

सत्यवती को पुत्र पाकर ही सन्तोष न हो गया। अपने बेटे के विकास और सकी शिक्षा की चिन्ता किसी भी माँ को स्वभावतया रहती ही है। सत्यवती अपने पिता से जो संस्कार मिले थे, वे अभी भी लुप्त न हुए थे, तथापि की अनेक विगत-वार्ताएँ काल के कराल पेट में कहीं ओझल हो जाती

हैं, और नई बातें, नए विचार और नए खयालात अमल में आते हैं। लोगों की मनोभूमि बदलती रहती है—यह सब वह अच्छी तरह समझती थी।

विश्वनाथ नए जमाने का आदमी था। वह अपनी पत्नी के कामों में कभी दखल न देता था, किन्तु उसे पुराने जमाने की परम्पराओं से चिमटे रहना जरा भी पसन्द न था। वह कहता—"जमाना बदल गया है, तो वेश-भूषा भी बदलनी चाहिए।" उसने कई विषयों में नए आचार-विचार को स्वीकार किया। वह मिल का बना कपड़ा खुशी से पहनता, विदेशी कागज खरीदता और कभी-कभी तो बाहर के सभा-समाज में चाय भी पी लेता। शहर में निवास होने से, वह कई बार सामाजिक-प्रार्थनाओं में भी भाग लेता। सत्यवती को यह अच्छा न लगता। वह तो अपने घर में, चर्खे पर सूत कातती और अपनी साड़ी का कपड़ा स्वयं ही बना लेती। लेकिन इन सब बातों में उसके अपने स्वतन्त्र विचारों की अपेक्षा, उसके पितृ-प्रदत्त संस्कारों का प्राबल्य अधिक प्रतीत होता था।

वे दोनों फिर से राजापुर आए, उसके बाद उनके पुराने बाड़े में फिर से सरगर्मी नज़र आने लगी। जिन दिनों बाड़ा बन्द था, उन दिनों गाँव में उसके विषय में अनेक प्रकार की चित्र-विचित्र चर्चाएँ चलने लगी थीं। कोई कहता—"इस बाड़े में दिन-दहाड़े भूत भ्रमण करते हैं। रात में मृत मनुष्यों के अस्थि-पिंजर भयंकर धूम-धड़ाके से बाड़े को गुँजा देते हैं।" आदि।

इन विचित्र अफ़वाहों के कारण, इस बाड़े का नाम ही 'भूतिया बाड़ा' पड़ गया था। परन्तु, सत्यवती के लौट आने पर, धीमे-धीमे, इस बाड़े की शोभा बढ़ने लगी थी। और अब तो सत्यवती के परिश्रम से उसमें एक छोटा-सा, सुन्दर बगीचा भी खिल उठा था। इस बीच मुकुन्द का जन्म हुआ। इससे तो, मानो इस बाड़े का रूप ही पलट गया! गाँव के स्त्री-पुरुष भी अब वहाँ आने लगे। अतीत की घटनाओं को कई वर्ष बीत गए थे और लोगों में सरकार के प्रति जो भय पहले था, वह अब न रहा था, कम हो गया था। इस स्थिति में यह सम्भव था कि सत्यवती गाँव के लोगों में घुले-मिले। उसका

स्वभाव मिलनसार, उदार और स्नेहशील था और अपनी हार्दिक सेवा-भावना के कारण, वह दिनोंदिन अधिकाधिक लोकप्रिय होने लगी। अब, सब लोग उसे—'माँ' जैसे पवित्र संबोधन से पुकारने लगे।

अब सत्यवती ने अपना अधिकांश समय और लक्ष्य मुकुन्द को संस्कारी पुत्र बनाने की दिशा में लगाया। मुकुन्द की प्रत्येक हलचल और प्रक्रिया पर वह नज़र रखती थी। उसके स्वास्थ्य के विषय में उसे सदैव चिन्ता रहती और वह नित्य सचेत रहती। फिर भी इन सब बातों से अधिक, उसे चिन्ता यह थी कि मुकुन्द किस प्रकार सुसंस्कृत व्यक्ति बने। अपने वृद्ध नाना और मामा की छाप उसके मन पर न पड़े, ऐसी सत्यवती के हृदय में आकांक्षा रहती।

मुकुन्द की आयु बढ़ने लगी। सत्यवती को लगा कि मुकुन्द रूप और गुण की दृष्टि से मानो उसके बड़े भाई की प्रतिमूर्ति है। उसे अपने मृत-बन्धु और मुकुन्द में दिन-प्रतिदिन अधिक साम्य दृष्टिगोचर होने लगा। और ज्यों-ज्यों यह दशा वह देखती थी, त्यों-त्यों उसकी मानसिक-अस्वस्थता बढ़ती जाती थी।

आयु बढ़ने के साथ ही, मुकुन्द के मन की कोमलता भी विशेष रूप से बढ़ती जाती थी। मुकुन्द में तीव्र जिज्ञासा थी। उसके सुन्दर चेहरे पर गम्भीर छवि थी। उसमें बाल-स्वभाव-सुलभ चंचलता, उच्छृंखलता आदि का अभाव था। बचपन से ही उसे एकान्त प्रिय था।

मुकुन्द का समस्त आकर्षण और प्रेम अपनी माँ की तरफ़ था। माँ के बिछौने पर ही वह सोता और सुबह उठने पर, उसे देखे बिना, वह कमरे से बाहर तक न निकलता।

अब मुकुन्द चार वर्ष का हो गया था। एक दिन सन्ध्या-समय उसकी माँ ने उसे कहा—"बेटा, उमा चाची अभी यहाँ आई थीं, वे अपना पानदान यहीं भूल गई हैं; ज़रा उन्हें दे आ, बेटा!"

मुकुन्द ने पानदान हाथ में लिया और रवाना हुआ।

उसके बाड़े की बाईं ओर एक गली थी। उससे गुजरने पर, पिछली ओर एक खुला खेत आ गया था। इस खेत के नजदीक एक छोटा-सा झरना था। इस झरने के सामने की ओर उमा चाची का मकान था। सामने की दिशा में गहरी-हरी झाड़ी होने से शोभा अनुपम लगती थी।

काफ़ी समय बीत गया, मुकुन्द अभी तक न लौटा—इससे सत्यवती की चिन्ता बढ़ने लगी। वह उठ खड़ी हुई और मुकुन्द की खोज में निकली। खेत को पारकर, झरने के निकट आई, वहाँ सत्यवती क्या देखती है कि एक छोटी-सी टेकरी पर बैठा मुकुन्द, जल में कुछ देखता हुआ, मूर्ति की तरह अचल स्थित है। उसकी छोटी-सी ठुड्डी उसके हाथ पर टिकी थी और एकटक-नयन जल में कुछ देख रहे थे।

माँ ने दौड़कर, उसे उठा लिया और, उसके गौर मुँह पर हाथ फिराते हुए, पूछा— "बेटा, इतनी देर से यहाँ क्यों बैठे हो ?"

"माँ, माँ !" मुकुन्द ने विस्मयपूर्वक कहा—"मैं जल-प्रवाह को देख रहा था, इतने में एक चिंउटे को मैंने पानी में बहते देखा। मैंने जल में एक पत्ता डालकर, उसे बाहर निकाला। इतने में क्या घटना हुई ! एक मेंढक पानी में चुपचाप पड़ा था, अपने सामने मक्खी के आते ही, तुरन्त ही वह मेंढक अपनी जीभ बाहर निकालता और चट से मक्खी को गटक जाता ! यह देखकर, मुझे विचार आया कि मेंढक मक्खी को क्यों खा जाता है ! क्या उसे उसकी माँ खाना नहीं देती है ? माँ, माँ ! ऐसे वक्त मक्खी को कितना कष्ट हुआ होगा ?"

माँ ने उत्तर दिया—"बेटा, मक्खी को निगल जाना मेंढक का धर्म है।"

"धर्म किसे कहते हैं, माँ ?" मुकुन्द की जिज्ञासा बढ़ी।

"धर्म यानी अपनी स्वभावगत वस्तु," माँ ने कहा—"मक्खी को खा जाना, मेंढक का स्वभाव है, बेटा !"

इसके बाद कई दिन बीत गए। एक दिवस मुकुन्द अपने चबूतरे पर खेल रहा था, इतने में भागू नामक एक भंगिन उसके आँगन में आकर खड़ी हो गई और बड़े करुण स्वर में भीख माँगने लगी—"माई, मैं आई हूँ, दशहरे

की बची-खुची रोटी मुझे दो, अन्नदाता !"

माँ ने रसोई-घर से ही उत्तर दिया—"अभी आई, भागू ! तू भीतर आ जा !"

भागू सीढ़ियाँ चढ़कर, चबूतरे पर आ बैठी। यह देखकर, मुकुन्द बोल उठा—"तुझे तो मेरी माँ ने भीतर बुलाया है ? भीतर जा, भीतर !"

भागू हँसने लगी, बोली—"भीतर ही तो बैठी हूँ !"

"भीतर का अर्थ यहाँ नहीं, रसोई-घर में।" मुकुन्द ने कहा।

"वहाँ मैं नहीं जा सकती।" भागू ने स्पष्टीकरण किया।

मुकुन्द का कौतूहल और बढ़ गया और उसने पूछा—"क्यों ? भीतर क्यों नहीं जा सकती ?"

इतने में, केले के पत्ते पर पूरनपोली (एक महाराष्ट्रीय पकवान) लेकर, माँ बाहर आई। इसी समय पड़ौसिन पार्वती काकी भी वहाँ आ पहुँची। माँ ने भागू के हाथ में ऊपर से पत्तल फेंकी, जिसे भागू ने झेल लिया। फिर उसने अपनी फटी हुई साड़ी के छोर पर खाने की सामग्री बाँध ली। मुकुन्द यह सब एक नज़र देखता रहा, भागू की क्रियाओं से उसे विस्मय हो रहा था, सो उसने अपनी माँ से पूछा—

"माँ, तू तो इसे भीतर बुला रही थी न ? इसीलिए तो मैं इसे अन्दर आने को कह रहा था, परन्तु यह तो आई नहीं !"

बीच में ही, पार्वती काकी बोल उठी—"बड़ा भोला है, रे ! तुझे मालूम नहीं, भागू भंगिन है ? यह भीतर कैसे आ सकती है ? इसकी जगह तो यही है !"

मुकुन्द का विस्मय बढ़ता गया—"भंगिन बाई भीतर क्यों नहीं आ सकती ?"

"यदि यह भीतर जाए, तो अपना धर्म डूब जाए।"—पार्वती काकी तुरन्त बोल उठीं।

फिर से धर्म शब्द सुनकर, मुकुन्द अपनी माँ से कहने लगा—"माँ, अन्दर न जाकर, बाहर ही बैठना, क्या यह भी भंगिन का स्वाभाविक धर्म है ?"

भागू हँसी, और बोली—"स्वभाव में कुछ नहीं, राव साहब ! यह तो जाति-पाँति का रिवाज़ है, रिवाज़ !" यों कहकर, वह उठ खड़ी हुई।

मुकुन्द की जिज्ञासा-वृति देखकर पार्वती काकी माँ की तरफ़ मुड़ी और बोली—"तुम्हारा बेटा तो बड़ा विचित्र है! संभालना, इसे कोई उलटी गंगा न बहा दे!"

काकी के अन्तिम शब्दों ने, माँ के मन में हलचल मचा दी। उसकी दृष्टि के समक्ष उसके मृत बन्धु की मूर्ति आकर खड़ी हो गई। उसने मुकुन्द की तरफ़ देखा, वह तो अभी भी विचार-मग्न दशा में खड़ा था। वह अपने छोटे-से मस्तिष्क में इन सभी प्रश्नों का निदान पाने का प्रयत्न कर रहा था।

एक दीर्घ उच्छवास डालकर, माँ और पार्वती काकी वहाँ से बाहर चल गईं। अब मुकुन्द की शिक्षा की चर्चा घर में शुरू हो गई। विश्वनाथ का कहना था कि मुकुन्द को शाला भेजना चाहिए, परन्तु माँ को यह पसन्द न था। उसके मन में शाला के शिक्षा-क्रम के संबंध में सद्भावना नहीं थी। इसके अतिरिक्त वह जानती थी कि शाला का वातावरण मुकुन्द के स्वभाव का पोषण न करेगा।

विश्वनाथ और सत्यवती ने अनेक प्रकार विचार-विनिमय किया। फिर मुकुन्द को प्राथमिक-शिक्षा घर में ही देने का निर्णय किया।

इस प्रकार मुकुन्द की शिक्षा का सारा ठेका माँ ने अपने हाथ में ले लिया। उसने अपने स्वर्गीय पिता की देख-रेख में और भाई के प्रेममय संग में बहुत-कुछ शिक्षा पाई थी। अब उसने उस शिक्षा का उपयोग मुकुन्द के लिए करने का निश्चय किया। वह अपने निश्चित प्रयत्नों में लग गई। उसने मुकुन्द को इस प्रकार से सही ढंग की शिक्षा देना आरम्भ किया, जो उसके लिए कष्टकर न हो जाए। उसने बालक को मराठी तथा संस्कृत भाषा सिखलाई। मुकुन्द कुशाग्र बुद्धि का बालक था। इसके अतिरिक्त, अपनी माँ पर उसे अनन्त श्रद्धा थी, अतएव वह अपने शिक्षण के क्षेत्र में त्वरित प्रगति करने लगा।

अब तक मुकुन्द को घर-आँगन, बाग़-बगीचे और खेत-खलिहान के सिवाय अन्य किसी स्थान का परिचय न था! कारण कि वह बिना काम के कहीं जाता न था। गाँव की स्त्रियाँ, अपना काम-काज लेकर, माँ के पास आतीं, परन्तु उनके साथ छोकरे वहाँ न आते थे। आते भी तो कम। एक बालक का

मन दूसरे बालक से स्वाभाविक-रूप में मिल जाता है और उसमें भी अपने-जैसे उपद्रवी प्रकृति के बालक के साथ तो विशेष रूप से मेल हो जाता है। सत्यवती माँ के बाड़े में, मुकुन्द के सिवाय, दूसरा कोई बालक न था और इसमें भी मुकुन्द शान्त और गम्भीर स्वभाव का था। अतः गाँव के लड़कों को उसमें कोई आकर्षण नज़र न आया। परिणाम यह हुआ कि इस प्रकार इस अकेले प्राणी को कोई साथी न मिला।

मुकुन्द की आयु सात वर्ष की हो गई। एक दिन, गाँव में एक जगह विवाह था। इस विवाह में सम्मिलित होने के लिए माँ को निमन्त्रण मिला था। अपनी माँ के साथ ऐसे जलसे में जाने का मुकुन्द का यह पहला अवसर था। माँ को ऐसे समारम्भों में जाना पसन्द न था, न वह बालक को ही वहाँ ले जाना चाहती थी; परन्तु उस दिन विवाह-स्थल पर गए बिना छुटकारा नहीं था, इसलिए अनिच्छा रहते हुए भी वह मुकुन्द को साथ लेकर, वहाँ गई। उस स्थान पर पहुँचने पर वहाँ का ठाठ-बाट, बाजों का सुर, जिधर देखो उधर शोरगुल, गड़बड़ और ऐसी ही अराजकता देखकर, मुकुन्द घबरा गया। उसके लिए ये सब चीजें एकदम नई थीं।

मुकुन्द ने देखा कि रंग-बिरंगी पोशाक पहने कई लड़के और लड़कियाँ विवाह-मंडप के आस-पास, इधर-उधर आ-जा रहे हैं। कई लड़के तो शोर भी मचा रहे थे। कई गाली-गलौज कर रहे थे। कई रो-धो रहे थे। कई अपने माता-पिता के पास शिकायत और फरियाद ला रहे थे और कई अपने बड़ों के लात-घूँसे खा रहे थे। यह सब मुकुन्द सविस्मय देख रहा था। बालकों के कपड़े भी उसे विचित्र लगे। उसने शहर में बिकने वाले विचित्र कपड़ों के बारे में सुना था, कदाचित् ये वही कपड़े हैं, मन-ही-मन उसने तर्क-द्वारा निर्णय पाया।

लड़कों से उसका यत्किंचित् परिचय भी था, परन्तु लड़कियों से मिलने का यह पहला अवसर था। आज तक उसने इतनी लड़कियाँ—अपनी पूरी सज-धज में, नहीं देखी थीं। अपने मन में विस्मय के बादल बिखेरे मुकुन्द एक ओर खड़ा था कि इतने में छः वर्ष की एक सुन्दर लड़की उसके सामने आकर खड़ी हो गई। ज़रीदार रेशमी फ्रॉक वह पहने थी, पैरों में बूट थे, मोज़े थे।

उसके घुँघराले केश कंधों पर झूल आए थे। मुँह में पान था, जिससे वह एकदम लाल हो गया था। हाथ के रूमाल को वह हिला रही थी और यों अपना शहरी गौरव सब को दिखा रही थी। और लोग भी उसकी मत्त चपलता के विषय में धीरे-धीरे बात कर रहे थे।

छोकरी मुकुन्द के सामने खड़ी हो गई और कुछ देर उसका मुँह जोहती रही। फिर बोली—"क्यों, रे ! तेरा क्या नाम है ?"

"मुकुन्द !"—उसने उत्तर दिया।

"हमारे साथ खेलने आएगा ?"

मुकुन्द जवाब दे, इसके पूर्व ही उस घर की मालकिन वारू ताई वहाँ आई और अचानक उसने पूछा—"इन्दु, इससे बड़ी मीठी बातें कर रही है, अच्छा ! कैसा प्यारा-प्यारा लड़का है यह ? इसे तेरा दूल्हा बना दें ?" फिर वह मुकुन्द की ओर मुड़ी और हँसते-हँसते कहने लगी—"तुझे चाहिए ऐसी फूलझड़ी"

माँ को यह मज़ाक पसन्द न आया। वह धीमे बोली—"वारू ताई, नन्हे बच्चों से ऐसी बातें क्यों करती हो ? क्या हमें ऐसे नादान बालकों को इस उम्र में इस प्रकार का निरर्थक ज्ञान देना चाहिए ?"

यह सुनकर, वारू ताई शरमा गई और माफ़ी माँगने लगी, लेकिन अब तो माँ का मन समारम्भ से उचट गया था और वहाँ से लौट जाने को वह ललक उठी। उचित कारण बताकर, मुकुन्द का हाथ थामे, वह वहाँ से निकल गई।

घर लौट आने पर, मुकुन्द अपनी माँ से पूछने लगा—"माँ, माँ ! वर और वधू किसे कहते हैं ?" माँ को तनिक हँसी आ गई। इस विचार में कि वह क्या उत्तर दे, कुछ क्षण बीत गए। फिर वह बोली—"तेरे पिता और मैं जिस भाँति रहते हैं, उस भाँति जो रहें, उन्हें वर-वधू कहते हैं !"

"तो, माँ,"—मुकुन्द ने फिर से पूछा—"वारू ताई की बहन का जिस तरह विवाह हुआ है, उस तरह पिताजी से तेरा भी विवाह हुआ होगा ?"

अपने विवाह का चित्र, कोई स्त्री कभी भूल सकती है ? माँ, एक उसाँस लेकर, बोली—"हाँ, बेटा।"

मुकुन्द की जिज्ञासा बढ़ी और उसने पूछा—"तब तो, माँ, जब पिताजी

का और तेरा विवाह हुआ, उस समय मैं कहाँ था ?"

माँ ने हँसकर, बेटे के गुलाबी कपोलों का चुम्बन लिया और बोली—"बेटा, उस समय तू मेरे अन्तःकरण में था।"

यह सुनकर, मुकुन्द का कौतुक अधिक बढ़ गया और फिर से उसने पूछा—"तब तो, माँ, मुझे फिर से वहीं रख दे ?"

माँ ने मुकुन्द को छाती से लगा लिया और एक बार फिर से चूमा—"बेटा, तेरा वह स्थान सुरक्षित है। इस समय तू दोनों जगह विद्यमान् है।"

और यों मुकुन्द के मन का कुछ समाधान हुआ।

३

शिक्षा

"क्या पढ़ रही हो, माँ ?" सत्यभामा ने घर में प्रवेश करते ही पूछा।

"यह देखो न ! बम्बई से मुकुन्द का पत्र आया है, वही पढ़ रही हूँ।" मा ने जवाब दिया—"बैठो, बैठो ! पूना से कब आईं ?"

"आज सुबह ! घर में बहू है, इसलिए बड़ा आराम है। खा-पीकर कुछ देर लेटी रही, तभी विचार आया कि चलो, माँ से मिल आएँ। और यहाँ आ पहुँची। राजापुर छोड़े दो वर्ष हो गए थे न ? तुम्हें देखने को कब से तरस रही थी, इसलिए यहाँ दौड़ती आई। मुकुन्द नज़र नहीं आ रहा है ?"

"उसे पढ़ने के लिए बम्बई भेजा है," माँ ने कहा—"माँ अपने बेटे को आखिर कितना सिखा सकती है ? उस पर भी हमारा ज्ञान तो अधकचरा ही होता है।" माँ ने तनिक स्मिति-पूर्वक कहा।

"वाह, वाह ! तुम्हारा ज्ञान अधकचरा हो सकता है ? यदि ऐसी बात है, तो फिर हमारा तो पता ही न चलेगा ! पहले तो तुम्हीं उसे पढ़ाती थीं न ?"

"कुछ मराठी और अँग्रेज़ी पढ़ाई, पर आगे जाकर गाड़ी रुक गई।"

"शास्त्रीजी पढ़ाते थे ?"

"हाँ, संस्कृत और संगीत की शिक्षा देते थे। शिष्य की विचक्षणता देखकर वे खुश हुए थे।"

"तब तो शिक्षा पूरी हो गई होगी ?"

"अरे, नहीं ! बम्बई में हमारे स्नेही-जन हैं, गोपालराव ! इस महायुद्ध में उन्होंने अपना व्यापार बहुत बढ़ा लिया। पिछले दिनों, अपने व्यवसाय के संबंध में, वे यहाँ आए थे, मुकुन्द की होशियारी देखकर, वे बोले—'इसे बम्बई भेज दो, यहाँ इसकी बुद्धि कुंठित हो जाएगी। इतने बड़े लड़के को अभी तक आपने शाला नहीं भेजा ? मेरे कोई लड़का नहीं है, मैं इसी को अपना बेटा मानकर अपने पास रखूँगा, आया समझ में ? पाठशाला में इसकी बुद्धि चमक उठेगी।' उनका यह कहना मुकुन्द के पिता को पसन्द आया और उन्होंने बच्चे को साथ भेज दिया।"

"तब तो, माँ, तुम्हें उसके बिना अच्छा न लगता होगा ?"

"लेकिन क्या करें, बेटे का मोह कब तक रखें ? पंछियों के बच्चे पंख फूटने तक ही घोंसले में रहते हैं, उसी तरह, पैरों चलना सीखते ही, हमारे बच्चे बिलग होंगे ही !"—माँ ने निःश्वास लिया।

"यह पत्र क्या उसी ने लिखा है ?"

"हाँ, प्रति सप्ताह नियम-पूर्वक उसका पत्र आता है। पत्र में अपने अभ्यास, वाचन और विचारों के विषय में सब-कुछ वह लिखता है।"

"बड़ा भाग्य है तुम्हारा कि ऐसा मातृ-भक्त पुत्र पाया।" सत्यभामा बाई ने सिर हिलाते हुए कहा और इसके बाद वे वहाँ से चली गईं।

राजापुर के ग्रामीण-वातावरण में, माता की छत्रछाया-नीचे बड़ा हुआ मुकुन्द, बम्बई जाने पर चमक उठे तो, कौन-सी बड़ी बात ? उसका स्वभाव पहले से ही लजालु था, अतः वह जल्दी से लोगों की नज़र में न आ सकता था। अँग्रेज़ी की छठी कक्षा में आने पर ही, उसकी कुशाग्र-बुद्धि की वाह-वाह होने लगी। अब तो अध्यापक-वर्ग में भी उसके प्रति स्नेह बढ़ने लगा। विद्यार्थियों में भी वह प्रिय हो गया।

एक दिन, स्कूल में दोपहर की छुट्टी के समय, वह बरामदे में घूम रहा

था कि इतने में सामने से उसने सातवीं कक्षा के एक लड़के को आते देखा। उसकी उम्र लगभग बीस वर्ष की होगी। शरीर ऐसा कि सूखी लकड़ी। चेहरा एकदम फीका। वह गुजराती था। अपने मनमौजी स्वभाव के लिए, वह सारे स्कूल में मशहूर था।

मुकुन्द को देखकर, उसने जल्दी ही, विशेष प्रकार से एक दूसरे लड़के को आँख से इशारा किया। उन लड़कों ने इशारे में ही उत्तर दिया। मुकुन्द इसका कुछ भी अर्थ न समझ पाया, इतने में वह गुजराती लड़का पास आया और मुकुन्द के गले में हाथ डालकर, अँग्रेजी में कहने लगा—"मुकुन्द, यों अकेला-अकेला क्यों रहता है? चल, हमारे साथ।"

उस लड़के ने गलबाँहें डालकर कुछ ऐसा अभिनय किया और उसके बोलने का तरीका कुछ ऐसा अजीब और इश्की था कि वह देख-सुनकर मुकुन्द को उससे घृणा हो आई और अपने गले से उसका हाथ ज़ोर से झटककर, बोला—"क्षमा करो, मुझे कुछ काम है।"

परन्तु वह लड़का इतने पर ही चुप न रह गया। बड़ी निर्लज्जतापूर्वक उसने, मुकुन्द को अपने दोनों हाथों में पकड़कर, कहा—"अरे, वाह! बड़ा काम वाला आया! छुट्टी के कुछ मिनट भी मौज़-मज़े में बिताना नहीं आता तुझे? चल तो, हमारे साथ, मज़ा आएगा।"

—यों कहकर, मुकुन्द का हाथ थामकर, वह उसे खींचने लगा। अब तो मुकुन्द को क्रोध आ गया। इस लड़के के नखरे उसे पसन्द न थे। इसके संगियों ने स्कूल के एक जलसे में स्त्री वेश पहनकर, अपने स्त्रैण-स्वभाव और अभिनय के लिए लोगों की ओर से तालियाँ और अभिनन्दन पाया था। उस दिन के बाद, इस लड़के ने अपनी बड़ी सिफ़ारिश करवाई थी, यह मुकुन्द को याद था। यह सब ध्यान में रखते हुए, उसके संग को मुकुन्द धिक्कारता था। सो अब, झटका देकर, उसने अपना हाथ छुड़ा लिया और उसे अपने आहत अभिमान में हँसता छोड़कर, मुकुन्द वहाँ से वेगपूर्वक चला गया। जाते-जाते, उसने अपने पीछे से आते ये शब्द सुने—"ओ!....ब्यू....टी....ई....ई!"

उस दिन मुकुन्द, अपने एक सहपाठी के साथ, घूमने गया। इसी समय उस गुजराती लड़के को इसने देखा। आज तो उसके साथ एक तरुण लड़की भी थी, जिसकी उम्र अधिक-से-अधिक सोलह वर्ष की होगी। वह भी एकदम निस्तेज थी और उसका स्वास्थ्य एकदम गिरा हुआ था। हाँ, उसकी वेश-भूषा फैशनदार थी। उसकी गोद में एक बालक था, वह भी बड़ा दुबला-पतला कि अस्थि-चर्म के सिवाय माँस उसके शरीर में नाम-मात्र को था। इसके अतिरिक्त एक वर्ष का एक और बालक था। जो इस गुजराती लड़के का हाथ थामकर, साथ-साथ चल रहा था।

"देखा न, मुकुन्द !" मुकुन्द का दोस्त बोला—"देख ले, देसाई अपने कुटुम्ब के साथ सैर के लिए जा रहा है।"

"यानी ?" मुकुन्द को विस्मय हुआ—"यह उसकी पत्नी और वे उसके बच्चे हैं ?"

"और क्या ? ये दो लड़के तो हैं ही, एक तीसरा शिशु मर चुका है, ऐसा मैंने सुना है।"

मुकुन्द की देह में एक कँपकँपी छा गई। कैसी भयंकर दशा है, वह विचारने लगा। इस लड़की की आयु देखते हुए, कोई कह सकता है कि यह माता बनी होगी ? देसाई की यह अधोगति देखकर, उसके हृदय को दुःख हुआ। इसी समय, दोपहर का वह प्रसंग उसकी दृष्टि में आ खड़ा हुआ। विद्यार्थी अवस्था से ही ऐसी लम्पटता इसमें है, यह सोचकर, मुकुन्द के मन में तिरस्कार पैदा हुआ। कितना घृणित और भयंकर था इसका पतन, मुकुन्द वचारता रहा।

"मित्र, तुझे मालूम नहीं ?" मुकुन्द के मित्र ने, उसके विस्मय को दूर करने के प्रयत्न में, खुलासा किया—"हमारे स्कूल में ऐसे कई विवाहित लड़के हैं, उनमें से कुछ तो पिता भी बन गए हैं।"

इस बीच में देसाई ने सिगरेट-केस निकाला और बड़े मज़े में धूम्र पान करने लगा। धुआँ जब उसकी पत्नी के मुँह तक आया, तो उसने मुँह बिचका लिया। उसे यह पसन्द न था। वह खीझ रही थी, परन्तु क्या करती ? देसाई

को उसकी परवाह न थी। मुकुन्द को बड़ा दुःख हुआ, उसके लिए यह घटना नई थी। उसने उसी रात अपने दिल के दर्द को दर्शाते हुए एक पत्र अपनी माँ को लिखा जिसमें उसने लिखा—

"माँ, तू मुझे हमेशा यह शिक्षा देती थी, कि विद्यार्थियों का मुख्य-धर्म ब्रह्मचर्य है, परन्तु यहाँ तो मुझे सारी परिस्थिति विपरीत और भयंकर नज़र आती है। मैं न तो किसी से सहज ही घुल-मिल पाता हूँ, और न किसी की निजी बातों में ही पड़ता हूँ। यह होने पर भी मैं जो कुछ देखता हूँ, अथवा मेरे कान तक जो बातें आती हैं, उन सबसे मेरा जी जल रहा है और यहाँ के लड़कों को तो इसमें कुछ भी बुरा या भयंकर नहीं लगता है, इससे मुझे अचरज होता है। परसों मैं स्कूल से घर जा रहा था, कि मैंने एक घटना देखा और उसे देखकर मुझे रोष आ गया।

"कन्याशाला की दो लड़कियाँ अपने-अपने घर जा रही थीं। उस समय हमारे स्कूल के कई लड़के उनके पीछे हो लिये, वे बार-बार उनके आगे-पीछे चलते और जो चाहते, बोलते। बड़ी देर तक तो ये लड़कियाँ चुपचाप चलती रहीं, परन्तु बाद में तो उनका व्यवहार उन्हें असह्य हो गया, एक लड़की ने अपने हाथ की फुट-पट्टा से एक लड़के पर इतने ज़ोर का वार किया कि वह बेचारा अवाक् खड़ा रह गया। फिर लड़की बोली—'शर्म नहीं आती।' यह देखकर, जल्दी ही, सब लड़के इधर-उधर बिखर गए और 'ए० बी० सी० डी०, यू माई लेडी; ए० बी० सी० डी०, यू माई लेडी' बकते हुए, दूर भाग गए। यह घटना देखकर, मेरे मन को बड़ा दुःख हुआ।

"विद्या देवी प्राप्त करने का केवल एक ही हेतु जिनके अन्तर में है, ऐसे सभी विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों को परस्पर भाई-बहन-जैसा व्यवहार रखना चाहिए। इस सम्बन्ध को न निबाहते हुए, विद्यार्थियों के मन में दुर्भावना की कल्पना ही क्यों कर आती है और ऐसी छोटी वय में ऐसी कल्पना क्योंकर वे कर सकते हैं? यह सब मुझे समझ में नहीं आता है।" आदि....।

इस प्रकार के एक-दो छोटे-बड़े अनुभव प्राप्त कर, मुकुन्द ने तीन वर्ष व्यतीत कर दिए। और अन्त में उसने मैट्रिक की परीक्षा में कीर्ति प्राप्त की।

४

मुकुन्द के सहपाठी

कालिज में आने पर, मुकुन्द को दो स्नेही मिले। दोनों उसी की कक्षा में थे। ।उम्र में भी वे दोनों समान थे। एक का नाम था लीलाधर, दूसरे का चन्द्रशेखर।

लीलाधर के पिता माधवराव नामी वकील थे। वकालत में उन्होंने अच्छी तरह पैसा भी कमाया था। वे सुधारवादी थे और नए सुधारों के आरम्भ-काल में जिन शिक्षित लोगों पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव पड़ा था, उनमें एक वे भी थे। धार्मिक कामों में वे बड़े उदार थे और स्त्री-शिक्षा के कट्टर हिमायती थे। अस्पृश्यता में उनका तनिक भी विश्वास न था और उनका मत था कि जो-कुछ जूना-पुराना है, वह खराब है। मूर्ति-पूजा उन्हें पसन्द न थी।

उनकी पत्नी रमाबाई का स्वभाव उनके विपरीत था। वह अधिक शिक्षिता नहीं थीं। यद्यपि माधवराव स्त्री-शिक्षा के हिमायती थे, तथापि उन्होंने अपनी पत्नी को शिक्षा देने में कभी उत्साह नहीं दिखाया था। हाँ, एक बार उन्होंने रमाबाई को घर पर शिक्षा देने की तैयारी की थी, परन्तु उसमें इतनी देर हो गई थी कि एक दिन खुद रमा काकी ने ही कटाक्ष में कहा—"अब तो बाल सफेद हो गए और बुढ़ापा भी आया, ऐसे समय में कन्धे पर पाकिट लटकाकर,

अपने बच्चे के साथ स्कूल जाऊँ क्या ?" इसके बाद माधवराव ने उन्हें शिक्षा देने का नाम ही न लिया।

यद्यपि रमा काकी कम पढ़ी-लिखी थीं, फिर भी वह गृहस्थी के कामों में पूर्णतया कुशल थीं। घर का सब सामान यथा-स्थान रखना, भोजन बनाना, अतिथि-सत्कार, आदि में वे जरा भी खामी न होने देती थीं। फिर तो उन पर बच्चों का बोझ भी बढ़ गया। लड़के अपनी माँ को कुछ न गिनते और उन पर माधवराव का ज़रा भी दबाव न था। कोर्ट, मित्र, राजनैतिक और दूसरे विषयों की चर्चा, व्याख्यान, प्रवास और अन्य मंडलियों में हो माधवराव का वक्त बीतता था। जब वे घर में रहते, तब रमा काकी की पूजा-अर्चना एवं जूने रीति-रस्म की मज़ाक करते। वे अपने बच्चों के साथ समान व्यवहार करते। ऐसे वातावरण में लड़के स्वच्छन्द हो जाएँ, तो क्या आश्चर्य ?

माधवराव का बड़ा लड़का मुकुन्द से कुछ मास बड़ा था। रमा काकी के मन में यह बात थी कि किसी देवता के आधार पर इसका नाम रखा जाये, लेकिन सुधारक माधवराव को यह बात कैसे पसन्द आती ? उन्होंने अपने बेटे का नाम लीलाधर रखा। इसके पाँच वर्ष बाद जगदीश का जन्म हुआ। उसके नौ वर्ष-बाद एक लड़की हुई। रमा काकी ने उसका नाम सीता या सावित्री रखना चाहा, सुनकर माधवराव ने नाक-भौं चढ़ा ली और स्वयं ही पसन्द कर, बंगालियों की तरह, नाम हेमलता उन्होंने रखा। फिर तीन वर्ष बाद सरला का जन्म हुआ।

बच्चों को सँवारने-सुधारने का काम माँ का है, परन्तु कह सकते हैं कि रामा काकी को अपनी इस जवाबदारी का भान ही नहीं था। बच्चों का खाना-पीना पूरा हुआ, स्वच्छ कपड़े पहनकर वे स्कूल गए—इतना काम पट जाने पर वह मान लेती कि उसका काम पूरा हो गया है। बालकों के स्वभाव में कौन से गुण और दोष हैं ? उसके अन्तःकरण पर धार्मिक संस्कार कैसे डालना, आदि विषयों की उसे जानकारी न थी। माधवराव इतने सुशिक्षित और बहुश्रुत थे, फिर भी उन्होंने इस दिशा में जरा भी ध्यान न दिया। फिर रमा काकी को तो यह काम सूझता ही कैसे ? बच्चों को कपड़े आदि की कमी न थी, उलटे

रमा काकी मन लगाकर, बच्चों के कपड़े सहेजकर रखती। लेकिन लड़के ऊधम मचाकर, कपड़े गन्दे कर लेते। इसके फलस्वरूप, लड़कों को कई बार रमा काकी के हाथों चपत का प्रसाद मिलता।

यदि लड़के जिज्ञासापूर्वक प्रश्न करते, तो उन्हें सीधा जवाब ही न मिलता। एक दिन लीलाधर ने पूछा—"माँ, आज सुबह हमारे यहाँ कौन मेहमान आए थे ?"

"होगा कोई, गोमाजी कापशे ! तुझे नाम जानकर, क्या करना है ? बेकार की बहस न कर, बाहर निकल।" यों रमा काकी बूम-बराड़ा मचाकर, ऐसे जवाब देती।

कभी चन्द्र-ग्रहण लगा हो और मँझरात में वह छूटा हो, तब भी रमा काकी तो भावुक-भक्तों की भाँति, आधी रात में भी सिर-चोटी तक स्नान किए बिना रहेंगी नहीं। और लड़कों को भी वह बिछौने से जगाकर, स्नान करवाने की तैयारी करतीं। उस समय मज़ा यों आता कि जब वे एक को जगाकर, दूसरे की ओर आतीं, पहला नौ-दो-ग्यारह हो जाता। इसी प्रकार तीसरे को जगातीं, तो शेष ऊपरी मंज़िल में जा छिपते। ऐसी मँझरात की सर्दी में नहाना बच्चों को कतई पसन्द न आ सकता था। वे कहते—"यह कैसा कष्ट है, ग्रहण छूटने पर, हम पर यह ज़ुल्म किस लिए ?"

यह सब सुनकर, रमा काकी खीझ उठतीं और कहतीं—"बड़े उपद्रवी हैं; ग्रहण तो छूटा, पर मेरे जन्म का ग्रहण छूटे, तब न ? तुम सब अब मरो तो मेरा पिंड छूटे।"

माता पुराने जमाने की स्त्री है, इसलिए पिता इसकी मज़ाक उड़ाते हैं, लड़के यह अच्छी तरह जानते हैं, इसी से वे भी मनचाहे ढंग से मज़ाक करते थे। स्कूल से घर लौटते ही रमा काकी उन्हें कपड़े बदलने को कहतीं, लेकिन लड़के मानें तब न ? लीलाधर तो भारी चंड और तूफ़ानी प्रकृति का बालक था। बीच सड़क पर दौड़कर, वह भंगी को छू आता और अपनी माँ को चिढ़ाता। और रमा काकी लड़कों के इस उपद्रव की फरियाद किसके सामने करें ? यदि वे माधवराव के पास जातीं, तो वे भी लड़कों का ही पक्ष लेते।

अभी तो लीलाधर को मराठी अक्षरों की पूरी पहचान भी न थी कि माधवराव ने अँग्रेज़ी स्कूल में दाखिल करा दिया था, इससे नतीज़ा यह हुआ कि लीलाधर के मुख से उठते-बैठते, बस, अँग्रेजी फिकरों के फूल झड़ते। इतना ही नहीं, घर पर भी वह म्लेच्छों की यह भाषा बोलकर, रमा काकी को चिढ़ाता—

"वाटर चाहिए, वाटर !"

"नो, टी वान्टेड ! ब्रिंग माई लोटा।"

यों अँग्रेजी वाक्य लीलाधर बोलता रहता और रमा काकी का गुस्सा उफनता रहता !

परन्तु, स्वभावतया लीलाधर दुष्ट न था। वह सब के लिए उपयोगी बनने को सदैव तैयार रहता। उसके व्यवहार से उसकी माता को दुःख होता है, इसकी उसे ज़रा भी कल्पना होती, तो वह यों व्यवहार न करता।

मैट्रिक पास कर लेने केबाद, वह भी कालिज में गया और मुकुन्द का सहपाठी बना।

लीलाधर की ख्याति थी कि वह अतिशय साहसी और मिलनसार लड़का है। वह तीव्र बुद्धि का छात्र था, फिर भी पढ़ने में उसे विशेष रुचि न थी। खेलने और घूमने-फिरने में उसका विशेष लक्ष्य था। सब प्रकार के खेलों और व्या॰ यों में वह प्रसिद्ध था। कई इनाम भी पाए थे। वह दिलदार, खिलाड़ो था। इसलिए कालिज में पहुँचते ही वह छात्र और छात्राओं में प्रिय बन गया। लेकिन उसमें एक कमी थी, वह बड़ा खर्चीला था। दोनों हाथों से पैसा खर्च करता था, इससे उसके आस-पास मित्रों की बड़ी मंडली हर वक्त बनी रहती।

लेकिन, लीलाधर को मुकुन्द से ही सच्चा स्नेह था। वह गुण-पूजक था, इसीलिए तो मुकुन्द की ओर उसका लगाव था, और उस पर उसका मित्र-भाव जागा था। लीलाधर-जैसे एक-दो उपद्रवी तरुणों का मुकुन्द-जैसा संयमी विद्यार्थी मित्र है, यह जानकर, खुशी तो होती ही थी।

चन्द्रशेखर इन दोनों से बड़ा था। उसके पिता सरकारी हाकिम थे और उन्हें 'रावसाहब' की पदवी भी मिली थी। चन्द्रशेखर के एक छोटा भाई भी

जिसकी उम्र उससे आठ वर्ष कम थी। दोनों के माँ न थी। बाप फिजूल-
और विलासी था, इसलिए वह कुमार्ग पर फिसल पड़ा था। घर में इस
के लड़के होते हुए भी, पिता ने निस्संकोच होकर, एक रखेल रख ली थी।
को उससे शर्म आती थी, परन्तु कोई उपाय न था। इस कारण चन्द्र-
खर अपने दोस्तों को कभी अपने घर न बुलाता था। उसी प्रकार उसके भी
घर में अधिक न टिकते थे। चन्द्रशेखर मेधावी न था, इसीसे उसने मुकुन्द-
से होशियार विद्यार्थी से मैत्री की थी। यद्यपि विद्या-प्राप्ति में उसने प्रगति न
थी, फिर भी व्यवहार में तो वह बड़ा ही कुशल था। विद्यार्थी-अवस्था में
वह, अपनी बुद्धि का उपयोग करके, पैसा कमा लेता था। उसे सट्टे की चाट
गई थी। बाप की पहुँच के कारण कई गुजराती व्यापारियों से उसकी जान-
हो गई थी, इस पहचान का उसने पूरा-पूरा लाभ उठाया था। साथ
वह चालाक और धूर्त्त भी था, इसलिए सट्टे की आग में उसने अपने शरीर
ज़रा भी आँच न आने दी थी।

५

मुकुन्द का अध्ययन

जिन दिनों मुकुन्द अपने गाँव में रहता था, उसका अध्ययन सीमित था। पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थ और मराठी की धार्मिक पोथियाँ वह पढ़ता। साथ ही माँ-बाप के संग घर के काम-काज में भी वह हिस्सा बँटाता और काफी समय अभ्यास में लगाता इससे उसे अन्य साधारण अध्ययन का समय न मिल पाता। माँ का मन, अध्ययन की अपेक्षा, सेवा और भजन की ओर विशेष रूप से आकर्षित था। फिर तो उसका मन धीरे-धीरे सांसारिक विषयों से विरक्त होने लगा। इससे उसे मुख्यतया धार्मिक पुस्तकों का पाठ ही शुभ लगता। आधुनिक ग्रन्थों में भी स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, रानडे और उनके जीवन तथा धर्म-संबंधी व्याख्यान-माला को पढ़ने में उसका मन लगा था। यही नहीं, उन्होंने मुकुन्द के मन में भी ऐसे ग्रन्थ पढ़ने की रुचि जागृत की थी, इसके कारण, जब तक मुकुन्द बम्बई गया, तब तक उसे आधुनिक साहित्य का तनिक भी परिचय न मिला था, यह कहा जा सकता है।

बम्बई जाने पर, पहले दो वर्ष उसने अभ्यास पक्का करने में लगाए। वह गाँव में रहा था, इससे उसके जो विषय कच्चे रह गए थे, उन विषयों में वह अधिकांश समय बिताने लगा। इस वजह से भी उसका अध्ययन मर्यादित रह गया था, परन्तु मैट्रिक में आ जाने पर, उसकी इस स्थिति में परिवर्तन आ

गया। पाठ्य-क्रम में निर्धारित लेखकों में से शेक्सपीयर और डिकेन्स इन दोनों लेखकों की ओर उसका आकर्षण बढ़ा और उनके ग्रन्थ उसने पढ़ना शुरू कर दिया।

शेक्सपीयर के ट्रेजेडी ग्रन्थों का उसके मन पर गहरा असर हुआ, परन्तु कई बार उनमें वर्णित पराकाष्ठा या 'क्लाइमेक्स' उसे असह्य लगता। डिकेन्स के कई पात्र अपने निज-निज के विविध स्वभाव और लक्षणों के कारण मुकुन्द का मनोरंजन करते, परन्तु अध्ययन, मात्र मनोविनोद और मनोरंजन का विषय नहीं, यह मुकुन्द को बार-बार महसूस होता। अध्ययन से प्राप्त दर्शन को अपने जीवन में कैसे उतारा जाए, किस प्रकार जीवन उनसे ओत-प्रोत हो जाए, मुकुन्द में यह लगन बनी रहती। कालिज जाने पर उसका अध्ययन-कार्य बहुत बढ़ गया।

जब कोई क्लास न लगती, तो मुकुन्द पुस्तकालय में जाता और ऊँची कक्षाओं के लिए निर्धारित ग्रन्थ पढ़ता। सामान्य प्रकार के ललित साहित्य की ओर उसका आकर्षण न था। धीरे-धीरे उसका मन वेदान्त की ओर गतिशील हुआ। प्रोफेसर राधाकृष्णन के ग्रन्थ ज्योंही उसे प्राप्त होते, वह उन्हें पढ़ने में डूब जाता।

लेकिन, इन सबसे अधिक प्रभाव, उस पर टाल्स्टाय का पड़ा। सर्व प्रथम उसने टाल्स्टाय की अनमोल कृति 'कला क्या है ?' पढ़ी। और इस पर वह इतना अधिक मुग्ध हो गया कि फिर तो उसने मानो टाल्स्टाय के ग्रन्थों का पारायण ही शुरू कर दिया। उसका इस प्रकार का पागलपन देखकर उसके मित्रों और सहपाठियों को विस्मय हुआ। साधारतया मुकुन्द का यह अनुभव था कि विद्यार्थियों को अपनी पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें पढ़ने की इच्छा नहीं होती। और कदाचित् उन्हें ऐसी इच्छा होती है तो, सिर्फ़ गन्दी पुस्तकें पढ़ने जितनी ही होती है। मुकुन्द से यह छिपा न रहा कि उसके साथियों में से कई रेनाल्ड्ज़ और गार्विस की उपन्यास कथाएँ हाथ में लेकर फिरते हैं और बोलने तथा लिखने में भी उन्हीं की भाषा की नकल करने का प्रयत्न करते हैं।

मुकुन्द की शास्त्रीय ग्रन्थ पढ़ने की ललक देखकर, चन्द्रशेखर एक नई पुस्तक लिये उसके पास आया। पुस्तक यौन-साहित्य से सम्बन्धित थी। मुकुन्द ने आज यह नया उपक्रम देखा, लेकिन उसे पढ़ने पर उसका मन खट्टा हो गया।

"तुझे ऐसी पुस्तकें पढ़ना पसन्द है ?" मुकुन्द ने चन्द्रशेखर को पुस्तक लौटाते हुए पूछा।

"क्यों, इसमें तुम्हें बुरा क्या लगता है ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"मुझ पर इसकी ज़रा भी ठीक छाप न पड़ी।"

"आश्चर्य की बात है।" चन्द्रशेखर ने कहा—"आज दुनिया में कई विख्यात स्त्री-पुरुष ऐसी पुस्तकों की योग्यता पर ज़ोर देते हैं और उनकी तारीफ़ करते हैं। इनसे कितना ज्ञान प्राप्त होता है यह क्या तुम्हें मालूम है ?"

"तुझे पहले ज्ञात न हो और अब इस पुस्तक को पढ़ने से ज्ञात हो-गया है, ज़रा बता, ऐसा कौन-सा ज्ञान तुझे मिला ?" मुकुन्द ने सस्मित कटाक्ष में पूछा।

पहले तो चन्द्रशेखर इसका उत्तर देते हुआ अचकचाया। उचित उत्तर न मिलने पर उसने कहा—"मेरी बात जाने दो। इस दुनिया में ऐसे कई हैं ?...."

"दुनिया की बात ! दूसरे लोग जानते हैं या नहीं, ये कौन देखने गया है। आज के जमाने में ऐसी पुस्तकें अनजान लोगों के हाथ में नहीं, लेकिन जानकारों के हाथ में ही, खासकर अधिक प्रमाण में जाती हैं। दिल की जो बात हम दूसरे को नहीं कह सकते, वह यदि इस प्रकार खुले रूप में मिल जाये तो किसे पसन्द न आएगी ? लेकिन मेरा खयाल है इस प्रकार हम में जो विकार सोए हैं उन्हें जाग्रत और बलवान् बनाने में ऐसी चीज़े योग देती हैं। दूसरा कुछ नहीं।"

जब-से मुकुन्द कालिज में भर्ती हुआ, वह बोर्डिंग में रहता था। जिन दिनों वह गोपालराव के मकान में रहता था उन दिनों उसे पर्याप्त परिमाण में एकान्त प्राप्त होता था। परन्तु अब वह स्थिति न रही। बोर्डिंग में उसे ज़रा

भी शान्ति और स्वस्थता न मिली। वहाँ जाति-जाति के विद्यार्थी थे, उनकी भाषाएँ भी विचित्र थीं। सुबह में वे पुस्तकें रटते और रात में ऊधम मचाते। यही उनका कार्य-क्रम था। धींगा-मस्ती करते और तूफ़ान उठाते वे कभी थकते ही नहीं। इससे अब मुकुन्द को अपने पठन-पाठन में एकान्त मिलना मुश्किल हो गया। उसे बड़ी भोर उठने की आदत थी। अतएव उसे सुबह के चार से सात बजे तक ही तनिक शान्ति का वातावरण मिलता, क्योंकि इस समय सभी विद्यार्थी सोए पड़े रहते। रात-भर वे धमाधम करते और अब सुबह में उनसे उठा न जाता।

जिन दिनों मुकुन्द स्कूल में था, उन दिनों उसे विद्यार्थी-जगत् का ऊपरी ज्ञान था। लेकिन नई पीढ़ी किस प्रकार की है, इसका ज्ञान तो उसे बोर्डिंग में आने पर ही भली-भाँति हुआ। अपनी कक्षा में होशियार माने जाने वाले विद्यार्थियों का रहन-सहन कितना गन्दा और आलस-भरा था यह देख-देखकर मुकुन्द को घृणा आती थी। कई विद्यार्थी तो तीन-तीन दिन तक नहाते भी नहीं। कई दाँतों को साफ़ भी न करते। कइयों को नाक, कानों में उँगली डालने की आदत थी। कुछ खुजली से पीड़ित थे। धनवान घर के लड़कों को पैसे की कीमत मालूम नहीं थी और वे मनमाने ढंग से खर्च करते थे। रात को बारह-एक बजे तक वे होटलों में बैठे चाय पीते अथवा सिगरेट का धुआँ उड़ाते। इसमें उन्हें कोई विचित्रता प्रतीत न होती थी। बोलने-चलने का उनमें कोई ढंग नहीं था। किसी विषय में वे नियमित न थे।

बोर्डिंग का व्यवस्थापक एक गुजराती था। वह विद्यार्थियों में बड़ा अप्रिय था। इसका कारण यह था कि वह बहुत कठोर था। और कठोर होते हुए भी प्रभावशाली न था। उसकी कंजूसी विद्यार्थियों की टीका का विषय बन थी। और कंजूसी भी कैसी—बारह-बारह महीनों तक वह एक ही कोट पह- आँखों पर हमेशा चश्मा चढ़ाए रखता। और यदि किसी एक विद्यार्थी को कड़ी दृष्टि से देखना होता तो वह अपने भौंह ऊँचे चढ़ाता और चश्मे में अपनी आँखें टेढ़ी करके कुछ ऐसी रीति से देखता कि विद्यार्थियों को नया मिल जाता। उसका क़द ठिंगना और शरीर मोटा था। इससे लड़के

उसे 'ठिंगूजी' कहकर पुकारते। उसने तीन शादियाँ की थीं। पहली दो स्त्रियाँ मर गई थीं। और अब तीसरी ब्याह कर लाया था। यह स्त्री वय में बहुत छोटी थी और स्वभाव इसका छोकरियों-जैसा था। सांसारिक विषयों का उसे तनिक भी अनुभव न था, इस कारण पति की ओर से उसे बारम्बार फटकार मिलती। इतना ही नहीं वह यदा-कदा उसे पीटता। ऐसे वक्त यह नन्हीं बीबी शोर-गुल मचाती और चीखकर रोती। उसकी चीख-पुकार सुनकर सारे बोर्डिंग के विद्यार्थी वहाँ धड़ाधड़ करते दौड़ जाते और दूर से यह तमाशा देखते। इस हृदय-द्रावक दृश्य को देखकर विद्यार्थी कोई सबक नहीं लेते। वे तो इसमें आनन्द ही पाते। यह देख-देखकर मुकुन्द को अपार दुःख होता। पुरुष ऐसा पशु क्योंकर बन जाता है? और स्त्री भी चूँ तक किए बिना ऐसे अत्याचार कैसे सह लेती है? यह मुकुन्द के लिए आश्चर्य का विषय था। उसके सह-पाठियों में से कुछ ही ऐसे थे जो उसकी ओर सहानुभूति दर्शाते या उसके विचारों का अनुमोदन करते। यदि ऐसा करते, तो भी केवल मुकुन्द को खुश रखने के लिए ही और केवल मौखिक रूप से ही। कई विद्यार्थी कहते—"यह तो दुनिया की परम्परा है, इसमें कौन-सी नई बात है? विचार करने-जैसी कौन-सी चीज़ है?"

अकेले लीलाधर को ही यह बात सुनकर, व्यवस्थापक पर गुस्सा आता और वह दाँत कटकटाकर कहता—"यदि मैं इस बोर्डिंग में रहता होता, तो इन नर-पिशाचों की जान ले लेता।"

कॉलिज जाने पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों मुकुन्द को कई बातों का अनुभव हुआ। उसका अनुभव अधिकाधिक बढ़ने लगा। उसने देखा कि नई पीढ़ी का मन, जितना चाहिए उतना शुद्ध नहीं है। विद्यार्थियों पर प्रत्येक प्रकार से अपनी छाप डालने वाले, उनके पीछे-पीछे फिरने वाले, और निकृष्ट कुचेष्टा करने वाले—कई विद्यार्थी उसकी नज़र में आए। और दुःख की बात तो यह थी कि कई बार वे विद्यार्थी ऐसी-ऐसी डींग मारते थे, जिनमें कालिज की कन्याओं-द्वारा उन्हें प्रोत्साहन मिलने की चर्चा रहती। मुकुन्द ने

ये चर्चाएँ सुनी थीं। इसी समय मुकुन्द ने टाल्स्टाय की पुस्तक 'रिसरक्शन' पढ़ी। इस पुस्तक ने उसके मन में, अनदेखे ही क्रान्ति के बीज बो दिए, उस समय मुकुन्द को इस बात का भान न था।

६

माँ का पत्र

एक दिन मुकुन्द को अपनी माँ का खत मिला। यों देखा जाए, तो इस खत में कोई नई बात न थी। मुकुन्द अपनी माँ को नियमिततापूर्वक पत्र लिखता और उसे प्रामाणिक रूप से अपने विचार और अनुभव बताता। माँ भी उसे ऐसी सलाह-शिक्षा और उत्साह-प्रेरणा देती, जो उचित होती, परन्तु इस बार उसे माँ के पत्र में कोई विशेष हेतु नज़र आया, इस कारण वह इस पत्र का अमुक अंश बार-बार पढ़ रहा था—

"मैं तेरे जन्म से ही तेरा निरीक्षण कर रही हूँ। कभी तेरी माँ, कभी तेरी दाई, कभी शिक्षिका और कभी परामर्शदात्री बनकर मैं तुझ से विविध-संबंध रखती आई हूँ। लेकिन, अब वक्त आ पहुँचा है कि जब मुझे तेरी मित्र बनना है। अब तू वयस्क हो गया है,इसलिए तेरे विचारों को विशिष्टता मिलनी चाहिए। अवश्य तू अपने विचार और अनुभव की वृद्धि किए जा, परन्तु मुझे यह कहना है कि तू अपने विचार और अनुभव को विशेष दिशा दे। उन्हें विशेष स्वरूप दे, अन्यथा बनैले घास की तरह वे इच्छानुसार बढ़ते रहेंगे और उनमें कोई समरूपता या मर्यादा नहीं रह जाएगी।

"तरुणावस्था में तरुणों पर कोई खास जवाबदारी नहीं रहती है और न उन्हें कोई चिन्ता ही होती है। फलस्वरूप बालकों को इस संसार का नाटक

दर्शकों की भाँति आराम से, कुर्सी पर बैठे-बैठे, देखने को मिलता है। और जिस प्रकार सुख-चैन तथा वैभव-विलास में पोषित राजा को दुष्कालीन संकटों के कारण जो कष्ट होता है उसकी कल्पना नहीं होती—इसी प्रकार तरुण दर्शकों के विषय में भी यह बात समझ लेनी है। सारा संसार उन्हें गेंद की भाँति दिखाई देता है और कुम्हार मिट्टी को जिस प्रकार इच्छित आकार देता है, उसी प्रकार इस संसार को इच्छित रूप और आकार प्रदान करूँ—ऐसी कामना तरुणों में रहती है। लेकिन, मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं है। मुझे जिस विषय का दुःख है, वह दो बातों को लेकर है। एक तो बुद्धि और ज्ञान के उदय-काल में जो प्रतिक्रिया होती है, उससे तरुण अपना कर्तव्य भी भूल जाता है। दूसरी बात यह है कि जिस समय वह आलोचना करता है, उस समय आलोच्य विषय में स्थित अपने भाग को भूल जाता है।

"दुनिया चाहे जैसी हो, पर तुझे यह न भूल जाना चाहिए कि इसकी रचना में तेरा भी बहुत-कुछ हिस्सा है। पृथ्वी पर रहकर हम चन्द्रमा की आलोचना कर सकते हैं, परन्तु पानी में रहकर मगर से बैर करना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती। जब तक हम संसार के उपकार ले रहे हैं, सेवा की अपेक्षा रख रहे हैं, उसकी कृपा से निभ रहे हैं, तब तक उसके जीवन के साथ हमारा जीवन सदा के लिए गुँथा हुआ है। इसका अर्थ यह नहीं कि दुनिया निर्दोष है, और यों मानकर, जो चल रहा है, उसे चलने देना चाहिए। मेरे कहने का यह तात्पर्य है कि उतावली में कोई मत बनाकर, दुनिया को दोष नहीं देना चाहिए; अथवा किसी भी विषय में द्वेष-बुद्धि नहीं रखनी चाहिए, उसी प्रकार किसी का तिरस्कार न करना चाहिए। अभी भी जगत् पूर्णावस्था को प्राप्त नहीं हुआ है। इसका यह अर्थ हुआ कि हम मनुष्य भी अपूर्णावस्था में हैं। व्यष्टि के कारण समष्टि की रचना होती है और यदि समष्टि का—समाज का सुधार करना है, तो व्यक्ति को अपने से शुरुआत करनी चाहिए

"प्रत्येक व्यक्ति छोटे प्रमाण में अखिल जगत् है। यदि तुझे सारे जगत् के समस्त स्वरूपों के कारण समझ लेने हैं, तो तू अपनी दृष्टि अपनी ओर केन्द्रित कर। सबसे पहले अपना सुधार कर। वर्तमान में तू छोटी-छोटी बातों से

आरम्भ कर और पीछे यह देख कि जगत् की कठिनाइयाँ कैसी और कौन-सी हैं। यदि मनुष्य स्वयं का सुधार करने का प्रयत्न करता है, तो भी कहा जाएगा कि उसने बहुत-कुछ किया और उतने अंशों में वह संसार का कल्याण करेगा।

"और इस प्रकार की दृष्टि तो तभी आएगी, जब मनुष्य अपने को संसार का एक अंश मानने लग जाएगा। जब मनुष्य संसार की टीका करता है, तो ऐसा मालूम होता है, मानो वह अपने-आपको दुनिया से अलग मानकर टीका कर रहा है। जब वह जगत् से आत्मैक्य रखता है, तब उसकी टीका बन्द होती है, उस समय उसके हृदय में, प्रेम के सिवाय, दूसरी किसी भावना के लिए कोई स्थान नहीं रहता। प्रेम के समान दूसरा कोई-गुरु या शिक्षक नहीं। जब यह प्रीति, यह प्रेम स्वार्थ रहित हो जाएगा, तब यह समझ लेना होगा कि सुधारकों के हाथ में एक अचूक अस्त्र आ गया है।"

उस रात मुकुन्द ने विचित्र स्वप्न देखे।

७

बीच का वक्त

कालिज जाने के बाद, प्रथम छः महीने बीतने पर, मुकुन्द छुट्टियों में घर आया। वहाँ उसे एक नया आगन्तुक नज़र आया। यह आगन्तुक एक महिला थी—ऊँची, मज़बूत शरीर की, सकेशा विधवा थी वह। उसे बताया गया कि यह उसकी बुआ है। सुनकर, मुकुन्द ने उसे प्रणाम किया और बुआ ने उसे आशीष दी। मुकुन्द को अपने माता-पिता के निकट-संबंधियों के विषय में माहिती न थी। वह अपने नाना के इतिहास से अपरिचित था और उसके माँ-बाप जाति से परित्यक्त क्यों हैं, इसकी उसे कोई जानकारी न थी। सचमुच में माँ का अपने नैहर के सिवाय, दूसरों से निकट का कोई संबंध न था। विश्वनाथ पंत के निकट के संबंधी थे, परन्तु उसका विवाह उसके जाति वालों को पसन्द न आया था, इसलिए उसने किसी से पूछे बिना ही, बिना किसी को सूचना दिए ही अपना विवाह कर लिया था, इससे उसकी जाति वाले उससे रुष्ट थे। एक ओर सरकारी रोष, दूसरी ओर खून का कंलक इन कारणों से माँ का नैहर बहिष्कृत था। विश्वनाथ भी जाति से बाहर था। विवाह के पश्चात् वह उत्तर की ओर चला गया, इससे वे स्वयं ही अपने लोगों से दूर हो गए।

जब राजापुर में फिर से आए, उसके बाद कई बार कुछ जाति-बन्धुओं ने

उनसे पत्र-व्यवहार शुरू किया और धीरे-धीरे उनके घर भी आने-जाने लगे। इस समय मुकुन्द बम्बई में पढ़ रहा था।

विश्वनाथ पंत की बहन यशोदा बाई का विवाह बचपन में ही हो गया था। उसके ससुर ने उसे आदेश दिया था कि वह अपने भाई के साथ किसी प्रकार का संबंध न रखे, पर अब वह स्वतंत्र थी। उसकी तीनों पुत्रियाँ विवाहोपरान्त अपने ससुराल में रहती थीं। यशोदा बाई अपने रुग्ण पति की सेवा में लगी थी कि अचानक पति की बीमारी बढ़ गई। उसने अपने भाई से पत्र-व्यवहार किया और लिखा कि राजापुर आने की उसकी इच्छा है। फिर तो कालान्तर में, वह विधवा हो गई और यह निर्णय करके कि अपनी भाभी के साथ शेष जीवन बिताएगी—वह राजापुर में अपने भाई विश्वनाथ पंत के यहाँ आई।

यशोदा बाई से मुकुन्द का परिचय होने पर, मुकुन्द को ज्ञात हुआ कि यशोदा बाई तो उसकी माँ की अपेक्षा भिन्न ही प्रकार की महिला है। उसके विचार सनातन रूढ़ि के हैं और शिक्षण भी नहीं है।

यशोदा बाई धर्मभीरु थी, फिर भी उसका मन उचित प्रकार से दुनिया से गुँथा हुआ था। मुकुन्द से पहचान होने पर, वह उसके विवाह और धनोपार्जन के विषय में वार्तालाप करने लगी। मुकुन्द को बुआ की ऐसी बातें पसन्द न आतीं, परन्तु उसका स्वभाव मूलतया विनम्र था, इसलिए उसे बुआ की बातें बुरी न लगीं। दूसरी बात उसके ध्यान में आई—माँ उत्तरावस्था में आई है। उसके कई बाल सफ़ेद हो गए थे और चेहरे पर झुर्रियाँ दिखने लगी थीं। शरीर के जोड़ों में कभी-कभी पीड़ा भी होती थी और थकान महसूस होती थी। इतना होने पर भी, उसकी प्रसन्नता, प्रफुल्लता और तेज तो पूर्ववत् ही दृष्टिगोचर होते थे। माँ की यह दशा देखकर, मुकुन्द को दुःख हुआ और उसने माँ से कहा—"माँ, मैं तुम्हारी सेवा के लिए यहाँ रहना चाहता हूँ। अब मुझे बम्बई नहीं जाना है। मुझे इस दुनिया में तुमसे अधिक प्यारा और कौन है?"

माँ ने हँसकर उत्तर दिया—"बेटा, जब तक मैं दुनिया में हूँ, तब तक

तुझसे सेवा लेती रहूँ, यह ठीक है। लेकिन, तुझे अपनी पढ़ाई छोड़कर, यहाँ रहना पड़े, इतना खराब मेरा स्वास्थ्य नहीं है। तू मेरी चिन्ता न कर।"

"लेकिन दर्द बढ़ गया तो?"

"तो क्या, तेरे यहाँ रहने से मिट जाएगा क्या? मैं अपना उपचार करती रहती हूँ।"

बीच में यशोदा बाई बोली—"अरे, मैं तो यहाँ हूँ, मुकुन्द! फिर तू चिन्ता क्यों करता है? निश्चिन्त होकर, तू जा।"

अन्त में, मुकुन्द बम्बई चला गया।

बम्बई में मुकुन्द कभी किसी के यहाँ नहीं जाता था, परन्तु एक दिन उसे अपना नियम तोड़ना पड़ा, जब वह सुबह में टहलकर, लौट रहा था, उसने नौ वर्ष का एक लड़का देखा। वह लड़का उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसका चेहरा देखते ही मुकुन्द को चन्द्रशेखर का चेहरा याद आया और उसने पूछा—"तू चन्द्रशेखर का भाई है?"

"हाँ," उसने जवाब दिया।

"तेरा क्या नाम है?"

"भोलानाथ।"

"किस लिए आया है?"

"बड़े भाई ने भेजा है। तुम्हें घर पर बुलाया है। अभी चलो।" उत्सुकता-पूर्वक वह कहने लगा।

यह सुनकर, मुकुन्द को कुछ आश्चर्य हुआ। लेकिन अधिक पूछ-ताछ न करके वह भोलानाथ के साथ चल पड़ा। बाहर गाड़ी खड़ी थी, दोनों उसमें बैठे और गाड़ी पेडर रोड की ओर चलने लगी।

चन्द्रशेखर का घर श्रीमंतों के ठाठ-बाट से भरा था। यद्यपि उसका बँगला बड़ा न था, परन्तु मूल्यवान् वस्तुओं से सजा हुआ था। यों तो चन्द्रशेखर अपने यहाँ किसी को बुलाता न था, परन्तु इस दिन उसके पिता घर पर न थे। वे अपनी योषिता को लेकर कहीं बाहर ट्रिप पर गए थे। वे दो दिन तक लौटने

वाले नहीं थे, इस बात का विश्वास होने से ही चन्द्रशेखर ने अपने मित्र मुकुन्द के प्रति स्नेह-दर्शनार्थ निमन्त्रण दिया था। मुकुन्द ने ऐसा पाश्चात्य ठाठ-बाट पहले कभी न देखा था। यह सब वैभव उसे नया प्रतीत हुआ। चन्द्र-शेखर ने उसे अपना सारा बँगला बतलाया, अपना सजा हुआ कमरा, खिड़की से दिखाई देने वाला नयन-मनोहारी दृश्य-'व्यू', पाँच सौ रुपए का हार्मोनियम, दो सौ रुपए का ड्रेसिंग टेबल आदि चन्द्रशेखर विस्तार एवं विशेषतापूर्वक बता रहा था। उसके कबर्ड में इतनी निरर्थक वस्तुएँ खचाखच भरी थीं कि मुकुन्द को उन सबको देखने की फुर्सत नहीं थी और न उन सबका वर्णन सुनने का समय ही था।

"यह है हेज़लिन स्नो। यह आयज़ेल्मा क्रीम। यह पेरिशियन डॉम।" चन्द्रशेखर ने बतलाया।

"बस, बस, भाई!" मुकुन्द ऊबकर बोला—"बस, बस, भाई, तू इन चीज़ों का उपयोग कैसे और कब करता है, यह मेरे दिमाग में नहीं आ रहा है।"

"क्यों? सुबह में हज़ामत के बाद, स्नान करती बेला, स्नान के बाद, सन्ध्या-समय, रात्रि में मेजमानों में जाते वक्त। उन्हाले में, सियाले में, चौमासे में—यों अनेक बार अलग-अलग ऋतुओं में व्यवहार में लाने के ये टाइलेट्स हैं। इनसे त्वचा कितनी सुन्दर और मुलायम रहती है!"

इस बार मुकुन्द ने उसकी ओर तीव्र दृष्टिपात किया। उसने कई बार अमरीकी सिने-अभिनेत्रियों की तस्वीरें समाचारपत्रों में देखी हैं। चन्द्रशेखर को देखकर उसे इस समय लगा कि कोई अमरीकी अभिनेत्री भारतीय पुरुष का वेश धारण कर सामने खड़ी है।

अब चन्द्रशेखर ने मुकुन्द को अपना 'स्टडी रूम'—अध्ययन-कक्ष दिख-लाया। यह कक्ष सर्वथा स्वच्छ एवं सुन्दर था। लेकिन मेज़ पर 'ऐश-ट्रे' और सिगरेट के डिब्बे देखकर मुकुन्द का मन खट्टा हो गया। चन्द्रशेखर के होठ सिगरेट पीने के कारण कृत्रिम रूप से काले पड़ गए थे। उसके इस कमरे में रेस के घोड़ों के चित्र भी टँगे थे। दूसरे चित्र नग्न-शृङ्गार के थे। कोनों में योरपीय युवतियों के स्टेच्यु रखे थे। ये भी अर्धनग्न अवस्था में थे। मुकुन्द ने

सौम्य शब्दों में चन्द्रशेखर की ऐसी अभिरुचि की टीका की। चन्द्रशेखर ने अपने बड़ों का कमरा तो उसे अभी बताया नहीं था, वरना मुकुन्द वहाँ एक क्षण भी खड़ा नहीं रह सकता था। दोनों मकान में घूमते हुए बातें करते जा रहे थे। और भोलानाथ उनके आगे-पीछे और बीच में आ जाता था और उनके बीच में बोल उठता। इससे चन्द्रशेखर उसे बीच-बीच में टोकता था। कारण यह था कि उसकी बाल्यावस्था देखते हुए, वह कई बार बेकार बात कह उठता था।

मुकुन्द चन्द्रशेखर की पोमेड और वेस्लिन की शीशियों पर अपनी राय ज़ाहिर कर रहा था कि भोलानाथ बीच में बोल उठा—"तब तो तुम साहब के कमरे में गए ही नहीं ? वहाँ लाल-पीले रंग की कई बोतलें रखी हैं।"

यह सुनकर चन्द्रशेखर ने उसकी ओर आँखें निकालकर देखा और भोलानाथ चुप रह गया। इसके बाद चन्द्रशेखर ने मुकुन्द को अपनी माँ का चित्र बताया। यह चित्र सुन्दर और कलात्मक ढंग से मढ़ा हुआ था। चन्द्रशेखर उस खर्च का जिक्र कर रहा था जो इस मढ़ाई में हुआ था। इतने में भोलानाथ फिर बीच में बोल उठा—"अरे! इसमें क्या रखा है! हमारे साहब के खण्ड में दूसरी बाई का जो फोटो है, वह आप देखें, तो...."

"भोलानाथ!" चन्द्रशेखर गरज उठा—"चुप रहेगा या नहीं ?"

भोलानाथ फिर चुप हो गया। चन्द्रशेखर ने उसे हुक्म दिया—"जा, रसोई-महाराज से पूछ, खाने की तैयारी हो गई या नहीं ?"

भोलानाथ चला गया। उसके बाद चन्द्रशेखर ने विषयान्तर किया। मुकुन्द को चन्द्रशेखर के घर की 'अन्दरूनी बातें' मालूम न होने से, वह इस उलझन को न सुलझा सका। चुपचुप वह सब-कुछ सुनता रहा।

भोजन तैयार हो गया था। दोनों खाने के लिए बैठे। भोजन का ठाठ-बाट बहुत बड़ा था। खाते हुए, चन्द्रशेखर कह रहा था—"दोस्त, इस दुनिया में आदमी बिना-पैसे के एक क़दम भी नहीं चल सकता। ऊँचे विचारों के गप्पे बेकार हैं। गरीबी की कल्पना चाहे जितनी भव्य और उदात्त हो, उसका क्या मूल्य ? एण्ड्र्यू कार्नेगी करोड़ों रुपयों का दान करता है, उसकी कितनी

वाहवाही होती है ! उसने किस तरीके से पैसा कमाया है, यह पूछने की बात नहीं। दुनिया को इसकी परवाह भी नहीं !"

"तेरे कथन का आशय मेरी समझ में नहीं आता।"—मुकुन्द ने कहा।

"मतलब यह है कि आदमी को किसी भी तरह पैसा पैदा करना चाहिए। फिर उस पैसे का उपयोग किसी अच्छे काम में करना चाहिए।"

"तो यही कह न, हत्या करके पैसा प्राप्त करना और उसे फाँसी की सज़ा रद्द करवाने की कोशिश में ख़र्च करना ! हमारी सरकार भी यही कहती है ! शराब पियो और शिक्षा प्राप्त करो ! यदि युनिवर्सिटी की शिक्षा लेना है, तो आबकारी की आमदनी बढ़ाओ। लेकिन भाई, मैं कहता हूँ, शरीर को रोग का घर बना लेने पर, शिक्षा किस काम आएगी ? लोगों का गला काटकर, उनसे पैसा निकलवाकर, हम कौन से सद्कार्य कर लेंगे ?"

"करो या न करो, लेकिन, इतना तो मानना पड़ेगा कि पैसा एक साधन है। और जब हम पैसे का महत्त्व मान लेते हैं तो, उसे हस्तगत करने का प्रयत्न भी अनिवार्य बन जाता है। उपाय फिर चाहे कोई हो ! एंड जस्टीफाइज़ दि मीन्स।"

भोलानाथ फिर बीच में बोल उठा—"मुकुन्द भाई, सट्टे में पैसा कमाना क्या बुरा है ?"

"भोलानाथ !" चन्द्रशेखर गरज उठा—"गधे, अभी तेरा मुँह सी देता हूँ। जरा ठहर !"

यह सब देख-सुनकर मुकुन्द स्तब्ध रह गया। भोलानाथ के प्रश्न में, चिढ़ने जैसी बात कहाँ थी, यह उसकी समझ में न आया। उस पर ऐसी कठोर भाषा ! और वह भी नादान बच्चे के लिए, मुकुन्द सह न सका।

"क्या कहना और क्या न कहना, इसका इसको कुछ ध्यान नहीं।"

मुकुन्द बोला—"इसे सवाल पूछने दो। ऐसी कोई बात नहीं कि यह न पूछे।"

चन्द्रशेखर अपने बड़प्पन के नशे में बोला—"छोटों को बड़ों की बातों में कभी दखल न देना चाहिए। हाँ, तो मैं क्या कह रहा था ?"—कह फिर अपने

विषय पर आया—"पैसा कमाना क्या बुरा है?"

मुकुन्द बोला—"हमें खास बात पर आना चाहिए। पैसा पैदा करके, उसे हम लोक-कल्याण में लगाना चाहते हैं। इसी को तू एंड कहता है?"

"बिल्कुल ठीक।"

"लोक-कल्याण का अर्थ हुआ, मानव-समाज की नैतिक, भौतिक और आध्यात्यिक—यों सब प्रकार की उन्नति। यही न?"

"ठीक।"

"तो फिर जिस उन्नति के लिए हम पैसा कमाना चाहते हैं, और जिस कमाई के तरीके से हम समाज का सत्यानाश कर रहे हैं, जो कमाई समाज को अधोगति में ले जाने वाली है, वह कल्याण की जनेता कैसे हो सकती है? पैसा आने के पहले बिगड़ी हुई बाज़ी, पैसा आने पर कैसे बन सकती है? इसमें समाज का हित और रक्षण कैसे होगा? और इसका क्या प्रमाण कि कुमार्ग-द्वारा द्रव्य-सम्पादन करने वाले व्यक्तियों का हृदय बहरा और पंगु न हो जाएगा? उल्टे, बहुधा पाप से प्राप्त पैसा कुमार्गों में ही खर्च हो जाता है। यह हमने अनेक बार देखा है।"

इतने में भोलानाथ ने गुस्से में आकर श्रीखंड की कैटोरी को ज़ोर से दूर फेंक दिया—"कितना खट्टा है श्रीखंड?" वह शोर-गुल मचाने लगा—"इस मल्लप्पा से मैंने हज़ार बार कहा, लेकिन यह कम्बख़्त जैसा का तैसा ही रहा।"

"चीनी दूँ क्या?"—मल्लप्पा डरता-डरता बोला।

भोलानाथ ने मल्लप्पा का चीनीवाला हाथ ज़ोर से झटक दिया और सारी चीनी उसके मुँह पर जा गिरी। पसीने से भीगे मल्लप्पा के मुँह पर चीनी के कण जम गए। इस कारण उसका चेहरा कुछ अच्छा न दीखने लगा। इस घटना से मुकुन्द के मन में उद्वेग आया। बेचारा मल्लप्पा चुपचाप अपना मुँह पोंछता रहा।

बीच में बोलने के लिए रुष्ट हो जाने वाले चन्द्रशेखर ने इस घटना को देखकर कुछ न कहा, उल्टे उसने तनिक क्रोधपूर्वक मल्लप्पा को धमकाया—"गधे की तरह क्या खड़ा है, जा, भजिये ले आ। जल्दी।"

इसी समय बाहर कुछ खड़खड़ाहट सुनाई दी, उसे सुनकर चन्द्रशेखर उतावली में अपने हाथ का कौर छोड़कर खड़ा हो गया और—'तू शान्ति से अपना भोजन पूरा कर।' कह, हाँपता हुआ, वह बाहर की ओर गया।

इस भाग-दौड़ से मुकुन्द विचार में पड़ गया। इतने में भोलानाथ बोल उठा—"जरूर साहब आए हैं। साथ में बाई को भी लाए हैं।" उसने भी खाना छोड़, बाहर दौड़ लगाई।

अब मुकुन्द को अच्छा न लगा कि वह थाली पर बैठा रहे। उसने देखा कि उसके पास दो नौकर स्तब्ध होकर खड़े हैं। मुकुन्द भी जल्दी से खड़ा हुआ और हाथ-मुँह धोकर, पोंछकर वह बाहर जाने ही वाला था कि एक विलक्षण घटना उसे दृष्टिगोचर हुई।

सामने ही मँझली उम्र का एक प्रौढ़ व्यक्ति आ रहा था। उम्र तो कुछ ख़ास न थी, परन्तु दुर्व्यसनों ने उसे घेर लिया है, यह उसके कृश शरीर, फीके और बेडौल चेहरे से प्रतीत हो रहा था। उसकी आँखों में तेज नहीं था और उनके आसपास की त्वचा पर काले धब्बे पड़े हुए थे। उसके होठ भी काले पड़ रहे थे और बड़ा पेट बाहर निकल आया था। चाल ऐसी थी कि पैर लड़खड़ाते थे। क़दम अस्थिर थे। फिर भी उसे देखने से यह मालूम होता था कि अपनी जवानी में वह दिखनौटा रहा होगा। वह सूट पहने हुए था और साथ में चलता एक नौकर उसकी हेट लिये हुए था। उसका बायाँ हाथ थामे एक स्त्री आ रही थी। स्त्री की उम्र लगभग तीस वर्ष की होगी। मुकुन्द उसकी सुन्दरता, फैशनेबल वेष-भूषा, सुरमेवाली आँखें, पाउडर पुता चेहरा, और मटकती चाल देखकर, देखता ही रह गया! इसी समय उसे भोलानाथ की बात याद आई। उसने जान लिया कि यह व्यक्ति दूसरा कोई नहीं, चन्द्रशेखर का पिता ही है। तो फिर, यह स्त्री कौन है? भोलानाथ ने उस वक्त 'बाई-बाई' कहकर जिसका उल्लेख किया था, वही है यह? लेकिन, यह बाई इस व्यक्ति की पत्नी हो, ऐसा तो नहीं लगता। इसे देखकर कोई भी व्यक्ति यह न कहेगा। लेकिन....चन्द्रशेखर कहाँ छू-मंतर हो गया? इस व्यक्ति और बाई को आते देखकर मुकुन्द कबर्ड के पीछे खड़ा रह गया। इस कारण यह

व्यक्ति उसे न देख सका। किन्तु, उस बाई की चपल दृष्टि से वह छिप न सका। उसकी नज़र में कोई ख़ास बात है, यह मुकुन्द को स्पष्ट महसूस हुआ। तब तक दोनों भीतरी खंड में चले गए। अब क्या करना ? मुकुन्द यह सोचता रहा, तभी चन्द्रशेखर कहीं से निकलकर, दौड़ता हुआ उसके पास आया और उसके दोनों हाथ थामकर बोला—"क्यों भाई, तू बीच में ही थाली से खड़ा हो गया ? मुझे बड़ा अफ़सोस है, लेकिन क्या करूँ ? मेरे पास कोई चारा नहीं था। इस विचित्र परिस्थित में....आदमी...."

चन्द्रशेखर रुकता-रुकता बोल रहा था। मुकुन्द ने उसे बीच में रोककर कहा—"बस, बहुत हुआ। भाई, इसमें अफ़सोस जाहिर करने जैसी क्या बात है ? मैं सच कहता हूँ, मैंने पेट-भर भोजन किया है।" और वह सहसा चुप रह गया। सामने से बाई आ रही थी। चन्द्रशेखर मुकुन्द का हाथ थामे, दूर ले जाने के प्रयत्न में था कि बाई उनके सामने आकर खड़ी रह गई।

चन्द्रशेखर की ओर देखकर, मृदु हास्यपूर्वक उसने पूछा—"शेखर बाबू, ये महाशय कौन हैं ? आपके मित्र हैं क्या ? यों, बिना परिचय कराए, इन्हें क्यों जाने दे रहे हैं ?"

चन्द्रशेखर ने अचकचाते हुए कहा—"ये ज़रा जल्दी में हैं। फिर कभी परिचय करा दूँगा।

चन्द्रशेखर तो मुकुन्द को खींचे लिये जा रहा था। लेकिन बाई जरा चतुर थी। उसने रास्ता रोक लिया और मुकुन्द का कुछ भी संकोच किए बिना, कहने लगी—"हमारे शेखर बाबू बड़े स्वार्थी हैं। मैं इन्हें बार-बार कहती हूँ कि घर में भूत की तरह अकेले बैठे रहते हो, अपने मित्रों को यहाँ लाते क्यों नहीं ? लेकिन ये मेरी एक भी नहीं सुनते। आज अचानक आप यहाँ आ गए, यह देखकर मैं खुश हूँ। आप रोज़ आया कीजिए और हमारे इन शेखर बाबू को हँसना-बोलना सिखाइए।"

इस प्रकार सीधा वार देखकर मुकुन्द दंग रह गया। लेकिन कुछ भी हो, मुकुन्द को इस बाई की सरलता पसन्द आई। विनय से उसने कहा—"आप मुझे जो मान दे रही हैं, उसके लिए कृतज्ञ हूँ! आप हमेशा चन्द्रशेखर के

साथ रहती हैं, फिर भी इन्हें हँसा न सकीं, और मुँह से कुछ कहला न सकीं, तो फिर मैं क्या कर सकता हूँ ? और चन्द्रशेखर बोलते नहीं, ऐसा अनुभव तो मुझे आज तक न हुआ।"

ऐसा प्रतीत हुआ कि इस स्त्री को मुकुन्द का यह उत्तर पाकर सन्तोष हुआ है। वह पुनः नम्रता से बोली—"अब अपना नाम-पता भी बताएँगे या नहीं ?"

अन्दर से तड़पते हुए, पर बाहर से शान्ति प्रदर्शित करते, चन्द्रशेखर ने उसकी जिज्ञासा दूर की।

"क्या कहना!"—अन्त में वह बोली—"देखते-देखते एक साल बीत गया, लेकिन शेखर बाबू ने कभी आपका उल्लेख न किया। कई बार मैं उनसे अपने कालिज के बारे में पूछती हूँ, परन्तु ये बताएँ तब न।"

इतने में भोलानाथ दौड़ता हुआ वहाँ आया। और बाई से चिपटकर बोला—"बाई, मैंने जो चीज़ें बताई थीं, लाईं ?"

"हाँ"—उसके केशों पर हाथ फिराते उस स्त्री ने कहा—"उस काले ट्रंक में ऊपर ही रखी हैं। जा, जल्दी जाकर ले आ।"

भोलानाथ चला गया। इस सन्धि-अवसर का लाभ लेकर चन्द्रशेखर मुकुन्द को फिर से खींचने लगा। लेकिन मुकुन्द के मन में इस समय कोई विलक्षण भावना जाग्रत हो रही थी। वह इस स्त्री से अधिक बातें करने के लिए उत्सुक था, लेकिन क्या करता! जाते-जाते वह इतना ही कह सकी—"पहचान रखना, भूल न जाना और कभी-कभी यहाँ आते रहना।"

मुकुन्द ने नमस्कार किया और वहाँ से चल पड़ा। बगीचे में आने पर चन्द्रशेखर बोला—"मुझे ख़बर न थी कि ये लोग आज ही आ पहुँचेंगे, वरना मैं तुझे आज न बुलाता। हमारे घर का तूने यह दृश्य देखा है!"

क्या जवाब, दे मुकुन्द को सूझ नहीं पड़ा। इसलिए, वह चुप रहा।

"दोस्त! अधिक क्या कहूँ, बँधी मुट्ठी सवा लाख की होती है। मैं अपने घर किसी को नहीं बुलाता, इसका कारण यही है कि ईश्वर ने धन, दौलत और सब-कुछ दिया है लेकिन, माँ का सुख नहीं दिया। अन्यथा वे क्यों-कर हमें छोड़ जातीं ? और यदि उन्हें स्वर्ग सिधारना था, तो क्या साहब के

लिए दूसरा कोई सर्वमान्य मार्ग न था कि ऐसा उल्टा रास्ता पकड़ा ?"

इस समय मुकुन्द को भोजन-वेला का संवाद याद आया। पैसे से सब-कुछ मिलता है, तो चन्द्रशेखर दुःखी क्यों है?

"जब तक यह हमारे सिर पर बैठी है, तब तक...."—चन्द्रशेखर कहने लगा—"तब तक घर में पैर रखने का मेरा जी नहीं होता। तब तक मैं बाहर ही रहता हूँ और जब यह बाहर जाती है. मैं घर में आता हूँ। ऐसी है स्थिति, आज। इसने तो साहब को भी कहीं का नहीं रखा है।"

मुकुन्द के मन में शंका उठी, प्रश्न उठा—इसने साहब को उल्टे मार्ग पर लगाया है या साहब ने इसे? वस्तुस्थिति से अजान होने के कारण दुनिया सहज ही इस वार-वनिता को अपराधी ठहराता है। दुनिया का तो क्रम ही ऐसा है।

मुकुन्द की आँखों के सामने उस औरत का चेहरा घूमने लगा। उसका संभाषण ऐसा न था कि उसकी वेश-भूषा को शोभा दे। भोलानाथ और चन्द्र-शेखर के प्रति उसका जो व्यवहार था, वह भी उल्लेखनीय न था।

"मित्र, वार-वनिताओं के चमत्कार तू जानता नहीं। वे बताती हैं कुछ और, और करती हैं कुछ और! और उनके मन में तो तीसरी ही बात रहती है। काम वे चौथा करती हैं। किसी को उनका रंचमात्र भी विश्वास नहीं करना चाहिए।"—वह इस प्रकार बोल रहा था मानों इस दुनिया में एकमात्र विश्वासपात्र व्यक्ति वही है। इतने में मोटर आ गई। मुकुन्द से हाथ मिला-कर चन्द्रशेखर कहने लगा—"जा रहे हो? आज तो तुम्हारा भोजन अधूरा रह गया। उसके लिए मुझे बड़ा खेद है। फिर जब मिलेंगे, इसकी कसर पूरी करूँगा। भाई, आज की घटनाएँ भूल जाना। अच्छा, नमस्ते।"

कार जब फाटक से बाहर जा रही थी, मुकुन्द ने यों ही ऊपर देखा—गेलेरी में बाई अपने कपोल पर हाथ छुआए उसकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देख रही थी। प्रतिमा की तरह खड़ी थी वह!

उस समय उसके मन में कैसे विचार उठ रहे होंगे?

८

रमा काकी की मनौती

लीलाधर का स्वभाव चंचल है, रमा काकी यह भली-भाँति जानती थी और इसी से उन्हें लीलाधर की पढ़ाई की चिन्ता रहा करती थी। लीलाधर का लक्ष्य अध्ययन की ओर कम था, इससे यह नहीं कहा जा सकता था कि वह परीक्षा में पास होगा या नहीं? यह एक बड़ा सवाल सदैव रमा काकी के सामने खड़ा रहता। फलस्वरूप वे ईश्वर की आराधना और याचना में लग गईं। दूसरे, इस उलझन से निकलने के लिए उन्होंने एक सीधा उपाय ढूँढ़ निकाला। उन्होंने ईश्वर से सीधा संपर्क साधने का कार्य शुरू किया—लीलाधर की मैट्रिक परीक्षा निकट आ गई थी, अतः रमा काकी ने सत्यनारायण की कथा लीलाधर की उपस्थिति में करवाने का आयोजन किया।

इसके बाद तो लीलाधर मैट्रिक में पास भी हो गया और कालिज भी जाने लगा। यह सब कृपा सत्यनारायण भगवान की है—ऐसी रमा काकी की श्रद्धामय मान्यता थी।

लेकिन, कथा करवाने की वह मनौती ज्यों की त्यों रह गई, पूरी न हो सकी। इसका एक बड़ा कारण था, बीच में रमा काकी का छोटा लड़का जगदीश बीमार हो गया था। वह जन्म से ही दुर्बल था और उस पर भी पाण्डु रोग से पीड़ित था। अतः रमा काकी के लिए ज़रूरी हो गया कि वे जगदीश

को लेकर वायु-परिवर्तन के लिए बाहर जाएँ। वहाँ से लौटने पर घर की सफ़ाई और व्यवस्था में एक महीना और निकल गया। इस अवधि में लीलाधर की प्रीवियस की परीक्षा पास आ गई।

अब एक वर्ष बाद भी पिछली मनौती उतारने का निश्चय हुआ। लेकिन इस पर रमा काकी के सामने एक नई कठिनाई खड़ी थी। लीलाधर किसी प्रकार पूजा करने के लिए तैयार न था।

तिरस्कारपूर्वक उसने कहा—"मैं तो पूजा नहीं करूँगा। मनौतियों और मानताओं से ही सफलताएँ मिलतीं तो विद्यालयों को कौन पूछता ? पूजा-वूजा सब झूठ है। ब्राह्मणों और पूजारियों ने लोगों से दक्षिणा निकलवाने का यह ढोंग रचा है।" जब लीलाधर यह सब कह रहा था, उसके परिवार के पुराने पुरोहित विनू भट्टजी पास में बैठे हुए थे। लीलाधर को इस बात की परवाह न थी कि वृद्ध पुरोहित को बुरा लग जाएगा !

"छिः, छिः ! अब तो तूने हद कर दिया है !"—रमा काकी लीलाधर के शब्द सुनकर खेदपूर्वक बोली। "अपनी नास्तिकता के अभिनन्दन के लिए तू नाहक पुरोहितजी की टीका कर रहा है।"

"लेकिन जब तू मेरे विचार जानती है तो क्योंकर तूने ऐसी-ऐसी मान्यताएँ लीं ?'

"बहुत हुआ, अब चुप बैठ जा। जानती हूँ कैसे हैं तेरे विचार ! अभी तो तू बच्चा है। सिर पर कोई जवाबदारी नहीं, चिन्ता नहीं। इसी से मत और विचारों की बातें बघार रहा है।" रमा काकी ने ज़रा गुस्से में कहा।

परन्तु इससे लीलाधर के स्वाभिमान को चोट लगी और उसने तुरन्त कह दिया—"पुराने ज़माने के माता-पिता यह सोचते हैं कि उनके लड़के उन्हीं पर निर्भर हैं और इसलिए उनके पास अपने विचार नही हैं। जो माता-पिता के विचार, वही लड़कों के विचार ! लेकिन अब ऐसी भ्रमपूर्ण धारणा के दिन लद गए। भूल जाओ, स्वतंत्रता और स्वतंत्र विचारों का समय आ गया है।"

"स्वतंत्र विचार नहीं, स्वच्छंदता कहो इसे। इसी नास्तिकता के कारण सारी दुनिया परेशान है। सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है। क्यों विनू

भट्टजी, ठीक है न ?"—रमा काकी ने भट्टजी का सहारा लिया।

पुरोहितजी ने सम्मति-सूचक सिर हिलाया और कहा—"ठीक है काकी ! लोगों ने अपना धर्म छोड़ा, आचार-विचार छोड़े, यज्ञ और कर्मकाण्ड छोड़े। उनमें श्रद्धा नहीं, भक्ति नहीं। फिर भला धरती किस आधार पर टिकेगी। ऐसे कुकर्मों से जाति और समाज का भला कैसे हो सकता है ?"

लीलाधर जल्दी से बोला—"इसमें दूसरों का भला होता हो या नहीं, ब्राह्मण, भट्ट और भिक्षुओं का काम तो चलता है। हमारे इस कंगाल देश में जब तक लोगों को रोटी मिलती है, तब तक उसका चौथाई भाग ब्राह्मणों को मिलने ही वाला है।"

उपस्थित वृद्ध पुरोहित का अपमान होते देख रमा काकी को बड़ा दुःख हुआ। लीलाधर में भले धर्मवृत्ति न हो, परन्तु अपने बड़ों के उचित सम्मान का ध्यान तो उसे होना ही चाहिए। दुःखित स्वर में उसने पुरोहितजी से कहा —"भट्टजी, लड़का बेकाबू हो चला है। लेकिन उसकी बातों से आप दुःखी न होना। मेरी सास कहा करती थी—'पढ़े-लिखे लोगों की जीभ ज़रा लम्बी होती है।' अब मुझे इस कथन का अनुभव होने लगा है।"

पुरोहितजी ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया—"अरे, अरे ! दुःख किस बात का। तुम चिन्ता न करो काकी। लीलाधर अभी बालक है, क्या इस बात को मैं नहीं जानता ? कहने दो इसे, जो कुछ कहता है!" उसके बाद वे लीलाधर से कहने लगे—"भाई, तुम्हारी दृष्टि से तो हम स्वार्थी ही हैं न ? लेकिन हम जो दक्षिणा लेते हैं, वह चन्द पैसे ही तो हैं न ? तुम्हारे कालिज का चौकीदार इस दक्षिणा की अपेक्षा तिगुनी-चौगुनी बख्शीस ले लेता है। होटल का बैरा भी साँझ-सुबह हमसे दस गुने पैसे ले लेता है। क्या तुम्हें महसूस नहीं होता कि समाज इसी से भिखारी हो चला है ?"

लीलाधर इस उत्तर से ज़रा खिसिया गया। लेकिन, गिर जाने पर भी अपनी टाँग ऊँची रखने के लिए बोला—"पैसे की बात छोड़ो। पूजा के बहाने आप लोग समाज को जो अंट-शंट सिखाकर उल्लू बनाते हो, उसके बारे में क्या कहना है ! बुरी बात है यह। इसी से हमारे देश की प्रगति अड़ी पड़ी है।"

भट्टजी बोले—"अपनी भूल स्वीकार करने के लिए हम प्रस्तुत हैं। और यह भी मान लेते हैं कि हमारे पूर्वज, जो पुराने खयालों के थे, मूर्ख थे। तथापि उनकी स्वल्पमति ने जिस समय जो ठीक समझा, उसे श्रद्धापूर्वक पूरा करने का प्रयत्न किया और अपनी शक्तिपूर्वक अपने आचार-विचारों का रक्षण किया—इतना तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा। अब आओ, ज़रा नए ज़माने की ओर। नए ज़माने के समझदार माने जाने वाले लोगों को चाहिए कि वे अपने आचार-विचारों पर अमल करें। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि नया या पुराना, कुछ भी करो परन्तु जो कुछ कहो, करो, उसे आचार में प्रत्यक्ष दिखलाओ। भले हमारी चीज़ें पुरानी हों, किन्तु यह कहना ठीक नहीं कि जो कुछ पुराना है, त्याज्य है। और तुम्हें नया कुछ दीखता नहीं—क्योंकि मन में श्रद्धा और तन में शक्ति नहीं है। यों तुम एकदम शून्यवत हो। किसी चीज़ में तुम्हारी श्रद्धा नहीं। फिर भला समाज का उद्धार कैसे होगा? यदि तुम किसी मार्ग को बुरा मानते हो, तो अवश्य उसका परित्याग करो, परन्तु उसके स्थान पर किसी दूसरे मार्ग की प्रतिष्ठा अवश्य होनी चाहिए। बताओ, ऐसा कौन-सा मार्ग तुमने खोज निकाला है। तुम्हें तो सभी बातों में, चीज़ों में, संशय और शंका है। और अन्त में 'संशयात्मा विनश्यति' जैसा तुम्हारा हाल होगा। दूसरा कोई रास्ता नहीं है।"

पुरोहितजी कोई सफल तार्किक नहीं थे, परन्तु रमा काकी से बेटी-जैसा स्नेह रखते थे। लीलाधर ने उनके हृदय को ठेस पहुँचाई थी, इसीलिए वे अपने अन्तःकरण के उद्‌गार प्रकट करने को बाध्य हुए थे। लीलाधर नास्तिक था, ऐसी बात नहीं थी। तथ्य यह था कि उसके-जैसे सुखी व्यक्ति को ईश्वर के विषय में विचार करने का मौक़ा ही न मिला था। माधवराव के तथाकथित सुधारक और अस्थिर विचारों ने लीलाधर की बुद्धि को भी चक्कर में डाल दिया था। व्यवस्थित प्रकारेण विचारपूर्वक किसी पंथ के परिपक्व विचार और मत का निर्णय उसने किया हो, ऐसी स्थिति तो नहीं थी और इसी कारण वह पुरोहितजी को यथाविधि उत्तर न दे सका। वे पुनः बोले—"तुम्हें उचित न लगता हो तो मुझे दक्षिणा न दो, परन्तु अपनी माँ का कहना तो मानोगे

न ! माँ की बात मानने में, तुम्हारी राय में पुण्य भले न हो, परन्तु पाप तो नहीं ही लगेगा।"

"मैं पाप-पुण्य की कल्पना ही नहीं मानता।"—लीलाधर बोला। "लेकिन जिस कार्य में श्रद्धा नहीं, विश्वास नहीं, उस कार्य में व्यर्थ समय क्यों बरबाद किया जाए ?"

"सो तो नहीं, इस संसार में हम कई ऐसे काम भी करते हैं, जिन्हें करने की हमें जरूरत नहीं होती, फिर भी हम करते तो हैं न ? कालिज में इंजिल की कक्षा में तुम भाग तो लेते हो ? इंजिल में तुम्हारा विश्वास या श्रद्धा है ? फिर उसके प्रवचन में क्यों भाग लेते हो ? अध्यापक महोदय के कोब को सम्मानित कर सकते हो, परन्तु माँ के प्रेमपूर्ण वचनों को ठुकराना चाहते हो ? क्या यह तुम्हें शोभा देता है ?"

यह सुनकर लीलाधर बड़ा शरमिन्दा हुआ और अन्त में एक बार तो रमा काकी की मनौती पूरी हुई।

९

पतिता की कहानी

कालिज के दूसरे वर्ष के आरम्भ में मुकुन्द ने होस्टल छोड़ दिया। उसे होस्टल के शोरगुल और उच्छृङ्खल छोकरों के बीच दिन बिताना कठिन प्रतीत हुआ। अन्ततया उसने फ्रेंचब्रिज की एक 'चाल' में एक खोली किराए पर ली और शान्ति से उसमें रहने लगा। ऊपरी मंज़िल का कमरा मिलने से उसे शान्ति और साफ़ हवा मिली। जिन दिनों वह राजापुर में था, उसके मन में कई मनसूबे थे। अब उन्हें पूरा करने का अवसर सामने था। अब उसे यह महसूस होने लगा कि अपने अध्ययन के अनुसार अपने जीवन में यत्किंचित् परिवर्तन करना चाहिए। वह टाल्स्टाय का भक्त बनता जा रहा था। अब वह टाल्स्टाय के धार्मिक विचारों और मानव-जीवन-विषयक धारणाओं को लेकर गहरा मनन, चिन्तन, अभ्यास करने लगा। उसने इस बात की भी खोज की कि टाल्स्टाय-जैसे विचार स्वयं उसके जीवन में भी कहीं, उसके मस्तिष्क में आए हैं। इन चीज़ों के आधार पर उसने टाल्स्टाय-जैसी विभूति को अपना मार्ग-दर्शक मानने का प्रयत्न शुरू किया। इसका यह अर्थ हुआ कि उनका अनुगामी रहकर वह आत्मशोधन करेगा।

धीरे-धीरे उसे यह प्रतीत होने लगा कि जो तत्वशोधन में लीन रहता है, उसे शरीर का भान रहे, यह ठीक नहीं। अथवा, शरीर का उपयोग तो यही

मानकर करना चाहिए कि यह तो मात्र तत्वशोधन के कार्य में साधन-स्वरूप है। इस लब्धि पर शरीर को साधन-स्वरूप की स्वीकृति देनी है। तदनन्तर, जिस प्रकार लोहार अपना घन चला-चलाकर अपने लोहे से मनपसन्द वस्तु बना लेता है, उसी प्रकार हमें भी अपने शरीर को गढ़ लेना है।

शरीर की ओर लक्ष्य दिया, उसकी ओर ध्यान बढ़ा कि निश्चय मानो आत्मा की ओर दुर्लक्ष्य हुआ। यदि आत्मतेज को प्रदीप्त करना हो तो शरीर को दूसरे दर्जे में मात्र छायारूप मानना चाहिए। इस पर विचार करके मुकुन्द ने अपने शरीर को इसी प्रकार आदर्श बना लेने के लिए, शरीर-शास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया। इन शास्त्रों में अन्न-संबंधी ग्रन्थ प्रमुख थे। जब उसने अन्न विषयक माहिती प्राप्त कर ली तो उसके प्रयोग और परीक्षण शुरू किए। इन दिनों वह अपनी कोठरी में स्टोव पर खाना बना लेता था और इस कार्य में वह जरा भी निष्णात न था। अतः स्वादिष्ट भोजन बना लेने के झंझट में पड़ने के बदले अन्न को उबालकर, उसमें थोड़ा नमक मिलाकर, ग्रहण कर लेने में अनुकूलता लगी। उसका अध्ययन भी कहता था कि इस भाँति का भोजन शरीर और मन के लिए अधिक लाभकारी है।

मुकुन्द अपने मित्रों के साथ होटल में कभी न जाता था। यदि किसी मित्र के अत्याग्रहवश उसे कुछ खाना ही पड़ता, तो वह वही पदार्थ ग्रहण करता जो उसके अनुकूल होते। इस व्रत के लिए उसे मित्रों का मज़ाक भी सहना पड़ता। वह सब-कुछ सहन करता। किन्तु इस नए उद्योग के कारण उसका मन अध्ययन में न लगता। इसके लिए कई बार उसके मित्र उलाहना देते। फिर भी उसका यह व्यसन बढ़ता ही गया।

सावन का महीना पूरा होने आया था। एक दिन बड़ी भोर अपने नित्य के नियमानुसार मुकुन्द हैंगिंग गार्डन घूमने गया था। रात-भर वर्षा हुई थी, इसलिए चारों ओर कीचड़ हो गया था। आकाश में अभी भी बादल घिरे थे। आस-पास प्रकृति की अपार शोभा बिखरी थी। पेड़-पौधों की धूल धुल गई थी, इसलिए वे अधिक हरे लग रहे थे। फूलों के मनोहारी गुच्छों पर चित्र-

विचित्र तितलियाँ उड़ रही थीं। चारों ओर पानी ही पानी हो गया था, तथापि गार्डन का माली फव्वारे से फूल के पौधों को पानी पिलाने का काम ईमानदारी और तत्परता से कर रहा था।

यह हास्यास्पद दृश्य देखता मुकुन्द एक बेंच पर बैठा था। तभी उसे आभास हुआ कि कोई उसके पास आकर खड़ा हो गया। उस समय गार्डन में उसके और माली के सिवाय कोई न फटकता था, अतः यह सोचकर विस्मय हुआ कि तीसरा व्यक्ति कौन हो सकता है! उसने दृष्टि उठाकर देखा तो चन्द्रशेखर की बाई पर उसकी नज़र पड़ी।

बाई एकदम सफ़ेद साड़ी पहने थी। देह पर तंग आस्तीन का सफ़ेद ब्लाउज़ था। आँख में अंजन था। उसने कोई विशेष शृङ्गार नहीं किया था, परन्तु उसका केशगुंफन काफ़ी आकर्षक था। उसके सिवाय दूसरे किसी अंग में उसका प्रदर्शन नज़र नहीं आ रहा था।

मुकुन्द ने खड़े होकर प्रणाम किया। वह भी नमस्कार का उत्तर देकर मुस्कराई और कहा—"मेरी उपस्थिति से आपका ध्यान-भंग तो न हुआ?"

"नहीं, नहीं।"—मुकुन्द ने विनयपूर्वक कहा, "ऐसा मन में न लाइए। आज बड़ी भोर यहाँ कैसे आ गईं?"

"क्या आपकी यह मान्यता है कि पुरुषों को ही घूमना चाहिए, स्त्रियों को नहीं? क्या कुछ देर आपके पास बैठ सकती हूँ?"

"हाँ, हाँ, अवश्य।"—मुकुन्द ने उत्तर दिया और वह उससे कुछ अन्तर पर बैठ गई।

मुकुन्द के मन में विस्मय था। फिर भी उसने उसे झलकने न दिया और गंभीर मुद्रा बनाए रहा।

"तो चन्द्रशेखर जाग गया होगा और अब तो पढ़ने बैठ गया होगा?"—मुकुन्द ने यों ही पूछ लिया।

"शेखर बाबू अभी उठे ही नहीं।"—वह बोली। "रात दोनों भाई सिनेमा गए थे और बड़ी देर से लौटे। देर से न आने पर भी सात बजने से पहले कहाँ उठते हैं? प्रतिदिन पाँच बजे मैं उन्हें जगाने का प्रयत्न करती हूँ, परन्तु

सोते ही रहते हैं। घर की सफ़ाई का काम पूरा कर लेती हूँ कि सात बजे शोर-गुल करते हुए उठते हैं। उठते ही सबसे पहले उन्हें चाय तैयार चाहिए, फिर दूसरी बात।"

मुकुन्द का विस्मय बढ़ने लगा। बाई की बातें उसे किसी साधारण वारांगना-जैसी न लग रही थीं। इस समय उसके संबंध में कुछ अधिक जान लेने की उसे उत्कंठा हुई। लेकिन उतावली में बाई से कुछ पूछ लेना, उसे उचित प्रतीत न हुआ।

"आप उनका बड़ा ध्यान रखती हैं।"—मुकुन्द ने कहा।

"क्यों न रखूँ?"—सहज ही वह बोली। "उनकी माँ मर गई है, आख़िर बिना माँ के बच्चे हैं न? उन पर किसी के प्रेम की छाया तो होनी ही चाहिए।"

कुछ देर रुककर वह फिर से बोली—"छोटे बाबू अभी भी छोटे ही हैं, इसलिए उनका ध्यान रखने में मुझे कोई उलझन नहीं, परन्तु शेखर बाबू तो अब वयस्क हो चले हैं! उनका स्वतंत्र स्वभाव और बेढंगा बरताव! जब हम अपने विचार और अपनी इच्छाओं को किसी पर व्यक्त नहीं कर सकते तब असुविधा होती ही है।"

अपने भौरों-से काले-काले नयन मुकुन्द के सामने पसारकर वह आगे कहने लगी—"आप-जैसों को भी, मुझे इस काम में सहायता करनी चाहिए। आप उनके मित्र हैं। अपनी बातें वे आपको बताते ही होंगे। धनवान पिता के, बिना माँ के बेटे—यदि उन पर यथोचित ध्यान न रखा जाए तो हानि होने की संभावना है ही। तभी तो कहती हूँ, भले मैं उन्हें सुधारने में अयोग्य और असमर्थ रहूँ, किन्तु आप-जैसे मित्र योग दें तो उनके सुधार का पुण्य प्राप्त होगा।"

मुकुन्द ने अत्यन्त आश्चर्यपूर्वक कहा—"क्षमा कीजिए, आप वास्तव में क्या कहना चाहती हैं, मैं समझ न सका। ज़रा स्पष्टतया समझाइए, कृपा होगी।"

कुछ देर वह मौन-स्तब्ध बैठी रही, अपनी चमकदार चूड़ियों से खेलती रही। फिर अपना मुँह ऊँचा करके कहने लगी—"सच बताइए, क्या आप मुझे

पतिता ही समझते हैं ?"

यह सुनकर मुकुन्द विकल हो कहने लगा—"बाई ! आप मुझसे ऐसा विचित्र प्रश्न न पूछें। मैं संसार की समस्त स्त्रियों में अपनी माँ की मूर्ति ही देखता हूँ। मैं तो आपका ही बच्चा हूँ। मुझे उलझन में न डालिए।"

अब 'बाई' की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने पुनः अपना मुख नीचे ढुलका दिया। क्षण-भर बाद ऊपर देखती हुई बोली—"सचमुच ! आपकी माता देवी ही होनी चाहिए। उन्होंने आप पर अपने स्नेह का सतत वर्षण किया है, अन्यथा आपका हृदय इतना उदार न होता।"

मुकुन्द इस बात का कुछ जवाब दे, इसके पूर्व ही वह आगे कहने लगी—"मैंने ठीक ही कहा है। ईश्वर आपका भला करे। मेरे इस नश्वर शरीर में मातृ-मूर्ति का दर्शन करने वाले, आप ही पहली बार मुझे मिले हैं।"

"क्या कहूँ आप से ?"—वह आगे कहती रही, "इस समय मेरी उम्र बत्तीस वर्ष की है। इस वय में मैंने पर्याप्त अनुभव पाया है। मेरा पेशा ही ऐसा है और शरीर की भाँति मेरा मन भी नारकीय स्थिति में पड़ा है। क्या आप ऐसा नहीं मानते ? मैं भी स्वतंत्र रीति से विचार कर सकती हूँ। मुझे याद है, मेरी माँ भी ऐसे ही नारकीय जीवन की यातना के कीचड़ में फँसकर मौत की शरण गई। जब कभी उसे इस जिन्दगी के दारुण दुःख का अनुभव होता, वह मन्दिरों में प्रभु-दर्शनार्थ जाती। और व्रत-उपवास करती, ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देती। हमारे यहाँ पूजा के लिए आनेवाले पंडितजी माँ से हमेशा कहते—'बाई, दुःख न करो। प्रत्येक को अपने विहित धर्म-कर्म का परिपालन करना ही चाहिए। इसमें पाप नहीं। स्वधर्मे निधनं श्रेयः।'

"मैं उस समय छोटी थी। मैं नादान थी। लेकिन पंडितजी जो कुछ कहते, उस पर मेरी श्रद्धा तो थी ही। उस अंधश्रद्धा का भोग बनकर ही मैं अनीति के इस मार्ग में फँस गई हूँ। कई वर्ष उपरान्त मुझे धर्म का मर्म समझ में आया। तभी मुझे मालूम हुआ कि जिसे मैं धर्म समझती हूँ अथवा मुझमें जो यह धर्म-संबंधी धारणा ठूँस-ठूँसकर भर दी गई है, वह सच्चा धर्म नहीं है, पाखंड है, प्रपंच है। यह तो पुरुषों का बनाया नरककुण्ड है, अपनी पापवासना की

परितृप्ति के लिए इसे उन्होंने प्रज्वलित किया है। बड़ी देर से भी, पर यों, मेरी आँखें खुलीं।"

इसके बाद मुकुन्द की तरफ देखकर द्रवित होकर वह बोली—"तुम्हारी उम्र मेरे बेटे के बराबर है, फिर भी, ईश्वर साक्षी है, तुम्हें देखकर मुझे श्रद्धा होती है। जिस दिन पहली मुलाकात हुई थी, और हमारी दृष्टियाँ मिली थीं, तभी मेरा मन हुआ कि मैं तुमसे जी-भरकर बातें करूँ। क्या तुम यह महसूस नहीं करते कि हमारे पतन का कारण पुरुष हैं, हम नहीं हैं। हम पर आरोप लगाए जाते हैं कि हम पुरुषों को लूटती हैं, उन्हें व्यसनों में गिराती हैं, उन्हें अपने घर से अलग करती हैं और इस प्रकार उनके पत्नी-बच्चों के पेट पर पत्थर रखती हैं! परन्तु हमारे अस्तित्व का कारण-रूप कौन? इस बात पर क्या हमारी आलोचना करनेवाले कभी सोचते हैं? अब तुम जो कहो, पतित हम या वे?"

मुकुन्द ने मृदु स्वर में कहा—"बाई, मुझे तुम्हारा कथन स्वीकार है। लेकिन मुझे आश्चर्य है कि एक ओर तो तुम यह कहती हो कि तुम्हारी आँखें खुल गई हैं, दूसरी ओर, फिर भी, तुम इसी मार्ग पर चल रही हो।"

"इसके अनेक कारण हैं।" उसने उत्तर दिया, "यदि मार्ग में कोई एक-दो पहाड़ियाँ हों, तो आदमी जल्दी से पार उतर जाता है। एक बार बुरी लत पड़ने पर उससे मुक्त होना बहुत कठिन है। परिस्थिति मनुष्य का बन्धन है। उसी में, भौतिक दृष्टि से उसे सुख प्रतीत होता है; इसीलिए वह लाचार है। मैं भी बारबार निश्चय करती हूँ परन्तु, अटल नहीं रह पाती।" ज़रा रुककर वह फिर बोली—"अपने सोलहवें वर्ष से मैं इस व्यापार में पड़ी हूँ। मैंने अच्छे और बुरे कई अनुभव पाए हैं। पुरुषों में बहुत विषयवासना होती है। अपनी सुन्दर और भले स्वभाव की पत्नियों को छोड़कर वे वेश्याओं के पैर सहलाते हैं, इसमें उन्हें क्या आनन्द आता होगा! मुझे यह समझ नहीं पड़ता। बाद में, मैंने सोचा कि अधिकतर यह एक प्रकार की मानसिक बीमारी है। कुछ लोग ऐश्वर्य के अभिमान में इसके शिकार होते हैं, कुछ लोग शौक़ के सबब और कुछ लोग कामवासना-वश। कुछ ऐसे भी होते हैं जो कोरे भोग के लिए वेश्यागामी होते हैं। ऐसे तो कुछ ही लोग होते हैं जिनके मन में सिर्फ़ स्त्री के

सहवास की वासना ही होती है। इस अनुभव से मुझे कुछ सान्त्वना भी मिली, यह तो मुझे स्वीकार करना ही होगा। स्त्रियों के गुप्त पाशविक विकार को उत्तेजित करने में और उसे दानवीय वृत्तियो की ओर आकर्षित करने में पुरुष का बड़ा हाथ है और इसलिए वह भी राक्षस है। यदि उसने स्त्रियों में विद्य-मान उच्च भावना का दर्शन किया होता और अपनी दृष्टि को पवित्र रखा होता तो, स्त्री सहज ही देवी बन जाती। भले, फिर वह कुलटा क्यों न हो। इस प्रकार की बुद्धि पुरुषों में नहीं है, इसी से तो वह अधोगति की ओर जा रहा है और साथ ही स्त्रियों को भी ले जा रहा है। फिर चाहे वह उसकी पत्नी ही क्यों न हो।"

मुकुन्द को टाल्स्टाय को 'रिसरेकशन' पुस्तक की याद आई। इतने में बाई ने अपनी बात बढ़ाई—"एक दृष्टि से तो, मैं अपने वर्तमान रूप में सुखी हूँ। इस समय मेरे सेठ मेरे स्त्री-रूप के ही भूखे हैं। मेरे सम्पर्क से पहले उनकी स्थिति खराब थी। मुझे लगा कि उनकी पत्नी काफ़ी समझदार न थी। और सेठ भी पति-रूप में अपनी जिम्मेदारी को नहीं जानते थे। इसी कारण इनको दुःख हुआ और संताप बढ़ने लगा। धीरे-धीरे वे इस व्यसन में फँस गए। पत्नी उनका सुधार करने में असमर्थ रही। उसका दुःखदायी अन्त होने पर, एक वर्ष पश्चात् सेठजी ने मुझे रख लिया। मैंने उनके हृदय की भूख को पहचाना, और उसे तृप्त किया। तत्पश्चात् तो मैंने अपना सर्वस्व ही उनमें केन्द्रित कर दिया। आज वे अपने वश में हैं। घर की गाड़ी भी ठीक चल रही है। उनके मन में भी आनन्दोल्लास है। मेरे रहने से उनकी गृहस्थी ठीक-ठीक चल रही है, यह सब जानकर मुझे कुछ सन्तोष होता है। और फलस्वरूप मुझे इस जीवन की भलाई-बुराई का अधिक बोध नहीं होता है। अब मुझे यह परिवार अपना ही परिवार प्रतीत होता है और इसलिए इसे छोड़ने का मन नहीं होता।

"और उसे छोड़कर जाऊँ भी कहाँ? क्या मुझे भी अब जीवन में कुछ विश्राम नहीं चाहिए? हमारी-जैसी स्त्रियों को भले आदमी अपने घर में रखने को तैयार हैं क्या? हमें स्वजन जानकर उसी भाव से सुधार करने वाले लोग

और संस्थाएँ कितनी हैं ? समाज की आँखें अभी भी न खुली हैं। उसके पैरों-नीचे क्या-क्या सुलग रहा है, इसका उसे ध्यान नहीं। जब उसे इस बात का ज्ञान हो जाएगा, तब हमारे उद्धार की चिन्ता उसे होगी। केवल मौखिक सहानुभूति दर्शाने से हमारा क्या लाभ होगा ?"

मुकुन्द के मस्तिष्क में विचारों के विविध बवंडर दौड़ने लगे। उसे लगा, मानों समग्र नारी-जाति इस 'बाई' के स्वरूप में उसके सामने खड़ी होकर बड़े कठोर शब्दों में संपूर्ण पुरुष-जाति पर प्रहार कर रही है। अब तो वह बाई को उत्तर देने की मनःस्थिति में न था।

बाई ने महसूस किया कि उसने मुकुन्द का काफ़ी वक्त लिया है। और शायद इसीलिए मुकुन्द सोच में डूबा है। इस विचार के आते ही वह एक-दम उठ खड़ी हुई—"क्षमा कीजिए, आपकी भलाई और सरलता के कारण ही आज मैंने आपका इतना समय नष्ट किया है। लेकिन बड़े दिनों से मन में जो विचार उठ रहे थे, उन्हें व्यक्त करने का पहला अवसर आज मिला। बड़ी इच्छा होती है कि शेखर बाबू को अपने पास बिठाऊँ और बहुत-कुछ सुनाऊँ। परन्तु, जाने क्यों मेरे प्रति उनका व्यवहार तिरस्कारपूर्ण है !"

इसके बाद, निःश्वास लेकर वह फिर कहने लगी—"लेकिन इसमें उनका क्या कसूर हो सकता है ? उन्हें हमारी अन्तर्गत वेदना का संकेत कैसे मिल सकता है ? हमारे विषय में समाज के अधिकांश लोगों के जो खयाल हैं, वही अगर शेखर बाबू के भी हों, तो इसमें कौन-सी बड़ी बात, और कौन-सी बुराई ? अच्छा, इजाज़त चाहती हूँ।"

इतना कहकर वह जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाकर वहाँ से चली गई। मुकुन्द आश्चर्यचकित-सा वहीं बैठा रह गया !

१०

आन्दोलन

पिछली घटना को घटित हुए दो वर्ष बीत गए थे। इस समय मुकुन्द जूनियर बी० ए० में पढ़ रहा था । इसी समय देश में असहयोग आन्दोलन उग्र रूप में शुरू हो चुका था। अब तक मुकुन्द का अध्ययन केन्द्र कालिज की पढ़ाई और वेदान्त तक सीमित था। अख़बार वह अधिक नहीं पढ़ता था, सभाओं में भी विशेष भाग न लेता था। कालिज की सभाओं और जलसों में भी वह यदाकदा ही उपस्थित होता था।

उसकी माँ ने उसे धार्मिक शिक्षा दी थी। स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करने के संस्कार उसके हृदय में अंकित थे। माँ यंत्रनिर्मित वस्तु वर्जित मानती थी। उसे स्वदेशी चीज़ों पर अभिमान था। मुकुन्द में भी उसने इसी वृत्ति का बीज बोया था। लेकिन इन सब संस्कारों के पीछे कोई राजनैतिक भावना न थी। और उसे न कभी यह विचार ही आया था कि वह मुकुन्द के मन में राजनैतिक प्रकार की देश-भक्ति जाग्रत करे। उसका ध्येय था कि मुकुन्द धार्मिक और सेवापरायण बने।

लेकिन माँ इस विषयक अपने विचार किसी के सामने प्रकट न करती थी। उसकी उत्कट अभिलाषा थी कि मुकुन्द में उच्छृङ्खल भावना और अविवेक का उदय न हो। उसने जो संस्कार मुकुन्द को दिए थे, वे बलात् न दिए थे, यह

जानकर उसके मन में सन्तोष था। मुकुन्द बड़ा होकर, दूर हुआ, तब तक वह मुकुन्द को सलाह-मशविरे के रूप में उपयोगी सूचनाएँ देती रही। परन्तु आज मुकुन्द के सामने एक बड़ा और विकट प्रश्न आकर खड़ा हो गया था। असहयोग आन्दोलन के कारण बम्बई का वातावरण देश के अन्य प्रान्तों की भाँति ही अति उग्र हो उठा था। प्रिन्स ऑफ वेल्स के आगमन पर हड़ताल और बहिष्कार का जो बादल उमड़ उठा था, उसके सर्वस्पर्शी प्रभाव से वह क्योंकर अछूता रह पाता ?

पंजाब के जलियानवाला बाग के हत्याकांड के उपरान्त मुकुन्द ने समाचार-पत्र और राजनैतिक साहित्य पढ़ना शुरू किया। लेकिन अब तक उसे इसमें पूरा रस नहीं मिल रहा था। लीलाधर की बात अलग थी। वास्तव में उसके घर का वातावरण ही निराला था। पिता वकील थे, इसलिए घर में प्रतिदिन नए-नए विषयों पर चर्चा चलती रहती। कई वकील, बैरिस्टर, सुधारक, उप-देशक आदि माधवराव के पास आते। मेहमान तो सदैव बने रहते। पार्टियाँ और दावतें चलती रहतीं। इन कारणों के आधार पर वर्तमान राजनीति, समाज और शिक्षा के विविध विषयों पर वार्तालाप होता। स्वयं माधवराव भी प्रथम कोटि के वक्ता थे। उन्होंने राष्ट्रीय काँग्रेस के कई जलसों में भाग लिया था। काम के बाद वे प्रवास और यात्रा के लिए निकल पड़ते। इस कारण, लीलाधर को धीमे-धीमे राजनैतिक विषयों की जानकारी हो गई थी। वह खुद भी भावुक और साहसी युवक था। इसलिए आन्दोलन में तुरन्त शामिल हो गया। उसने कालिज छोड़ दिया।

चौपाटी की एक सभा में उसने विदेशी वस्त्र की होली जलाई और खादी का कुरता पहनकर शिक्षण संस्थाओं पर पिकेटिंग करने लगा।

अपने बेटे के इस काम में, माधवराव ने ज़रा भी विघ्न न पहुँचाया, लेकिन रमा काकी को यह सब पसन्द न आया। उनके मन को कैसे चैन आ सकता था! इतनी बाधाओं के बाद तो लड़का परीक्षा में पास हुआ है और अब अन्तिम वर्ष के करीब पहुँचा था। ओठों तक आए प्याले को क्या छोड़ दिया जाए ?—यह तर्क रमा काकी को दुःख दे रहा था और इसीलिए वे लीलाधर

को समझाने लगीं—

"बेटा, यह अन्तिम वर्ष है तो इसकी परीक्षा भी पास कर ले और सफलता को हाथ से न जाने दे। इस ज़रा-सी बात के लिए कालिज न छोड़!"

"क्या मुझे विष की यही प्याली पी लेनी है, गुलामी में जिसने मुझे गिराया है?" लीलाधर ने अपनी माँ के सामने अकाट्य तर्क रखा।

लेकिन, यह बात रमा काकी की समझ में न आई। बोली—"और अच्छे-अच्छे कपड़े छोड़कर ये टाट और बोरे क्यों पहनने लगा है? कालिज छोड़ दिया। घर नहीं, बार नहीं! अच्छे कपड़े छोड़ दिये और सारे गाँव में तूफ़ान मचा रहा है? माँ रे माँ! इस गाँधी ने कैसी मुसीबत खड़ी कर दी? कैसा उल्कापात चलाया है? उसके अपने बेटे पढ़-लिखकर नौकरियों में लग गए हैं तो इसीलिए अब पराए लड़को को बरबाद कर रहा है।"

"ऐसी बातें न कर माँ! गाँधीजी हमारे कल्याण के लिए ही सब-कुछ करते हैं।" लीलाधर ने रमा काकी से कहा।

"इन्सान की तरह नहीं रहना और सारे गाँव में भिखारियों की तरह शोर मचाते घूमना, क्या इसी में तुझे कल्याण दिखाई दे रहा है? वह कल का बनिया तो समझदार और मैं—तुझे जन्म देनेवाली, जन्म से लेकर आज तक दुःख उठाकर बड़ा करनेवाली, यह नहीं जानती कि तेरी भलाई किसमें है?"—रमा काकी ने संताप से कहा।

"यों नहीं," लीलाधर ने कहा—"राजनीति में भला तू क्या समझे?"

"मुझे कुछ नहीं समझना,"—ऊबकर रमा काकी ने कहा—"देखती हूँ तू अब कैसे अपनी राजनीति चलाता है! दिन में चार बार तो तुझे चाय चाहिए। कपड़े धोने और सुखाने के लिए एक आदमी चाहिए। जूते पर ज़रा-सी धूल लग जाए तो आँख में चुभने लगती है। और नौकर और उसके बाप-दादाओं का उद्धार करने लगता है। घर में अँधेरा, और मस्ज़िद में दिया जलाना। अपना खाकर लोगों को राजनीति सिखाना। वाह रे तेरी राजनीति!"

इतने में लीलाधर की छोटी बहन हेमलता दौड़ती हुई वहाँ आ पहुँची और माँ से कहने लगी—"माँ, मैं भी पाठशाला छोड़ दूँ क्या?"

रमा काकी अब अधिक चिढ़ गईं और चिल्लाईं—"खबरदार लड़की, अगर तू भी अपने भाई की तरह पंचायत में पड़ी ! मेरे सामने यह सब नहीं चलेगा, हाँ ! यह हाथ से गया तो भले जाने दे। लड़का है। लेकिन तू तो लड़की है, तुझे तो ब्याह करके घर-संसार बसाना है।"

"मैं लड़की हूँ, इससे क्या हो गया ? इससे क्या मैं स्वतंत्र विचार नहीं रख सकती ?" हेमलता भौंहें चढ़ाकर बोली—"मैं ब्याह नहीं करूँगी।"

"लड़की, ज़्यादा पढ़ गई है क्या ?" रमा काकी ने कहा—"सात बरस की यह लड़की आज अपनी माँ को उपदेश दे रही है। सचमुच सारी दुनिया उद्दण्ड हो चली है।"

लीलाधर ने रमा काकी से कहा—"तू बेकार इससे उलझ रही है। देश-भक्ति का बालामृत सबसे पहले बच्चों को ही देना चाहिए। विलायतों में जब देश पर विपदा आती है तो, ज़रा-सा कष्ट होने पर भी, हज़ारों युवक, युवतियाँ और बालक हथेली पर सिर लेकर बलि होने को तैयार हो जाते हैं और अपने यहाँ देखो ! ज़रा शाला और कालिज छोड़ने की बात चली कि माँ-बाप की छाती ही बैठ गई ! मानो पाठशाला और कालिज इन्हें ज़िन्दगी-भर रोटा देंगे ! मानो, इनसे बाहर निकलते ही पैसे की थैलियाँ द्वार पर आ टपकेंगी !"

इतने में वहाँ चन्द्रशेखर आ पहुँचा। इन साहब ने भी पहले ही धमाके में कालिज छोड़ दिया था। खादी की पोशाक धारण कर ली थी। और लीलाधर तथा दूसरे देशभक्त वीरों के साथ-साथ घूमता हुआ भाषण देता था। उसे देखते ही लीलाधर में स्फूर्ति आ गई और उसकी ओर संकेत करता हुआ, अपनी माँ से कहने लगा—"देख-देख माँ, चन्द्रशेखर की पोशाक तो देख !"

रमा काकी चन्द्रशेखर का खादी का परिवेश देखकर ज़रा खिसिया गइ और फिर बोलीं—"अन्त में तूने इसे भी अपने बश में कर लिया है ? अब तो ईश्वर ही तुझे रास्ता दिखाए। सोने-जैसे हमारे युवकों को तो चाहिए कि विद्या प्राप्त करें, उपाधि धारण करें, पैसा कमाएँ और घर-बार की शोभा बढ़ाएँ। बाद में देशभक्ति करें। यह सब तो छोड़ा और लगे संन्यासियों की तरह भटकने !"

चन्द्रशेखर बीच में ही बोल उठा—"चाची, आप व्यर्थ ही दुःखी हो रही हैं! सच कहता हूँ कालिज छोड़ने से मुझे कितनी राहत मिली है। वरना रोज़ सुबह उठकर बड़े-बड़े पोथे पढ़ना, चाहे जान ही क्यों न निकल जाए। कक्षा में सिर झुकाए प्रोफ़ेसरों के भाषण सुनना और परीक्षा निकट आने पर रात-दिन जागकर नींद का नाश करना। कितना कठोर कष्ट था वह! अब? कैसा हल्का-फुल्का हो गया हूँ?"

रमा काकी को चन्द्रशेखर का यह कुतर्क पसन्द न आया। फिर भी उन्होंने कोई जवाब न दिया और सिर हिलाकर भीतर चली गईं।

छोटी-सी हेम आश्चर्यपूर्वक चन्द्रशेखर को ताकती हुई देख रही थी। चन्द्रशेखर कई बार लीलाधर से मिलने आता था, इसलिए हेम उसे अच्छी तरह जानती थी। आज चन्द्रशेखर का हमेशा का सूट-बूट, सेन्ट, फूल, बालों की छटा—सब अदृश्य हो गया और रूप उसका ऐसा बन गया कि चाहे तो वीनू भट्टजी की पंक्ति में जा बैठे। हेम को बड़ा विस्मय हुआ।

चन्द्रशेखर उसके और छोटी सरला के लिए सदैव बिस्कुट, चाकलेट, पीपरमेन्ट आदि लाता। लेकिन आज तो वह खाली हाथ आया था। इसमें उसका कोई कसूर न था। वह जल्दी में था और घर पर नज़र पड़ते ही उसमें घुस जाना यह निश्चय करके निकला था। अतएव आज वह सदैव की तरह भेंट न ला सका। हेम का चढ़ा हुआ मुख और ताकती हुई नज़रें देखकर चन्द्रशेखर ने कहा—"हेम, आज मैं तेरी भेंट एकदम भूल गया! क्या इसीलिए नाराज़ हो गई है?"

हेम ने अस्वीकृति में सिर हिलाया। वह सात वर्ष की थी और फ्राक पहनती थी। उसका शरीर स्वस्थ और सुदृढ़ था। रंग गोरा था और बड़ी-बड़ी आँखों में चमक थी। अक्सर वह निर्निमेष दृष्टि से किसी को देखती रहती। उसकी नासिका सुघर थी और भाल पर उसके अलकें लटकती थीं, इससे वह बड़ी सुन्दर लगती थी। कुल मिलाकर वह मोहक और मधुर लड़की थी। लेकिन स्वभाव से बड़ी तेज़-तर्रार और हठीली थी। उसके मन में जो आता उसे अवश्य कह देती, फिर सामने चाहे कोई क्यों न हो। चन्द्रशेखर ने हाथ के

इशारे से हेम को पास में बुलाया और कहा—"हेम, सुना है कि तू गाना जानती है। कोई गाना सुना।"

हेम मुँह फुलाकर बोली—"नहीं, इस समय नहीं गाऊँगी। दोपहर हो गई है। गीत तो शाम को गाए जाते हैं।"

चन्द्रशेखर ज़ोर से हँस दिया—"अरे वाह! तब तो यह मान लेना पड़ेगा कि तेरे गीत के लिए गोधूली का मुहूर्त्त होना चाहिए। क्यों?"

उसका यह वाक्य पूरा न हुआ था कि दरवाज़े में पाँच-सात लड़कों की टोली अन्दर घुस आई। और सब लड़के एक साथ बोल उठे—"क्यों भाई, इस वक्त ऐसा मनोरञ्जन शोभा देता है? देश में आग लग रही है और आपको गाना सूझ रहा है। बैठिए नहीं, जल्दी चलिए। नया कार्यक्रम बनाना है। कमर कसकर तैयार हो जाओ, समय जा रहा है।"

लीलाधर ने कहा—"लेकिन यह गड़बड़ क्या है? सब एक साथ बोल रहे हो, एक आदमी बोले।"

कान्हरे नामक एक लड़का आगे बढ़ा और कहने लगा—"कार्यक्रम यह है कि छात्राओं को पहले से तैयार किए बिना, छात्रों पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसलिए 'फेयरसेक्स' को पहले तैयार करना है। यही तय हुआ है। तुम्हारे-जैसे बड़े आदमियों के आगे आए बिना यह कार्यक्रम कैसे पूरा हो सकता है?"

"बहुत अच्छा!" चन्द्रशेखर ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—"तब तो यह काम पूरा करने के लिए, मैं भी चलता हूँ।"

इसके बाद पूरी टोली शोर-गुल मचाती हुई बाहर आई। चन्द्रशेखर एक गीत गाने लगा।

११
बड़ों की मर्ज़ी

दूसरी ओर मुकुन्द के मन की दशा विचित्र थी। समस्त विद्यार्थी समुदाय असहयोग आन्दोलन में भाग ले रहा था और स्वयं उसके इष्ट-मित्र भी कालिज छोड़-छोड़कर देश-सेवा के लिए मैदान में आ खड़े हुए थे। यह देखकर, मुकुन्द के सामने एक खास सवाल उठ खड़ा हुआ था—'अब मुझे क्या करना चाहिए?' कमरे में बैठकर वह विचार करने लगा। 'मेरा कर्त्तव्य क्या है? समय के प्रवाह का साथ देना अथवा परिपाटी पर चलना?'

डिग्री पाने के लिए वह उतावला हो, ऐसी बात नहीं थी। वह यह भी नहीं मानता था कि कालिज की उच्च शिक्षा से उसकी आध्यात्मिक या अन्य किसी प्रकार की उन्नति होगी। आज तक वह बड़ों की मर्ज़ी पर चलता रहा था और उसने कभी पीछे मुड़कर न देखा था। इसी प्रवाह के साथ यदि वह बहता रहे तो भविष्य का क्या होगा? उसने आज तक इसकी तनिक भी चिन्ता न की थी। आज तक उसके बड़ों ने उसके जीवन को दिशा-दान दिया था और उसने भी निश्चिन्ततापूर्वक उन्हें अपनी पतवार सौंप दी थी। लेकिन अब उसके मन में विचार उठा—'क्या अब स्वतंत्र दृष्टिकोण से विचार करने की वेला नहीं आ पहुँची है?'

उसने बहुत सोचा मगर कोई रास्ता नज़र न आया। कालिज छोड़ना भी

कठिन न था और यदि उसने कालिज छोड़ दिया होता तो, उसके माता-पिता विरोध न करते। लेकिन आज जब कि चारों ओर तूफ़ान उठ रहा है उसके माता-पिता चुप क्यों हैं? वे इस विषय में उसे कोई प्रेरणा और उत्साह क्यों नहीं दे रहे हैं? उसे मन-ही-मन आश्चर्य हुआ। क्या हमारे मन के भावना-स्रोत सूख गए हैं? आज प्रत्येक प्राणी के मन में उत्साह और जागरण उछल रहा है और चारों ओर प्रचण्ड झंझावात बह रहा है, इतना होने पर भी वह ऐसा उदासीन क्यों है? यह उसकी समझ में नहीं आया। उसके मित्रों ने उससे बार-बार आग्रह किया कि वह कालिज छोड़कर उनका नेतृत्व ग्रहण करे, इसके विपरीत उसके अध्यापक कहते थे कि वह कालिज न छोड़े, अन्तिम वर्ष गँवाकर, हाथ में आए यश के अवसर को न खोए। ऐसी परिस्थितियों में मुकुन्द कोई निर्णय न कर सका। अब तक तो, यह रीति रही है कि जब वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होता तो, अन्तिम उपाय के तौर पर वह अपनी माँ की सलाह लेता। इसलिए वह राजापुर के लिए रवाना हो गया। लेकिन इसके पहले उसने अपनी परेशानी, उलझन और मनोदशा का हाल पत्र-द्वारा माँ को लिख दिया था। इसलिए जब वह राजापुर आया तो किसी को आश्चर्य न हुआ। आते ही मुकुन्द ने देखा कि माँ की तबीयत ठीक नहीं है। वह खाट पर पड़ी थी। स्नानादिक कार्यों से निबटकर मुकुन्द माँ के निकट जाकर बैठा। और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोला—"माँ, आज सारे देश में जो कुछ चल रहा है, तुझे उसकी खबर होगी। अब तू मुझे यह बता कि इस आन्दोलन के प्रति मेरा क्या कर्त्तव्य है? इस सम्बन्ध में तेरी क्या आज्ञा है? यदि कहे तो कालिज छोड़ दूँ, अन्यथा जैसा चल रहा है, चलने दो!"

माँ कुछ देर उसका मुँह देखती रही। फिर धीमे से बोली—"तुझे क्या लगता है बेटा?"

"मुझे तो कोई राह नहीं सूझ रही है। यदि कोई मार्ग मिला होता तो, यहाँ क्यों आता? जो सूझता कर बैठता। मैं निर्णय करने में असमर्थ हूँ, इसी से तुझसे पूछ रहा हूँ।"

"लेकिन बेटा! अब तू क्या छोटा है? वयस्क हो चला है, अब तुझे खुद

ही यह सोच लेना है कि तेरा हित किसमें है ?"

"माँ, जब तक तू जीवित है तब तक तो मैं छोटा बालक ही रहूँगा।" मुकुन्द ने मातृ-प्रेम से पूर्ण हृदय से कहा।

माँ मुस्कराई। और फिर गम्भीर होकर बोली—"ऐसे मीठे वचनों से माताओं को आनन्द होता है, लेकिन मुझे इससे कोई खुशी नहीं होती। तू स्वयं स्वतंत्र रूप से विचारपूर्वक निर्णय कर ले, मैं यही चाहती हूँ।"

"मुझे भी यही प्रतीत होता है माँ! परन्तु मुझे यह महसूस होता रहता है कि मेरी विचार-बुद्धि में कोई कमी है, इसी कारण बहुत-कुछ विचार करने पर भी, मैं किसी निश्चय पर नहीं आ पाता ?"

"ठीक है, अब तू यह बता कि तू क्या उचित समझता है ?"

"एक बार तो कालिज छोड़ देने का मेरा मन हुआ, लेकिन आन्तरिक प्रेरणा इसका अनुमोदन न करती थी। अब हाल ही में कालिज-त्याग के अनुकूल वातावरण उपस्थित हुआ है। अतएव इस वातावरण के आकर्षण के कारण कालिज छोड़ने का विचार आता है। लेकिन यह समझ में नहीं आ रहा है कि कालिज छोड़ने के बाद क्या करूँगा ? और माँ, तूने ही मुझे यह शिक्षा दी है न, कि, अपना ध्येय और मार्ग निश्चित करके कार्य रूप में उसे परिणत कर। लेकिन माँ, मैं मूर्ख हूँ कि मैंने इस उपदेश पर अमल नहीं किया। इसके लिए मुझे आज पश्चात्ताप हो रहा है। भविष्य निश्चित न करने के कारण ही आज कोई मार्ग नहीं मिल रहा है। और कहीं भी कदम बढ़ाने की हिम्मत नहीं हो रही है। लगता है किसी अनजान धरती पर मरने का मौका आ जाए तो...."

माँ ने कहा—"अनिश्चित का सर्वनाश अनिवार्य है। मनुष्य को चाहिए कि केवल भावना में बहकर कोई काम न करे। यदि कोरी भावुकता में आकर कोई काम करेगा, तो दोनों छोर गुँमा बैठेगा। मैंने महात्मा गाँधी के संबंध में कुछ पढ़ा है। इस आन्दोलन का इतिहास भी पढ़ चुकी हूँ। इस बिछौने पर पड़े-पड़े मैंने जो कुछ पढ़ा और मनन किया, उसके बाद मुझे जो कुछ सत्य प्रतीत होता है, तुझे उसका दिग्दर्शन कराती हूँ। पहली बात तो यह है कि किसी आन्दोलन का परिणाम, उसकी शुरूआत में ही दृष्टिगोचर नहीं होता

है, लेकिन इससे उसके गुण-अवगुण और प्रतिफल की गहराई में मैं अभी पैठ न सकी। परन्तु, इतना तो जानती हूँ कि कोरी भावुकतावश इस आन्दोलन में भाग नहीं लेना चाहिए। इसके लिए विशेष तपश्चर्या की ज़रूरत है। जो लोग एक वर्ष में स्वराज्य-प्राप्ति की बातें करते हैं, वे सचमुच कल्पना लोक में विहार कर रहे हैं। कई लोग हैं जिन्होंने अन्दरूनी भेद को नहीं समझा है। मेरा ख़याल है कि इस आन्दोलन में भाग लेने वालों के लिए योग्यता का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। केवल कालिज छोड़ने से ही काम नहीं चलेगा, उसके बाद का, भावी कार्यक्रम भी तय करना पड़ेगा। बता ? इसके लिए तेरी तैयारी है ? तूने प्रत्येक दृष्टि से विचार कर लिया है ?"

"नहीं, ज़रा भी नहीं।"—मुकुन्द सिर झुकाए रहा।

"तो, इसका अर्थ यह हुआ कि तेरा हृदय तुझे कोई प्रेरणा नहीं दे रहा है और तू खुद ही अपनी अयोग्यता को स्वीकार कर रहा है। तो फिर केवल कालिज छोड़ने से क्या फ़ायदा ? भावी कार्यक्रम निश्चित कर लेने पर ही कालिज छोड़ना इष्ट है।"

मुकुन्द चुप रहा। माँ के सामने वह अधिक कुछ कह न सका। माँ ने अपनी बात ज़ारी रक्खी—"सच कहूँ तो तेरे वर्तमान शिक्षण के सम्बन्ध में कुछ कहने का मुझे अधिकार नहीं है। तुझे छोटे से बड़ा करने का, मेरा जो कर्त्तव्य था उसे मैंने पूरा किया। बाद की व्यवस्था तेरे पिता के हाथ में गई। इसे देखते हुए अब तुझे जो कुछ सलाह लेनी हो, वह उन्हीं से ले। मैं कुछ भी नहीं कह सकती।"

मुकुन्द को प्रतीत हुआ कि माँ अपना दिल खोलकर कोई निश्चित राय उसे नहीं दे पा रही है। अवश्य वह कुछ-न-कुछ छिपा रही है। और मन को बाँधकर बैठी है कि कुछ बोलती नहीं। ख़ैर, अब अधिक स्पष्टीकरण माँगना व्यर्थ है। यह सोचकर उसने पिता की सलाह लेने का विचार किया, तभी उसके पिता वहाँ आकर खड़े हो गए।

"माँ-बेटे के बीच क्या वार्तालाप चल रहा है ?" विश्वनाथ पंत ने पूछा।

माँ ने संक्षेप में मुकुन्द की उलझन और कठिनाई की चर्चा की और अपने

१२

प्रतिनिधि-मंडल

गिरगाँव रोड पर 'भगिनी निवास' के नाम से लड़कियों का एक छात्रालय था। बम्बई प्रान्त और मध्य-प्रदेश की कई लड़कियाँ यहाँ रहकर विद्याभ्यास करती थीं। कालिज पास ही था और जगह भी अच्छी थी, इसलिए लड़कियों की संख्या में कभी कमी न आती। इस समय इस बोर्डिंग में लगभग बीस लड़कियाँ थीं। ये लड़कियाँ विभिन्न कालिजों में पढ़ने जातीं। वे समान वय की न थीं। कई अठारह वर्ष की थीं, तो कई तीस के आस-पास पहुँच चुकी थीं। वे या तो अपने माता-पिता पर आश्रित थीं या अपने पति पर। और कई ऐसी भी थीं, जो प्राइवेट ट्यूशन-द्वारा अपना निर्वाह-खर्च पूरा करतीं।

एक संस्था की ओर से इस बोर्डिंग का संचालन होता था। व्यवस्थापिका प्रौढ़ वय की, मेट्रिक उत्तीर्ण महिला थी। वह लड़कियों की देख-रेख रखती। परन्तु लड़कियों पर उसका वजन या प्रभाव शून्यवत् था। असहयोग आन्दोलन शुरू होने पर छात्रों के समान छात्राएँ भी, आन्दोलन के सर्वव्यापी प्रभाव से परे रह न सकीं। लेकिन, स्वभाव से वे भीरु और कमज़ोर थीं। इसके अतिरिक्त, उनके खर्च का अधिकांश आधार उनके बुजुर्गों पर था, इसलिए उनमें विद्यार्थियों-जितना साहस न था। यह संभव भी न था।

लेकिन, इन दिनों, कालिज में प्रविष्ट होने में उन्हें भारी कठिनाई का

सामना करना पड़ा। कालिज-द्वार पर विद्यार्थी-गण घेरा डालकर खड़े रहते। भीतर जाने का दूसरा कोई मार्ग न था। विद्यार्थी उन्हें घेर लेते और भाषण देते, विनती करते, कारण बताते। ऐसी अवस्था में उन्हें धकेलकर भीतर चले जाने का साहस लड़कियाँ कैसे कर सकती थीं।

ऐसी अवस्था में बोर्डिंग में भीतर ही भीतर बातें चलतीं।

आज भी, लगभग सभी लड़कियाँ बोर्डिंग में बैठीं चर्चा कर रही थीं। व्यवस्थापिका बाहर गई थी।

"चाहे जो कह! लेकिन, मेरा खयाल है यह सब अधिक दिन नहीं चलेगा। ऐसी हालत में व्यर्थ ही हमारे दिन खराब किए जा रहे हैं। न पढ़ाई ही हो रही है और न कोई काम ही सूझ रहा है। मुझे तो 'अनाटॉमी' का बड़ा भय है, कुछ न पूछो।"—पच्चीस वर्ष की एक उदास मुख युवती बोली। वह मेडिकल-कालिज, में पढ़ती थी। उसके कई दिन खराब हो गए थे।

"रहने दो उर्मिला बहन! अभ्यास और पढ़ाई तो रोज़ का काम है। आन्दोलन क्या रोज़-रोज़ चलता है?"—तीस वर्ष की तितली-सी एक तरुणी तुरन्त बोली।

'तुम्हें क्या परवाह, प्रभा देवी! हर महीने बिना-श्रम के मनीऑर्डर आ जाता है। घर में किसी की रोक नहीं और जूनियर वर्ष ठहरा! इसलिए, यदि तुम्हें इस आन्दोलन में रस हो तो कौन-सी बड़ी बात है?"—वेणु बाई बीच में ही बोल उठीं—"लेकिन, बहुत लड़कियाँ ऐसी हैं जो वक्त और पैसे की कीमत समझती हैं।"

"लड़कियो! आज लेक्चर में जा रही हो?" कुसुम भीतर से बाहर आती हुई बोली। "सुनते हैं, आज कालिज के सामने वाले मैदान में सभा होगी।

"ये मुई सभा!" वेणु बाई तिरस्कारपूर्वक कहने लगीं—"इन छोकरों की बकवास सुन-सुनकर मेरा तो दिमाग़ पक गया।"

"क्या कहती है?" सरयू बीच में ही चिल्ला उठी—"तू सभा को 'मुई' कहकर गाली देती है? यह तो हमारे भावी राजनीतिज्ञों की वर्तमान लोक-सभा है, लोक-सभा! भविष्य में इसी में से पार्लियामेंट की उत्पत्ति होगी। समझी तू?"

फिर उर्मिला बहन बोली—"अरे इसमें क्या कहना है, हमारे हरेक विद्यार्थी में कितना उत्साह है! क्या उनका विनय, क्या वीरोन्माद, हरेक को ऐसा प्रतीत होता है मानों वही नेपोलियन है और सारी दुनिया उसके पैरों में पड़ी है।"

"वो कान्हरे बोलता है तो उत्साह से मेरा शरीर और मन भर जाता है। अहा-हा! क्या उसका अभिनय! वीरों को पुकारता हुआ मंच अथवा टूटी हुई कुर्सी पर जब वह उछल-उछलकर बाएँ हाथ की हथेली पर दाएँ हाथ की मुट्ठी से घूँसा मारता है, तब तो...."

"तब तो मेरी यह इच्छा होती है कि रेकेट उठा लाऊँ और गेंद की तरह उसे आकाश में उछाल दूँ।" सरयू का अधूरा वाक्य मालती ने पूरा किया।

यह सुनकर उस पल वहाँ हास्य की प्रचण्ड तरंग व्याप्त हो गई। इस बीच भीतर से दो लड़कियाँ निकल आईं। उन्हें देख सरयू ने पुकारकर कहा—"आओ, आओ, पोयेट और फिलासफ़र! तुम्हारी ही कमी थी।"

"क्यों री, सुमति! तू अब करना क्या चाहती है?" वेणु बाई ने नवागन्तुक लड़कियों में से एक से पूछा।

सुमति बोली—"मैं अभी इस बारे में सोच रही हूँ।"

"फिलासफ़र जो ठहरी। तेरी विचार-तन्द्रा हमेशा बहती रहती है।"—कुसुम ने व्यंग्य में कहा।

"और जब तक तू निर्णय-विन्दु पर आएगी तब तक तो सारा ज़माना ही बदल जाएगा।"—उसकी सहचरी शालिनी बोली।

"चाहे जो कहो, लेकिन मैं यदि कोई निर्णय करने में स्वतंत्र होती तो उसे स्वीकार करने में मुझे इतना समय न लगता। सोचती हूँ....बड़ों की अनुमति तो लेना ही चाहिए?"

"यदि तू स्वतंत्र होती, तो क्या कालिज छोड़ देती!"

"हाँ, ज़रूर!"

"कैसे?"

"वह इस तरह कि, किसी भी स्वाभिमानी और देशाभिमानी व्यक्ति के

लिए आज की स्थिति में एक ही मार्ग शोभन है। इसके पूर्व हमारे इस अभागे देश में परीक्षा का ऐसा अवसर नहीं आया था और आज पहले-पहल ऐसा मौका आया है; यदि नई पीढ़ी के हम तरुण पीछे रह जाएँ, तो दुनिया में हमारी बदनामी ही होगी।"

"यदि यह उलझन और सुलझन तेरी अपनी बुद्धि की ही उपज है तो भला फिर कालिज क्यों नहीं छोड़ देती?"

"इसी पर तो विचार कर रही हूँ। मैंने पिताजी को पत्र लिखा है। उनकी अनुमति मिल जाए तो ठीक। बाद में अपनी ओरसे यदि मैं कालिज छोड़ दूँ तो उत्तरदायित्व मुझे ही लेना पड़ेगा। पिताजी पर भार बनते हुए देश-सेवा करना ठीक नहीं।"

सुमति की उम्र इस समय उन्नीस वर्ष की थी। उसका रंग काफ़ी गोरा था।—वह आकर्षक और रूप, रंग में सुन्दर थी। स्वभाव से शान्त थी। जितनी वह मिलनसार थी, उतनी ही सेवापरायण थी, इसी से सब सहेलियों की प्रेम-पात्रा बन गई थी। इस समय वह इंटर में पढ़ रही थी। कुशाग्र बुद्धि छात्राओं में उसका नाम था।

सुमति के घर की स्थिति साधारण थी। उसके पिता हैदराबाद दक्षिण में सरकारी नौकर थे। सुमति की शिक्षा के लिए उन्हें आर्थिक तंगी देखनी पड़ी थी। ज्यों-त्यों कोरकसर करके वे उसे पढ़ा रहे थे। और यों सुमति भी कम स्वाभिमानिनी और स्वावलंबिनी लड़की न थी। अतः वह भी प्राइवेट ट्यूशनों से अपना बहुत कुछ खर्च चला लेती थी। उसे अपने माता-पिता के प्रति अनन्त श्रद्धा थी। और उनकी सम्मति के बिना वह कोई भी कार्य नहीं करती थी।

सुमति की बात अभी पूरी न हुई थी कि दरवाज़े में भारी पदचाप सुनाई दी, मानों बड़ी भीड़ भीतर प्रविष्ट हुई हो। लड़कियाँ चौंककर पीछे देखने लगीं—कालिज के दस-बारह विद्यार्थियों का पलटन दृष्टिगोचर हुई।

"मे वी कम्-इन, प्लीज़?" कान्हरे मुँह मोड़कर बोल उठा।

इन लड़कियों में उर्मिला बहन ज़रा वयस्क दिखती थी। अतएव उसी ने

उत्तर दिया—"यस, यू मे।" उर्मिला बहन ने उन्हें अन्दर आने की इजाजत तो दी, लेकिन ऐसा प्रतीत होता था, जैसे उन्हें विद्यार्थियों का आगमन पसन्द न आया।

छोकरे अन्दर घुस आए। कुछ बैठ गए और कुछ खड़े रहे। अब बोर्डिंग मे दो विपक्षी दल खड़े हो गए। एक पक्ष में छात्राएँ थीं और दूसरे में छात्र। आरम्भ में कुछ देर तो यह किसी को नहीं सूझा कि पहले कौन बोले। आखिर चन्द्रशेखर ने अपनी छबीली अँग्रेज़ी में कहा—"कान्हरे, तू कुछ बोलता है या मैं कुछ शुरू करूँ?"

लेकिन कान्हरे ऐसा नहीं था कि अपनी प्रतिष्ठा का यह सहज-प्राप्त अवसर खो दे। उसने टाई को ठीक किया। बालों पर सुगंधित रूमाल फिराया और फिर कहना शुरू किया—"बहनो! हमने यहाँ आकर आपको कष्ट दिया है, उसके लिए हमें क्षमा करें। वैसे तो हम कभी लड़कियों के बोर्डिङ्ग में आते-जाते नहीं, परन्तु क्या करें, आज दूसरा कोई उपाय नहीं था। आज हमारी परीक्षा का, कसौटी का काल आ खड़ा हुआ है। सारे राष्ट्र में प्रचण्ड दावानल सुलग उठा है। हमारे महान् नेताओं ने रणभेरी बजाई है। ऐसे अवसर पर प्रत्येक विद्यार्थी और विद्यार्थिनी को सामने आकर (सरयू ने कुसुम के कान में कहा—'मुँह धोकर, बिस्तर गोल कर') उनके आह्वान का उत्तर देना चाहिए। और मैं तो यह कहूँगा कि सबसे पहले यह काम तुम्हारा है। (सरयू ने कुसुम के कान में कहा—'सच है, जल्दी-जल्दी चाय बना देने का काम हमारा है') उठो! जागो! और हमें जगाओ! (सरयू ने कुसुम के कान में कहा—'और हमारे मुँह में चाय उँडेल दो') और यश प्राप्त करो।"

कान्हरे का पुराण कुछ और देर चलता, परन्तु लड़कियों के मुखारविंद देखकर लीलाधर को विश्वास हो गया कि कान्हरे ज़रा बहक गया है। इसलिए उसे बीच में ही रोककर, वह कहने लगा—"हमारी बहनें भी स्वतंत्र-रूपेण विचार कर सकती हैं। इसलिए अधिक कुछ कहने की जरूरत नहीं है। इतना ही कहना है कि यदि इस कार्य में बहनें सहयोग देंगी तो हमारे लोगों में विशेष उत्साह का वातावरण प्रसारित होगा; हमें प्रोत्साहन मिलेगा।"

इस पर गुणप्रभा बोल उठी—"हम क्या यह सब नहीं जानतीं ? लेकिन वर्तमान समाज में स्त्रियाँ चाहे जितनी पढ़ी-लिखी हों, परन्तु उन्हें कार्यकलाप की स्वतंत्रता कहाँ है ? जहाँ-तहाँ उन्हें अपने बड़ों से पूछपूछकर कदम उठाना पड़ता है।"

"ठीक है।"—चन्द्रशेखर ने कहा—"इसी से मैं कहता हूँ, एक पत्थर से दो पंछी मारने का यह सुनहरा अवसर मिला है। आप लोग आन्दोलन में भी सहायता दे सकती हैं और अपने बड़ों से अपनी स्वतंत्रता भी प्राप्त कर सकती हैं।"

"लेकिन यह स्वतंत्रता प्राप्त कैसे की जाए ?"—शालिनी आश्चर्य में बोली।

"कैसे ? क्रान्ति द्वारा। थिंक डेंजरस्ली, स्पीक डेंजरस्ली, एक्ट डेंजरस्ली।'
—कान्हरे को मानो रणोन्माद चढ़ा।

शौर्य की इस प्रत्यक्ष प्रतिमा की ओर देखती हुई सरयू बोली—"यह तो इकतरफ़ा बात है। जब दूसरे पक्ष की ओर से साक्षात् संकट उपस्थित हो, तब क्या करना चाहिए, यह बताओ ?"

लीलाधर फिर बीच में बोल उठा—"तुम विद्रोह करो, यह मैं नहीं कहता, यदि तुम्हारी इच्छा-शक्ति प्रखर होगी तो मार्ग स्वयमेव प्राप्त हो जाएगा।"

"यह ठीक है।" उर्मिला बहन बोली—"लेकिन हम आर्थिक दृष्टि से परतंत्र हैं। चाहे जितना धीरज रखें और चाहे जितना साहस दिखलाएँ, लेकिन पैसे पर आकर हमारी हार हो जाती है।"

"आप व्यर्थ घबराती हैं। कुछ भी हो जाए; मगर माँ-बाप छोकरियों को घर से बाहर तो नहीं ही निकालेंगे।" चन्द्रशेखर ने कहा।

इस पर किसी ने कुछ उत्तर न दिया। लेकिन सुमति बोले बिना न रही—"आप हमें उपदेश देते हैं, यह तो अच्छा है। लेकिन मैं पूछना चाहती हूँ कि आप खुद ने भी अपने लिए कोई कार्यक्रम बनाया है। यह तो बताएँ।"

यह सुनकर विद्यार्थीगण एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। उन्होंने भी इस समस्या पर पहले विचार नहीं किया था।

लड़कियाँ परस्पर एक दूसरी को देखती होठों में हँस रही थीं। कान्हरे तो जैसे निरस्त्र हो गया। यह स्थिति देखकर लीलाधर ने स्पष्टीकरण किया—

'आपका सवाल उचित है । इस समय हमारे सामने विनाशक कार्यक्रम है, शिक्षण संस्थाएँ छोड़ने का । इसके बाद हम विधायक कार्यक्रम हाथ में लेंगे । बेकार तो कोई रहेगा नहीं और महात्माजी ने कई कामों पर विचार किया है।"

"लेकिन कोई करेगा तब न ?" सरयू बीच में बोली—"यहाँ तो खादी भी सिर्फ दो-तीन सज्जनों ने पहनी है।"

इस पर वे विद्यार्थी शरमिंदा हुए, जो विदेशी वेश में थे। फिर भी एक विद्यार्थी ने झूठ-सच कारण देकर, अपनी स्थिति का पोषण करने का प्रयत्न किया।

लीलाधर बोला—"आपने जो सवाल उठाया है, महत्वपूर्ण है। लेकिन मैं कहता हूँ इसलिए भी आप हमें सहयोग दें। महिलाएँ विशेष परिमाण में पुरातनता प्रिय होती हैं। अतएव वे हमारी अस्थिर चपलता पर अंकुश रख सकेंगी और हमें योग्य दिशा दे सकेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है। इसलिए मैं कहता हूँ कि आप हमारी सभा में आएँ, स्वेच्छा से हमारे काम में भाग लें और संगठनात्मक तथा रचनात्मक पद्धति की रूपरेखा बनाने में हमारा हाथ बटाएँ। हम सब मिलकर विचार-विनिमय करेंगे, बाद में प्रत्यक्ष कार्य की शुरूआत होगी। लेकिन सिर्फ चहरदीवारी में घिरे रहकर तो कोई काम नहीं हो सकता।"

लीलाधर यों उत्साहपूर्वक बोल रहा था, लेकिन लड़कियों में से किसी पर उसका कोई असर हुआ हो, ऐसा प्रतीत न होता था। काठ की पुतलियों-सी वे सब स्तब्ध खड़ी थीं। लीलाधर फिर से कहने लगा—"आपके इस मौन का अर्थ हम क्या समझें? बहनो! आप आगे आएँगी तो अधिक सफल कार्यों की रचना हो सकेगी, इसी उद्देश्य से आज हम यहाँ आए हैं। किसी भी देश के इतिहास में महिलाओं के सहयोग की कथा मिलेगी। जहाँ-जहाँ जाग्रत नारियाँ आगे आई हैं, वहाँ-वहाँ पुरुष समुदाय भी जाग्रत हुआ है। क्या हमारे देश में ऐसी वीर नारियों का अभाव है?"

सुमति तत्क्षण बोली—"अब आप लोग जाइए। हम सभा में आएँगी।"

विद्यार्थियों के चले जाने पर बोर्डिङ्ग के इस भाग में बड़ी देर तक सरयू का परिहास चल रहा था। बीच-बीच में लड़कियों की खिली हुई खिलखिलाहट गूँज रही थी।

१३

सभा

कालिज के ठीक सामनेवाले रेतीले तट पर सभा हुई। इस सभा के श्रोताओं का प्रमुख भाग कालिज के विद्यार्थियों का था। हाई स्कूलों से भी कई विद्यार्थी हड़ताल करके सभा में आए थे। इसके उपरान्त राह में इधर-उधर भटकते बेकार आदमी भी सभा में शामिल हो गए थे। भीड़ बढ़ने लगी। सभा में गुजराती और मराठी छोकरियों की संख्या भी बहुत थी। कुछ पारसी लड़कियाँ थीं और इनी-गिनी ईसाई लड़कियाँ भी थीं।

सभा के बीच में एक कुर्सी रखी गई थी। और सभा के संचालक उसके समीप बैठे थे। इस कुर्सी का उपयोग टेबल के रूप में, बैठक के रूप में और रोस्ट्रम के रूप में—यों हरेक रूप में हो रहा था। कई लोग पेड़ की शाखाओं पर चढ़ बैठे थे। और उन्हें जब भाषण न सुनाई देता तो वे शोर मचाते और वे खुद ही अपने भाषण शुरू कर देते

वहाँ ज़रा भी शान्ति न थी। जहाँ देखिए वहीं शोरगुल, हल्ला-गुल्ला और गुनगुन चल रहा था। कई वक्ताओं के नाम पुकारे जाते, परन्तु उनका पता न था।

कई तो बुलाए बिना ही, अचानक कुर्सी पर फूट निकले थे और मनचाहे ढंग से भाषण दे रहे थे। सीटियों की आवाज़ें, शोरगुल और तालियों की गड़-

गड़ाहट के बाद, बामुश्किल सभा शुरू हुई। एक वक्ता से निवेदन किया गया कि वह अपना भाषण आरम्भ करे कि श्रोतागण पुकारने लगे—'सभा के सभापति कहाँ हैं? पहले सभापति बनाओ!'

सभापति की पसन्दगी का काम सचमुच मुश्किल था। सभी विद्यार्थी थे। ऐसी स्थिति में सभापति किसे चुना जाए। फिर से धाँधली और गड़बड़ मच गई। इस समय, कुछ दूर एक झाड़ के नीचे दो गोरे सार्जेन्ट सभा की व्यवस्था के लिए खड़े थे। अचानक एक गुजराती विद्यार्थी उछलकर कुर्सी पर चढ़ गया और ज़ोर-ज़ोर से कहने लगा—

"मित्रो, सभापति के विषय में इतना शोरगुल क्यों कर रहे हैं? इसकी ज़रूरत नहीं। मैंने पहले ही इसका प्रबन्ध कर दिया है। उधर देखिए, उस झाड़ के नीचे दो गोरे सार्जेन्ट हैं। आज ये दोनों सम्माननीय विभूतियाँ ही अध्यक्षपद ग्रहण करेंगी। और इनके सभापतित्व में ही हम सभा का काम-काज शुरू करते हैं।'

सुनकर सार्जेन्ट मुस्करा दिए और विद्यार्थियों में भी भारी हँसी की तरंग उठी। इस प्रकार 'सभापति' का निर्वाचन हुआ। फिर शीघ्र ही व्याख्यान-बाज़ी शुरू हो गई। गुज़राती और अँग्रेज़ी भाषा वक्ताओं के मुख से अजस्र-रूप में बहने लगी—

"बन्धुओ! रात पूरी हो गई है और ऊषा प्रकट हो चुकी है। भोर की शहनाइयाँ बज रही हैं। स्वतंत्रता के वीर सैनिको! अब संग्राम-भूमि में कूद पड़ो। पीछे मुड़कर न देखना। देश के लिए चाहे जो कष्ट भोगना पड़े, त्याग करना पड़े, फिर भी वह कम ही है।

"अब तक हम लोग खूब सो चुके, अब सिंह के समान गर्जना कीजिए और अपना सच्चा स्वरूप पहचानिए। यह देश सम्राट् अशोक का देश है! राणा प्रताप का देश है। महाराष्ट्र केसरी का देश है। पंजाब के सिंह का प्रदेश है। बन्धुओ! पंजाब का बदला लो, रौलट को बरबाद कर दो। महा-युद्ध में हिन्दुस्तान ने जो भारी मदद की थी, उसके कड़ुए फल हमें मिल रहे हैं। यह अपमान हम कदापि सहन न करेंगे।

"महात्मा गाँधी की वाणी सुनिए ! उनकी बताई राह पर चलिए ! उन्होंने जिस अहिंसास्त्र का आविष्कार किया है, उसे ग्रहण कीजिए। विदेशी माल का बहिष्कार कीजिए।

"गोरों से कह दो कि तुम्हारा 'हृदय-परिवर्त्तन' होता है तो ठीक, नहीं तो तुम्हें जबरन हृदय पलटना ही पड़ेगा।"

यह व्याख्यान चल रहा था कि बीच में तालियाँ, नारे, हँसी, सवाल-जवाब आदि सब-कुछ चल रहा था। जब वक्ताओं की वाणी अपने आवेग में पराकाष्ठा पर पहुँचती तो उसकी नकल की जाती और बड़ा मज़ा आता।

अब सभा के संयोजक-वर्ग में कानाफूसी शुरू हो गई—"अरे, यह सब तो अमुक जाति के भाई ही कह रहे हैं। किसी दक्षिणी वीर को आगे करना चाहिए, वरना अपनी लाज न रहेगी।"

लीलाधर को यह बात पसन्द न आई। लेकिन उसे पूछे बिना ही एक नए, महाराष्ट्रीय वक्ता को बलात् कुर्सी पर खड़ा कर दिया गया। इस वीर वक्ता को ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह श्रोताओं के सामने नहीं, वरन् बन्दूक की गोलियों के सामने खड़ा है। उसके पैर काँपने लगे। इतना होने पर भी उसने साहसपूर्वक अँग्रेज़ी में कुछ जुमले बोले मानो मराठी से उनका अनुवाद किया हो। इसके बाद तुरन्त वह नीचे बैठ गया। वक्ता की इस दशा पर विचार किए बिना ही दूसरे व्यक्ति को खड़ा कर दिया गया। इस बहादुर ने समझदारी दिखाई और मराठी में भाषण दिया। उसके परिहास, कटाक्ष और व्यंगों को सुनकर सभा में हँसी-खुशी का वातावरण फैल गया।

इसके बाद छात्राओं से विनती की गई कि वे भी बोलें। लेकिन उनमें से किसी में इतनी हिम्मत न थी कि खड़ी होकर कुछ कहे। इसका कारण यह था कि सिर्फ़ दो ही लड़कियाँ खादी पहने थीं। शेष लड़कियाँ मिल के कपड़ों में थीं। दूसरी लड़कियाँ खादी की पोशाक में न थीं, इसलिए इन्हें भाषण देने का साहस न हुआ। खादी परिवेष्ठित बालाओं में से एक थी सुमति और दूसरी गुजराती लड़की निर्मला थी।

निर्मला जूनियर बी० ए० में पढ़ती थी। उसके पिता जवाहरात के व्या-

पारी थे। वह धनिक घर की थी, इसलिए स्वतंत्र भी थी। क़द में नाटी थी, पर फिर भी आकर्षक थी। उसकी देह की गठन मज़बूत थी। वह बारीक धागे की खादी की साड़ी पहने थी।

ज्योंही निर्मला से विनती की गई, वह तुरन्त ही कुर्सी पर चढ़ गई। दस मिनट तक वह अँग्रेज़ी में धाराप्रवाह बोलती रही। उसके वक्तृत्व में छटा थी। इसके अतिरिक्त भाषा में गठन और जोश होने से, उसकी वाणी में आकर्षण और तरावट थी।

उसने कहा—"जो लोग देश के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए तैयार हो गए हैं, उन्हें अपने घर-बार की तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। चाहे जितना संकट आए, किन्तु हमें एक कदम भी पीछे न हटना चाहिए। दिए बिना कुछ मिलता नहीं। हमारे आचार-विचार, मन, मस्तिष्क और स्वप्न में देश की स्वतंत्रता का खयाल ही होना चाहिए। अपने शूर पूर्वजों का स्मरण करो। हमें चाहिए कि उनके सच्चे उत्तराधिकारी बनें। और यदि हम उनके सच्चे सपूत हैं तो हमें इस समय देश के लिए आत्म-बलिदान देना चाहिए। देश की आज़ादी के पाने के लिए हमें पारस्परिक कलह और फूट का सदा के लिए अन्त कर देना चाहिए। वर्तमान विषपूर्ण शिक्षा के कारण हमारी मनोवृत्ति गुलाम हो गई है। हम दृढ़तापूर्वक कोई भी एक निश्चय नहीं कर सकते, इसका कारण यह शिक्षा ही है। इसके लिए हमने अपना आत्म-विश्वास खो दिया है। हमें जब कोई दूसरा मार्ग दिखाता है, तभी हम मार्ग देखते हैं, ऐसी है हमारी स्थिति। इस स्थिति को हम कब दूर करेंगे? गुलामी की हथकड़ियों को हम कब चूर-चूर कर देंगे?"

जब वह बोल रही थी, बीच-बीच में तालियाँ बज रही थीं। उसका सगर्व चेहरा, मधुर और भावनामय वाणी, आँखों की ज्योति—इन सब का प्रभाव भली-भाँति पड़ रहा था। इस दिन वह 'वीर कन्या' बनी!

निर्मला कुर्सी से नीचे उतरी कि तुरन्त ही महाराष्ट्रीय वीर सुमति के पास दौड़ गए और दक्षिणी समाज का नाम रखने की विनती करने लगे—"आप भी लेक्चर देकर इस बहन को शरमा दें!" वे उसे बारम्बार कहने लगे और मराठी-

गुजराती का यह झगड़ा देखकर सुमति को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बोली—
"देश की एकता की बातें करने वाले तुम लोग यह जाति-भेद क्यों बढ़ा रहे हो?"

एक ने उत्तर दिया—

"हम जाति-भेद नहीं बढ़ा रहे हैं। वे ही बढ़ा रहे हैं। इन्हें अपनी प्रतिष्ठा जमा लेनी है। लेकिन हम भी किसी कच्चे गुरु के चेले नहीं। वे गाँधी के चेले हैं, तो हम भी तिलक के चेले हैं। समझीं ?"

अन्त में हाँ, ना, हाँ, ना, करते-करते सुमति ने भाषण देना स्वीकार किया। उसका भाषण छोटा और साधारण था। उसमें उसने कोई आवेश न दिखाया। वैध रचनात्मक कार्यक्रम पर उसने ज़ोर दिया। और कोरी व्याख्यानबाजी में डूब न जाने की सलाह दी। इससे, जब उसका भाषण पूरा हुआ, तभी तालियाँ बजीं। लेकिन सुमति को ऐसी तालियों की कोई आवश्यकता न थी। फिर भी भाषण के अन्त में लीलाधर ने आगे आकर सुमति को बधाई दी। तब तो उसका चेहरा लज्जा से लाल हो गया।

उस दिन निर्मला के आसपास विद्यार्थियों की भीड़ एकत्र हुई। हरेक उससे बातचीत करने को उत्सुक था और वह भी साहसिक तथा हाज़िर जवाब थी। अतः उसने बड़ी चतुराई से व्यवहार किया। इसके बाद तो वह विद्यार्थियों की प्रत्येक सभा और बैठक में हाज़िरी देने लगी। अपने ख़र्च से पार्टियाँ देती और देश-हित के कार्यों में प्रत्यक्ष रूप में मदद देती।

सुमति के आसपास भी विद्यार्थियों की एक टोली जमी थी। लेकिन उसने तो सबको जवाब दे दिया। सबकी नज़र से बचती वह अपने बोर्डिंग में आई और कमरे में बिछौने पर पड़ रही। उसने सबसे कह दिया कि कोई भी आए तो, उसे साफ़ कह देना कि सुमति नहीं है। इसके बाद उसने स्वस्थ मन से अपने भावी कार्यक्रम की रूप-रेखा बनाई।

इस सभा में मुकुन्द भी उपस्थित था। परन्तु वह दूर खड़ा-खड़ा भाषण सुन

रहा था। निर्मला और सुमति के भाषण सुनकर उसके मन पर एक अजीब प्रभाव पड़ा। आज भी वह स्त्री के प्रति मातृ सदृश्य पूज्य भाव रखता था, अतएव उसके मन में कोई दूसरा भाव पैदा न होता था। परन्तु आज निर्मला का आवेश और उसकी तेजस्वी मुद्रा देखकर, सुमति का रचनात्मक कार्य के प्रति प्रदर्शित उत्साह निरखकर वह मुग्ध हो गया। उसे प्रतीत हुआ कि आज विश्व की चिद्शक्ति उसके सामने खड़ी होकर उसे गम्भीर आदेश दे रही है। इस चिद्शक्ति का बल अनन्त है। क्षुब्ध काल-समुद्र पर मानो वह नाच रही है और मन्त्र द्वारा समस्त पृथ्वी पर अपना जादू फैला रही है। यह दृश्य कितना मंगलमय और कितना रोमांचक है!

उस रात उसे शक्ति के ही स्वप्न आए।

१४
आन्दोलन के प्रभाव में

दिन जल्दी-जल्दी बीतने लगे। सारे देश में एक प्रकार की अद्‌भुत चेतना आ गई थी। बम्बई नगर महात्मा गाँधी के पीछे पागल हो गया था। एक वर्ष में स्वराज्य प्राप्त कर लेने का कार्यक्रम महात्माजी पूरा करने के लिए सरगर्मी से प्रयत्नशील थे। अब तक जो कोरी व्याख्यानबाजी में रत रहे थे, उन वक्ताओं की खरी कसौटी होने वाली थी।

माधवराव भी व्याख्यानबाजी में लगे थे। प्रवास और यात्रा करते। चंदा उगाहते। फंड जमा करते। और भी कई कार्यों में मदद देते। लेकिन, उन्होंने अपनी वकालत तो नहीं छोड़ी थी। वह कहते कि महात्माजी के कार्यक्रम का यह अंग मुझे पसन्द नहीं। इसके उपरान्त पेट का सवाल भी तो है।

माधवराव के लिए जेल जाना संभव नहीं था। लीलाधर ने अपनी मर्ज़ी से कालिज छोड़ दिया था। और उसके कदम पर माधवराव ने न तो कोई प्रश्न ही उठाया था और न कभी कालिज-त्याग की प्रेरणा ही दी थी। जगदीश अब भी शाला जाता था। उसने शाला छोड़ने के लिए माधवराव से सलाह माँगी तो पिता ने कह दिया—'बेटा, अभी तू छोटा है।' जगदीश चुप हो गया। लेकिन, जब-जब सार्वजनिक हड़ताल होती, जगदीश भी शाला नहीं

जाता और सड़कों पर इधर-उधर भटकता।

माधवराव घर में चरखा ले आए थे। एक दिन उन्होंने चरखा चलाकर देखा। लेकिन उनकी इच्छानुरूप जब चरखे ने एक घंटे में पच्चीस नम्बर का सूत न दिया और सूत के बदले आस-पास 'पूनी' के कूड़े का ढेर जमा हो गया तो, उन्होंने चरखे को नमस्कार किया और अपनी यह सम्पदा सहर्ष रमा काकी को भेंट कर दी। किन्तु रमा काकी को तो इस सारी हलचल से चिढ़ थी, इसलिए घर में चरखे का आना, उनकी नज़रों में, अपशकुन का प्रवेश था।

लीलाधर बाहर की राजनीति में व्यस्त था। उसे बेकार लोगों का यह पेशा पसन्द न था। जगदीश मान बैठा था कि वह अभी भी छोटा है। अतएव माधवराव के घर में कोई चरखा चलानेवाला न मिला। अन्त में हेमलता और उसकी छोटी बहन सरला ने इस खिलौने पर अपना अधिकार जमाया। उन्होंने अपने खिलौनों की सभा में चरखे को सभापति का आसन दिया। जब-जब ये दोनों बहनें झगड़तीं, तब-तब चरखे की जमींदारी के दो टुकड़े हो जाने का प्रसंग उपस्थित हो जाता। परन्तु ऐसे वक्त रमा काकी की दया-कृपा से चरखे के प्राणों की रक्षा हो जाती।

चन्द्रशेखर ने भी कालिज छोड़ दिया था। लेकिन इस कार्य में उसे अपने पिता की अनुमति न मिली थी। गनपतराव को घटना की सूचना भी बहुत बाद में मिली। संवाद सुनकर उन्होंने चन्द्रशेखर को आड़े हाथों लिया, पर कोई असर न हुआ। उल्टे उसने अपने पिता से मुँहजोरी कर कहा—'आप अपनी उपाधि छोड़ दीजिए।' तब तो पिता-पुत्र के बीच महाभारत आरम्भ हो गया। किन्तु 'बाईजी' बीच में आईं। उसने दोनों को शान्त किया। भोलानाथ ने शाला छोड़ देने का हठ किया, पर बाईजी ने उसे समझा-बुझाकर शान्त कर दिया।

चन्द्रशेखर जब भाषण देता, तब खादी पहन लेता। लेकिन, घर में उसका भेष वही रहा, जो पहले था। जब वह नाटक या सिनेमा देखने जाता तो बड़े ठाठ से। पिता ने उसके मासिक खर्च की रकम बन्द न की थी। हाथ

में पर्याप्त पैसा आता, इसलिए वह लड़कों में पर्याप्त प्रसिद्ध था। किन्तु, रचनात्मक कार्यक्रम की ओर उसने कभी आँख उठाकर भी न देखा था।

इन शूरवीर तरुण-तरुणियों के युग में बेचारे मुकुन्द को कौन पूछता ? बहुत से विद्यार्थी उसका 'देश-द्रोही', 'काला भेड़' और 'गुंडा' आदि विशेषणों से अभिनंदन करते। इस समय तक लीलाधर और चन्द्रशेखर विद्यार्थियों के नेता बन गए थे।

अब भाषण देने के लिए निर्मला के पास भी निमन्त्रण आते। उसकी ख्याति एकदम बढ़ गई थी। इसके अतिरिक्त उसके पिता ने तिलक स्वराज्य-फंड में बड़ा चंदा दिया था। मकान और मोटरकार पर उन्होंने राष्ट्रीय ध्वज लगा दिया था। इन कारणों से निर्मला का नाम सबकी जबान पर था। सर्वतामुखी था।

निर्मला भी कालिज छोड़कर देश-सेवा में लग गई थी।

सुमति को जब अपने पिता का उत्तर मिला, तब उसे शान्ति हुई। उसके पिता ने उसे आश्वासन दिया कि उन्हें उस पर विश्वास है। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने यह भी लिखा था—"तुझे जो कुछ उचित लगता है, उसे सम्पन्न करने के लिए तू स्वतंत्र है। मात्र इतना कि बार-बार अपनी राह न बदलना। जो कुछ करना हो पूरी तरह विचरापूर्वक और भूत-भविष्य देख कर ही करना चाहिए।"

पिता के इस पत्र के बाद ही सुमति ने कालिज छोड़ा और उसके बाद रचनात्मक कार्यक्रम की ओर अपना सारा ध्यान लगाया! सत्र के अन्त तक बोर्डिंग में रहने की इजाज़त उसे व्यवस्थापिका ने दे दी थी। अब वह प्राइवेट ट्यूशन करके अपना खर्च चला रही थी और साथ ही देश-सेवा का कार्य भी कर रही थी। इस समय वह चर्खा, खादी-प्रचार, हिन्दी शिक्षा और सार्वजनिक कार्यों के लिए स्वयंसेविका बनकर विविध कार्य कर रही थी। व्याख्यानबाजी के प्रपंच में वह न पड़ी।

उसकी कई सहेलियों को उसका यह व्यवहार और कार्य पसन्द न आया।

बारम्बार वे उसे यह उपदेश देतीं कि कम से कम अपनी शिक्षा तो पूरी कर ले। जब उनका आग्रह बढ़ गया तो सुमति राष्ट्रीय विद्यापीठ में प्रविष्ट होने के विषय में सोचने लगी। अब दूसरी ओर, जब बोर्डिंग की लड़कियों की ओर से विद्यार्थियों को विशेष प्रोत्साहन न मिला तो उन्होंने बोर्डिंग में आना बन्द कर दिया। उन्हीं दिनों बोर्डिंग को चलाने वाली संस्था ने व्यवस्थापिका के द्वारा छात्राओं को यह आदेश दिया कि वे इस आन्दोलन से ज़रा भी संबंध न रखें। और उन्होंने इस आशय का नोटिस भी लगा दिया।

महीने-भर में सुमति ने राष्ट्रीय विद्यापीठ में अपना नाम लिखवा लिया। इसके कुछ दिन बाद गर्मियों की छुट्टी में सभी छात्र और छात्राएँ अपने-अपने घर लौट चले। इस छुट्टी में सुमति ने पूना जाने का निश्चय किया, जहाँ उसके मामा रहते थे। उसका बचपन ननिहाल में ही बीता था, अतः स्वाभाविक था कि पूना के प्रति उसको आकर्षण हो। बीच में, उसके नाना-नानी का देहान्त हो गया था और मामा का तबादिला दूसरे शहर हो जाने से, पूना जाने का अवसर न आया था। हाल ही में मामा का कार्यालय पूना में आ गया था, अतएव सुमति ने इस अवसर का लाभ लेना चाहा और घर पर सूचित करके वह पूना के लिए रवाना हो गई।

१५

पवित्र नगर में

दोपहर में सुमति पूना नगर में आ पहुँची। उसके मामा का घर सदा-शिव पेठ में था। मामा को उसके आने की ख़बर थी, सो वे उसे लेने स्टेशन पर आए थे। जब उसका ताँगा घर के दरवाज़े पर रुका, मामा के छोटे-छोटे बच्चे दौड़ते हुए आ पहुँचे। मिठाई के लालच में यह भाग-दौड़ थी। सुमति ने सब को प्यार किया और सब घर में आए। मामी घर के भीतरी भाग में, दरवाज़े के पास हँसते मुँह खड़ी थी। पारस्परिक कुशल पूछ लेने पर सब बैठक में बैठकर बातचीत करने लगे।

पहले मामी बोली—"सुमति! सुनते हैं तुम तो बड़ी नेता बन गई? भाषण भी देती हो? क्या यहाँ भी भाषण होगा?"

"बहुत हो चुका मामी," सुमति ने कहा—"कभी दो-पाँच मिनट बोली हूँगी, तो क्या इतने ही में नेता बन गई?"

"लेकिन, तुमने कालिज छोड़ दिया, यह बात मुझे पसन्द न आई। क्या परीक्षा निकट आ जाने से तुमने...."

सुमति ने हँसकर कहा—"लेकिन मैं राष्ट्रीय विद्यापीठ जाती हूँ। वहाँ मेरी पढ़ाई जारी है। परीक्षा भी दे चुकी हूँ।"

लेकिन सुमति के इस उत्तर से मामी का समाधान न हुआ। तब मामा

की बारी आई—"हमें क्या? पढ़नेवाली तो ये है। जो इसे ठीक लगे, करे।"

"और मामी, यहाँ के हाल तो बताओ।"

"हालचाल क्या?" मामी बोली—"सदा की तरह हमारी गाड़ी चल रही है। दोनों बच्चे छोटे हैं, इसलिए इन्होंने आन्दोलन में भाग नहीं लिया, लेकिन बीमारी और बिछौने में तो बारम्बार भाग लेते रहते हैं। अब तो ऊब गई हूँ और ये वामन तो इतना ऊधम मचाता है कि जी चाहता है, यह घर छोड़कर कहीं चली जाऊँ। पिछले दो दिन से कमू की भी आँखें दुख रही थीं, जब तक ठीक न हुई लगता था मेरी देह में प्राण ही न रहे।"—यों मामी अपने दिल का गुबार निकाल रही थी।

मामा की उम्र चालीस के उस पार होगी। मामी उनकी दूसरी पत्नी थी और उसकी उम्र सत्ताईस के करीब थी। उनके तीन बच्चे थे—पुरुषोत्तम, कमला और वामन। पुरुषोत्तम नौ वर्ष का, और सब से छोटा वामन पाँच साल का था। पुरुषोत्तम और कमला स्कूल में पढ़ते थे, लेकिन आज रविवार होने से, घर पर थे। सुमति ने मामी का सारा दुखड़ा सुना। तब अचानक कुछ याद आया हो, इस प्रकार वह पूछ बैठी—"और वृन्दा कहाँ है?"

"रसोई में है। तुम बड़े दिनों में आई, इसलिए मिठाइयाँ बना रही है।"

"तब चलो न, हम भी भीतर चलें और उसे रसोई के काम में मदद दें।"

मामी ने आग्रहपूर्वक कहा—"बैठो भी सही, रोज-रोज बोर्डिंग का खाना खाकर ऊब गई होगी। अब मामा के घर आई हो तो दुलारी भाँजी का दुलार होना ही चाहिए।"—यह कहते-कहते मामी ने मामा की ओर अर्थ-भरी दृष्टि से देखा और मुस्करा दी।

अब तक भोजन तैयार न हुआ था। रसोई में बैठी वृन्दा से मिलने की सुमति को बड़ी उत्कंठा थ[illegible] वृन्दमाला मामा की पहली पत्नी की एकमात्र संतान थी। बारह साल पहले उसकी माँ मर गई थी, तब वह चार साल की थी। सुमति और वृन्दा साथ-साथ खेलतीं और घूमतीं। फिर वृन्दा की नई माँ आई। सुमति के नाना-नानी जब स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर गए तो वह भी अपने पिता के साथ रहने लगी। मामा भी निरन्तर प्रवास में रहे। अतएव कई वर्षों

तक सुमति वृन्दा को न देख सकी। पाँच वर्ष पूर्व सुमति के बड़े भाई का व्याह हुआ था तब दोनों मिली थीं। तब भी वृन्दा छोटी-सी घघरी पहनती थी। सुमति को याद है कि उस वक्त वृन्दा को देखकर सुमति की माँ को कितना दुःख हुआ था। उस समय वृन्दा एकदम दुबली और अशक्त थी। तब कहा जाता था कि यह हाल ही में बीमारी से उठी है, लेकिन लोग कानाफूसी करते कि सौतेली माँ इसे भारी दुःख देती है। सुमति की माँ ने उससे उल्टे सीधे प्रश्न करके उसकी स्थिति का पता लगाना चाहा, लेकिन वृन्दा ने तनिक भी सुराग़ न मिलने दिया। इस पर प्रत्येक व्यक्ति का यह मत बन गया कि वृन्दा बड़ी गहरी लड़की है!

और इन्हीं कारणों से आज सुमति वृन्दा को देखने के लिए तरस रही थी। मामी ने सुमति से बाहर बैठने का बड़ा आग्रह किया, परन्तु वह रह न सकी। और वृन्दा अकेली मिठाई बनाने का दुष्कर कार्य करे और मामीजी बाहर कुर्सी पर बैठी गप्प लड़ाएँ—यह बात सुमति को पसन्द न आई, और उसे पीड़ा हुई।

सुमति एकदम रसोईघर दौड़ी गई। वहाँ बरतनों का बड़ा ढेर जमा था और उस पर छोकरों ने बड़े प्रमाण में कूड़ा-करकट फैलाया था। चार-पाँच चूल्हे एक साथ जल रहे थे और दीवार से सटी बैठी एक तरुणी पूरियाँ तल रही थी। सुमति का पगरव पाकर वृन्दा ने तुरन्त नज़रें उठाईं। वृन्दा को देखकर सुमति के आश्चर्य का पार न रहा, वह मन-ही-मन कहने लगी—'यही है क्या हमारी बीमार वृन्दा!'

बालापन लाँघकर, वृन्दा ने यौवन के प्रदेश में प्रवेश किया था। उसके गौर बदन पर लालिमा की वसन्ती लहरें लहरा रही थीं। धूएँ के पर्दे के पार उसकी बड़ी-बड़ी, काली-काली आँखें तारों-सी चमक रही थीं। उसके सुन्दर चिबुक पर श्रमविन्दु झलक रहे थे। अभी ही उसने स्नान किया था, इसलिए ढीली-बँधी केश-राशि कंधे पर लटक रही थी। पूरी बेलते समय उसके गोरे हाथों की मुद्रा आकर्षक लगती थी। सुमति को इस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानों उसके सामने बैठी वृन्दा का पुनर्जन्म हुआ है। तेज़ी से सुमति उसके निकट

गई और बोली—"पहचानती है मुझे वृन्दा ?"

वृन्दा खड़ी हो गई। आगे बढ़कर 'नमस्ते' किया और सिर हिलाकर 'हाँ' कहा। यही उसका उत्तर था।

सुमति चुप न थी—"चल, मैं तेरी सहायता करूँगी।"

"लेकिन खाना तो बन गया है। अब तो थाली परसने की ही देरी है।"

सुमति ने उसके साथ दूसरी कई बातें करने का प्रयास किया, लेकिन वह संक्षेप में ही उत्तर देती रही और बात को बढ़ाने का मौका ही न दिया। इससे सुमति को निराशा हुई। यद्यपि वृन्दा की भंगिमा में तिरस्कार न था, परन्तु बचपन की सहेली और अपनी बुआ की बेटी को देखकर, जो हर्ष होना चाहिए वह उसके चेहरे पर नहीं था। शायद, वर्षों बाद मिलाप होने से उसके मन में संकोच हो, यह सोचकर सुमति ने इस बात पर ध्यान न दिया।

सब भोजन के लिए बैठे। मामी परस रही थीं। वृन्दा और सुमति के आसन पास-पास थे। भोजन-वेला लड़कों का हठ और उन्हें दी जाने वाली धमकियों का अन्त न था। अकेली वृन्दा ही चुप थी। वह चुप-चुप भोजन कर रही थी। और यदि कोई उससे कुछ कहता तो दो-एक शब्दों में उत्तर दे देती।

"वृन्दा स्कूल जाती है ?"—सुमति ने पूछा।

"क्या तुम्हारी तरह सबको सरकारी स्कूल छोड़ देना चाहिए ?"—मामा ने कहा—"अभी ही यह अँग्रेज़ी की सातवीं क्लास में गई है।"

और पुरुषोत्तम बीच में बोल उठा—"जल्दी ही तुमसे आगे निकल जाएगी।"

सुमति कुछ उत्तर दे इसके पूर्व ही मामी बोल उठी—"किसे मालूम आगे निकल जाएगी या जहाँ है वहीं चिपककर बैठ जाएगी।"

सुमति ने पूछा—"क्या आपका खयाल है, फेल हो जाएगी ?"

"फेल होने की बात छोड़ो, अब तो विवाह योग्य हुई है। शादी के बाद परीक्षा कैसी ?"

"लेकिन मामी, अभी तो यह छोटी है।" सुमति ने कहा।

"तुम अपने से इसका अनुमान न लगाओ। यह खामोश लड़की जितनी

बाहर प्रकट है उससे अधिक भीतर छिपी बैठी है। जब यह खुद ही ब्याह करना चाहती है, तो दूसरा कोई क्या करे ?"

यों बातचीत चल रही थी। वृन्दा चुपचाप सब सुनती हुई खाना खा रही थी। यह थाह लेना सर्वथा कठिन था कि उसकी इस चर्चा पर उसके मन में क्या चल रहा है? दस मिनट बाद सुमति जब भोजनकर बाहर आई तो वृन्दा को इधर-उधर ढूँढ़ने लगी। लेकिन उसका कुछ पता ही न चला। कुछ देर बाद मालूम हुआ कि वह पढ़ने के लिए अपनी एक सहेली के साथ गई है। सुमति को यह सब अजीब लगा। इतने दिनों बाद वह इस घर में आई और इस लड़की का ऐसा व्यवहार! बहुत दिनों पर मिलने का मोह जताना तो दूर रहा, परन्तु व्यावहारिकता के नाते उसे घर पर तो रहना था! सुमति यही सब सोचती रही।

वृन्दा की अनुपस्थिति में मामी महोदया को मौका मिल गया। उसने वृन्दा की पीठ पर, उसकी बड़ी निन्दा की। ग़लती किसकी है—यह अस्पष्ट होते हुए भी मामी की चर्चा की तह में भाव परखकर सुमति को विश्वास हो गया कि सचमुच वृन्दा सुखी नहीं है और वर्षों से वह निरन्तर मामी के ताने सह रही है!

१६

एक उलझन

साँझ होते ही सिनेमा देखने के लिए पूरी टुकड़ी निकल पड़ी।

"लेकिन मामी! अब तक वृन्दा आई नहीं।" सुमति ने कहा—"उसने चाय भी नहीं पी है, अब तक? अध्ययन का इतना भय क्यों लगता है उसे?"

"अभ्यास? अभ्यास कैसा और बात कैसी?" मामी ने सिर को झटका दे कर कहा—"इसका नाम है स्वच्छंदता! उसका हमेशा यों ही चलता रहता है। कभी भी दिल खोलकर, प्रसन्न होकर, किसी के साथ बोलना ही नहीं! मेरे साथ कहीं जाना-आना भी नहीं। अपने पिता की ओर भी उसके मन में किसी दिन स्नेह नहीं होता! पाठशाला और सहेलियाँ, इसमें सब आ गया। इसके सिवाय दूसरी बात ही नहीं।"

मामी के अति आग्रह के वश होकर सुमति को उनके साथ सिनेमा देखने जाना पड़ा। रात में घर लौटने पर सुमति ने देखा कि वृन्दा रसोई का काम निपटाकर सिलाई का काम कर रही थी। सबको आए देखकर भी उसकी मुखमुद्रा निर्विकार बनी रही।

रात्रि-भोजन समाप्त हो जाने पर, बहाना बनाकर सुमति वृन्दा के पास गई। इस समय वृन्दा अपने खंड में अध्ययनलीन बैठी थी। सुमति को देखकर

उसने कुर्सी आगे बढ़ाई।

"क्यों री वृन्दा!" कुर्सी पर बैठते-बैठते सुमति बोली—"अजीब है तू पढ़ने वाली! जगन्नाथ शंकर सेठ की स्कॉलरशिप लेनी है क्या?"

"हम कहाँ इतनी होशियार हैं?" वृन्दा बोली।

"अभी तो परीक्षा में एक वर्ष है, फिर भी तू तो रविवार की छुट्टी ही नहीं मनाती।"

"मैं 'ढ' हूँ पढ़ने में पहले से ही। इसीलिए अध्ययन का बोझ अभी से ढोना पड़ता है।"

"सो तो ठीक। लेकिन आज हम कई वर्षों के बाद मिली हैं, तब मेरे लिए तो तू कम-से-कम एक दिन घर रहती।"

"तू अभी कुछ दिन रहने वाली जो है। यहाँ आए आज पहला दिन हुआ है। माँ और पिताजी से बातें करनी होंगी, यह जानकर मैं शरद के पास चली गई थी।"

आज की फिल्म, सचमुच, बड़ी मज़े की थी। तू मुझे खूब याद आ रही थी।"

"मुझे सिनेमा देखना पसन्द नहीं।"

"तब नाटक अवश्य ही भाते होंगे।"

"धत्, नाटक भी पसन्द नहीं।"

सुमति को अचरज हुआ, और बोली—"तो क्या पसन्द है तुझे?"

"काम और पढ़ाई।" वृन्दा ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया।

"लगता है, बहुत जल्दी बुढ़िया बन गई है तू! अच्छा, अन्य साहित्य पढ़ने की रुचि तो होगी?"

"अवकाश मिलने पर पढ़ती हूँ कभी-कभी।"

सुमति ने वृन्दा का बताया दराज़ खोलकर देखा। उसमें शृङ्गार-सम्बन्धी पुस्तकें थीं।

उसे आश्चर्य हुआ। 'मुझे नाटक-सिनेमा पसन्द नहीं' कहने वाली यह लड़की ऐसी पुस्तकें क्यों पढ़ती होगी?'

परन्तु, वह इस विषय में कुछ जान ले, इसके पहले ही मामा दरवाज़े में आकर खड़े हो गए और बोले—"सुमा ! यहीं बैठी है अब तक ? नीचे चली आ। और वृन्दा ! अपना दिलरुबा लेकर तू भी चली आ। उस पर गाके दिखाओ अपने गीत सुमति को।"

वृन्दा गायन-वादन भी सीखी है, यह जानकर सुमति का अचरज बढ़ गया। अधिक न बोल, वे दोनों नीचे चली आईं।

नीचे बैठकर वृन्दा ने अपनी वादनकला उत्तम रूप में दिखलायी। उसका स्वर मोटा किन्तु मीठा था। गीत भक्तिरस का होने से सुमति को खूब पसन्द आया। सुमति के आग्रहवश वृन्दा ने दूसरे तीन गीत दिलरुबा पर बजाए। परन्तु, इस समय भी, सुमति को उसकी कला में एक कमी नज़र आए बिना न रही। वह मन से नहीं गा रही थी, यह उसने जान लिया। गीत पूरा होने पर, वृन्दा तुरन्त ही वहाँ से चली गई।

"देखा ? कैसी धुनी छोकरी है ?" मामी वृन्दा को जाती देखकर बोली।

"हमेशा यह यों ही करती है ?"

"और क्या ? गज़ब करती है यह ! उसके मन, पीहर तो मानो रहा ही नहीं, ऐसा हो गया है और अब ससुराल के घर की लगन लगी है।"

"क्या कहती हैं, मामी ?"

मामी मामा की ओर देखने लगीं। मामा बोले—"सुमा ! मेरे लिए तो यह एक उलझन-भरा सवाल बन गया है। वृन्दा की माँ हालाँकि मर चुकी है, फिर भी मैं उसे किसी प्रकार का अभाव नहीं खलने देता। जो चाहती है, हाज़िर करता हूँ। फिर भी वह उदास रहती है। खोई-खोई रहती है। तेरी मामी का स्वभाव कुछ वाचाल है अवश्य, लेकिन इससे वृन्दा मुझ पर क्यों रोष करे ? इसलिए, अब तो मैं भी नहीं बोलता। मेरे साथ रहने में उसे सुख और आनन्द मिलता हो, उसके बरताव से तो मुझे ऐसा नहीं लगता। सो अब मैंने विचार किया है कि उसका ब्याह कर दिया जाए तो वह अपने घर सुख से रह सकेगी। उसे कालिज की शिक्षा लेनी है, तो मैं उसके लिए तैयार हूँ। लेकिन वह कुछ भी तो नहीं कहती। विवाह के विषय में पूछें, तो भी वह चुप ही रहती है।

उसके मन में क्या है, मेरी समझ में नहीं आता। सो, तुझसे मेरा यही कहना है कि तू यहाँ है, इस बीच उसके मन में पैठकर, दिल की बात पूछ ले कि उसकी क्या इच्छा है ? उसे सन्तोष हो सके, ऐसा सब-कुछ करने को मैं तत्पर हूँ।"

"प्रयत्न कर देखूँगी, मामा !" सुमति ने कहा।

"लेकिन, यह कार्य तुझे जल्द से जल्द कर लेना होगा, क्योंकि, वृन्दा थोड़े दिनों बाद बाहर जाने वाली है।"

"कहाँ ?" सुमति को आश्चर्य हुआ।

"ननिहाल। उसके अधिक सगे नहीं हैं। लेकिन उसकी एक वृद्धा नानी अभी जिन्दा है। इतने वर्ष, वह अपने बेटों के परिवार में डूब गई थी, ऐसी डूब गई थी कि उसे अपनी बेटी की पुत्री याद ही नहीं आई। लेकिन कुछ दिन पूर्व ही उसके दोनों बेटे रोग के भोग बनकर उससे सदा के लिए बिछुड़ गए और उनकी पत्नियाँ अपने-अपने बच्चों को लेकर अपने-अपने पीहर चली गई हैं। और अब अचानक बुढ़िया को बेटी की बेटी याद आई है। अभी परसों ही उसकी चिट्ठी आई थी और उसमें लिखाया है कि, 'काफ़ी बरस हो गए, वृन्दा को देखे। अब एक बार यहाँ—राजापुर में उसे आने दीजिए।' बुढ़िया की इस विनती से क्योंकर ना करूँ ? भेज दूँगा मैं इसे, चार-छः दिन के लिए।"

"क्या राजापुर में उसका ननिहाल है ? यह तो रत्नागिरी के पास में है ?"

"हाँ, उसकी माँ वहीं की थी।"

सुमति ने इसके बाद दूसरी ही बातें छेड़ दीं।

तदनन्तर सुमति ने वृन्दा के साथ मैत्री करने का काफ़ी प्रयास किया, परन्तु उसे अपने प्रयत्न में अधिक सफलता नहीं मिली। वृन्दा उसके प्रति तुच्छता का व्यवहार नहीं करती थी, यह सच है, लेकिन वह हमेशा पर्दा रख-कर ही बोलती थी। हाँ, अपने नित्य के क्रम में वह त्रुटि नहीं आने देती थी। घर में नौकर होने से घरेलू काम की जिम्मेदारी उस पर न थी। कभी उसका काम पड़ता भी तो अधिकतर उसकी मामी के हाथ नीचे ही काम करना पड़ता।

अन्यथा, स्कूल और पढ़ाई या कभी कहीं घूमने जाना, यही उसका कार्यक्रम था। उसके भाई-बहन बहुत ही उद्दंड और तूफ़ानी थे। उनकी ओर से उसे चाहे जितना कष्ट पहुँचता, फिर भी वह अपने मुँह से एक शब्द भी नहीं बोलती थी। मामी के पास उसने किसी दिन तनिक भी शिकायत नहीं की थी।

वृन्दा को अपने सौन्दर्य का भान था। उसे नए-नए- कपड़े पहनने, शृंगार-परिधान करने का मन होता था। लेकिन, वह अपना मन मारने का प्रयास करती थी, ऐसा सुमति को लगा।

मामी उलहने देती अथवा बरताव में उदासीनता दिखलाती, इसके अतिरिक्त वृन्दा के प्रति कोई गैरबरताव मामी नहीं रखती थी। लेकिन शुरू से ही मामी का ऐसा बरताव था या वृन्दा के बरताव का ही यह परिणाम था, सुमति समझ न पाई।

सुमति आई, उसके बाद चौथे दिन की यह बात है। दोपहर की बेला थी। मामा आफिस गए थे। बच्चों को लेकर मामी सोई थीं। सुमति वृन्दा से कसीदे की खूबियाँ सीख रही थी। इतने में वृन्दा की हमजोली शरद अपनी बड़ी बहन को लेकर वहाँ आ पहुँची।

शरद की बड़ी बहन प्रभावती भी सुमति की बालसखी थी। उसका ब्याह हो चुका था, और हाल ही में वह अपने पीहर आई थी। सुमति यहाँ आई है, यह बात उसने शरद से सुनी थी, सो उससे मिलने के लिए आज वह भी चली आई थी। प्रभावती को देखकर सुमति को आनन्द हुआ। मिलने-जुलने और कुशल-क्षेम की औपचारिक बातें होने पर परस्पर की व्यक्तिगत बातों में वे बह चलीं। इस अवसर को पाकर वृन्दा शरद के साथ वहाँ से चली गई।

प्रभावती ने अपने गार्हस्थ्य जीवन का वर्णन कर लेने पर सुमति से पूछा—
"तूने कालिज तो छोड़ दिया, लेकिन अब क्या करेगी?"

"अभी तो राष्ट्रीय कालेज में जा रही हूँ।"

"यह ठीक है, लेकिन उसके बाद क्या करेगी? देश-सेवा के लिए फकीरी लेनी है क्या?"

सुमति ने कोई जवाब न दिया। इस समय उसका चेहरा लाल हो गया था। उसे चुप बैठी देखकर प्रभावती पुनः बोली—"क्या विचार कर रही है? मुझे लगता है, तू कुछ छुपा रही है। मैं तो कालिज नहीं गई, लेकिन हमने कुछ ऐसा सुना है कि कालिज में 'लव' होता है। और, कुछ दिनों से एक नई हलचल शुरू हुई है। कई वीर कुमार और वीर कुमारियाँ ध्येय के साथ-साथ जीवन का भी मिलन कर रहे हैं, ऐसा सुना जाता है। तुझे भी मिला है कोई वीर कुमार?"

"नहीं री! झूठ क्यों बोलूँ?" सुमति हँसकर बोली—"लेकिन भविष्य में मैं क्या करूँगी, अभी से उसकी व्यर्थ चिन्ता क्यों करूँ?"

"क्यों नहीं? तेरा विचार क्या है, यह तो बता? शादी करेगी कि नहीं?"

"कुँआरी रहने का अब तक तो निश्चय नहीं किया है, समझी?"

"यदि कोई मनपसन्द साथी मिल गया, तो ब्याह करेगी न?"

सुमति चुप ही रही।

"न मिला तो?"

"तो पेट भरने के लिए कोई न कोई धंधा करना ही पड़ेगा? फिर मेरे भाई-बहन भी हैं। उनकी शिक्षा के लिए मुझे ही माँ-बाप को सहायता करनी चाहिए, ऐसी मेरी उत्कट अभिलाषा है। पितृ-ऋण चुकाना ही चाहिए?"

प्रभावती को सुमति के विषय में अचरज हुआ। उसकी इस हिम्मत के लिए हृदय से धन्यवाद भी दिया।

कुछ मिनट के बाद प्रभावती फिर बोली—"अच्छा हुआ, तू यहाँ आ गई। कितने वर्षों के बाद हम मिलीं? सुमति! सचमुच, आज भी तू पहले की तरह ही गुणवान और स्नेही है। तुझसे मिलकर प्रसन्न हुई हूँ।"

सुमति ने भी लगभग ऐसा ही कुछ कहा।

फिर सुमति सहज बोली—"वृन्दा को देखकर मुझे खूब प्रसन्नता हुई है। लेकिन, वह रोज़ उदास क्यों दिखती है? मेरे लिए तो यह एक समस्या बन गई है। उसका स्वभाव ऐसा विचित्र क्यों है?"

"उसके कई कारण हैं। उन्हें खोजने का तूने प्रयास किया है?"

"कैसे खोजूँ ? कहाँ से खोजूँ ? स्वयं मामा-मामी के लिए भी प्रश्न जटिल बन गया है।"

"मामा के लिए इस काम का मुश्किल होना संभव है, परन्तु मामी को इसमें कठिनाई नहीं हो सकती।"

"क्यों ? तू कोई कारण जानती है ?"

"अरी, इसमें क्या ? बिना माँ की लड़की है और सिर पर सौतेली माँ है। फिर पूछना ही क्या ? वह दुःखी जीव भीतर ही भीतर जलता रहे तो कोई आश्चर्य नहीं।"

"मामी का कुछ दोष हो भी सकता है, लेकिन वह अधिक कष्ट देती हों, ऐसा नहीं लगता।"

"कौन देखने गया है ? माँ मर गई, तब उसे पाँचवाँ बरस लगा था। माँ को, जब वह जिन्दा थी, तभी कोई रोग लग गया था। बाप तो रोज़ भटकते रहते। उनके साथ दौड़-धूप करते-करते बेचारी माँ के प्राण उड़े जा रहे थे। और लड़की की ठीक से देखभाल नहीं की गई। उन दिनों नौकर-चाकर रखने की इनमें सामर्थ्य नहीं थी। उसके बाद, इसकी माँ मर गई और नई माँ आई। उस समय उसमें बचपना था। तेरी मामी का स्वभाव भी मिलनसार नहीं है। फिर छोटी वृन्दा भी रोया करती थी। उस समय वृन्दा कुछ हठीली जरूर थी। चाहे मूर्खता के कारण या नासमझी के कारण, तेरी मामी ने वृन्दा को खूब कष्ट दिया था, ऐसा मैंने सुना है। मेरी ननद उन दिनों उसी गाँव में, उनके पड़ौस में रहती थी। उससे मैंने ये सारी कथा सुनी है। लड़की को एक कमरे में बन्द करके तेरी मामी पड़ौसियों के यहाँ बैठने चली जाती, सिनेमा-सर्कस देखने भी चली जाती थी। उस समय मामा डिस्ट्रिक्ट में दौरा करते रहते। मामी की धाक ऐसी थी, कि वृन्दा को भूख लगे, प्यास लगे, अथवा टट्टी जाना हो, तो भी वह एक शब्द तक न बोल सकती थी। सारी बातें कहने लगूँ तो महाभारत बन जाए ! फिर पाँच वर्षों के बाद मामा यहाँ आकर स्थिर हो गए, और तब बेचारी वृन्दा के लिए कुछ अच्छे दिन आए। अब तो तेरी मामी के स्वभाव में भी अन्तर आ चला था। किन्तु, वृन्दा के मन पर पहले से ही जो

छाप पड़ी, वह अमिट हो गई। यहाँ आने पर उसे अपने बराबरी की सहेलियाँ भी मिल गईं। वहाँ उसका कौन था? अब तनिक दिल खुलने लगा है। यों तो वह गमगीन ही लगती है तथापि हमारी शरद के साथ उसका ख़ासा मेल-जोल है। मन की थोड़ी-बहुत बात वह उससे कह देती है।"

"मामा ने स्वयं मुझसे कहा था, कि उसके मन में क्या है, मैं जान लूँ। उसे यहाँ रुचता न हो, सुख न मिलता हो, और शादी करनी हो, तो शादी करा दूँ; यदि कालेज की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा हो, तो उनकी ना नहीं; ऐसा मामा ने कहा था।"

"मुझे तो लगता है, उसका ब्याह करा देना ही उत्तम है। और उसके मन का झुकाव भी इसी ओर है, ऐसा मुझे लगता है।"

उस तरफ शरद और वृन्दा बातें कर रही थीं।

"तेरी बुआ की बेटी स्वभाव से अच्छी लगती है!" शरद कह रही थी; "मुझे तो वह अच्छी लगी।"

"यों तो वह है भी अच्छी।" वृन्दा ने कहा।

"तुम दोनों के बीच मन-मिलाप हुआ कि नहीं?"

"ऊँ-हूँ।"

"क्यों? क्या हुआ?"

"चाहे जैसी हो, है तो वह कालिज की छोकरी। माँ-बाप ने पूरी छूट दे दी है उसे और फिर बम्बई के वातावरण में बड़ी हुई है। अब तू ही बता, मेरा और उसका मेल कैसे हो?"

"मेल क्यों न हो? तुम दोनों के बीच ममता बाँधने में बाधक होने वाला एक भी कारण हो, विशेष कारण हो, ऐसा मुझे नहीं लगता।"

"तुझे नहीं लगता; लेकिन, बहन! ममता कोई दो दिन में थोड़े ही हो जाती है? सिवाय, आचार-विचार में भी मेल होना चाहिए और फिर इस समय वह मेहमान बनकर यहाँ आई है। मामा-मामी की लाड़ली भाँजी बनकर आई है। और मैं? मैं तो हूँ कोने में पड़ी हुई झाड़ू के समान! मैं उसके

साथ बराबरी का बरताव कैसे कर सकती हूँ ?"

"कैसी गहराई में पैठ जाती है तू ! दो दिन रहने को आई है वह, फिर इस प्रकार की दूरी रखने की क्या जरूरत है ? खा-पीकर, खेल-कूदकर, हँसी-आनन्द मनाना चाहिए। फिर वह अपनी राह चली जाएगी और हम अपनी राह। यों तो बरतती नहीं और फिजूल की लम्बी-चौड़ी बातें किया करती है।"

"तेरी बात न्यारी है शरद ! इसीलिए तुझे ऐसा बोलना मुश्किल नहीं लगता। मेरी स्थिति ऐसी नहीं। मेरी बात ही और है।"

"ठीक, अब सारी बातें रहने दे। मैंने सुना है कि तू बाहर गाँव जाने वाली है ?"

"हाँ, नानी ने बुलाया है मुझको, और मेरे पिताजी भी बहुत जल्दी ही मुझे वहाँ भेजने वाले हैं।"

"यह अच्छा हुआ। स्थानान्तर करने से तेरे मन को भी ठीक लगेगा। और कोंकण की वनश्री का वर्णन भी काफी सुना है। वहाँ की वन-शोभा तेरे हृदय को आनन्द देगी। फिर उसमें तेरी नानी का स्नेहपूर्ण सहवास। तब तो पूछना ही क्या ?"

"जो भी होगा, अच्छा है। नानी को भी कई वर्षों के बाद मेरी याद आई। कितने वर्षों के बाद माया प्रकट हुई ?"

शरद ने विस्मयपूर्ण दृष्टि से वृन्दा की ओर देखा। वृन्दा हमेशा अप्रसन्न और उदास क्यों रहती है ? निश्चय ही, उसकी आशा या इच्छा अतृप्त रही होगी, इसीलिए उसके मुख से ऐसे निराशाजनक उद्गार बार-बार निकलते हैं, शरद को ऐसा लगा।

लेकिन, शरद को इस विषय में अधिक विचार करने का समय नहीं मिला। मामी वहाँ आ पहुँचीं। और वृन्दा को चाय की तैयारी करने के लिए हाँक मारने लगीं। सो, शरद और वृन्दा की बात के बीच में ही विराम लग गया।

१७
वृन्दा का ननिहाल

माँ की तबीयत दिन ब दिन बिगड़ती जा रही थी । यशोदा बाई उनकी सेवा करने को सदैव तत्पर रहती, लेकिन माँ का स्वभाव मूलतः सेवा-परायण, सो, उन्हें, कोई भी, विशेषकर यशोदा बाई उनकी सेवा करे, अच्छा न लगता । लोक-प्रथा के अनुसार, माँ को ससुराल में नहीं रहना पड़ा था, फलतः उसे पति के सगों की सेवा करने का प्रसंग नहीं आया था। अतः स्वयं दूसरे की सेवा किए बिना दूसरों से सेवा लेना उसे कैसे रुचता ? उसने, सम्भव-तया, अपनी आवश्यकताओं को घटाने का प्रयास प्रारम्भ किया ।

गाँव के स्त्री समाज में माँ का काफी सम्मान था । उनकी तेजःपुंज मुद्रा, मधुर और प्रेमपूर्ण संभाषण, अधिकारी वाणी और अपरिमित सेवावृत्ति—इन सबके कारण उन्होंने गाँव की स्त्रियों का मन मुग्ध कर लिया था। माँ रोग शैय्या पर पड़ीं कि तुरन्त ही गाँव की स्त्रियाँ उनकी खबर पूछने के लिए रोज-रोज आने लगीं ।

वसंत ऋतु का आगमन हो चुका था । सर्वत्र हल्दी-कुमकुम (महाराष्ट्र में प्रचलित विशेष महिला-पर्व) की धूम मची थी । माँ बिछौने से नहीं उठ सकती थीं । सो, गाँव की स्त्रियाँ उनके घर जाकर हल्दी-कुमकुम दे आतीं ।

एक दिन इसी प्रकार स्त्रियों का आना-जाना जारी था। तब वृद्ध ठमा काकी हाथ में लकड़ी लिये, उसके सहारे वहाँ आ पहुँचीं। ठमा काकी के साथ अन्य दो स्त्रियाँ भी थीं। एक को तो माँ भली प्रकार पहचानती थीं। वह राममंदिर के समीप रहने वाली त्रिवेणी बाई उर्फ बुआजी थीं। दूसरी स्त्री को माँ नहीं जानती थीं।

ठमा काकी एक दूसरे के व्याह रचाने में उस्ताद थीं, गाँव की कई स्त्रियाँ, इस काम के लिए ठमा काकी को धन्यवाद देती थीं। बोलने-चलने में वह खूब चालाक और विवेकी थीं। यहाँ आते ही उसने पुराण आरंभ किया—"बेटी, कैसी है तेरी तबीयत? मैं इतनी बूढ़ी हो गई, फिर भी लकड़ी के सहारे नहीं वरन अपने ही पैरों के बल चलती हूँ। तू तो मेरी बेटी के समान है। हमारी नजर के सामने ही तू इस प्रकार बिछौने में पड़े? लगता है, दुनिया उल्टी चलती है। स्वस्थ हो जा! जल्दी-जल्दी स्वस्थ हो जा। मेरी उम्र तुझे मिले, बेटी! कंचन-जैसी तेरी काया कैसी कुम्हला गई है? यह देखकर मेरा जी तो जलकर खाक हो जाता है। गाँव में इतनी स्त्रियाँ हैं, पर तेरी तुलना में खड़ी होने लायक एक भी है? कैसी देवी-जैसी है मेरी बेटी! बिछौने में पड़ी, लेकिन मुँह का तेज थोड़े ही कम हुआ है? तेरा मुँह देख-देखकर तो दिन कटते हैं मुझ-जैसी बुढ़िया के...."

माँ बीच ही में बोलीं—"काकी, आपका प्रेम अपार है। बैठिए भी अब! और बुआजी! यह लड़की कौन है। नई मालूम होती है। ठीक है न?" माँ ने नई आई तरुण बाला की ओर देखकर कहा।

"मेरी बेटी की बेटी है।" बुआजी बोलीं, "कल ही पूना से आई है।"

"आप पहले कहा करती थीं कि एक लड़की पूना में ब्याही थी जो मर गई है, उसी की यह लड़की है क्या?"

"हाँ, उसी की इकलौती बेटी है!" ठमा काकी बीच ही में बोल उठीं। "कैसी चन्द्रमा-जैसी बेटी है? उसमें कमी खोजने लायक कुछ भी नहीं। होशियार ऐसी है कि बात न पूछो। इसी साल अँग्रेजी सातवीं की परीक्षा देनेवाली है। सिलाई-काम और कसीदा भी खूब जानती है। गीत भी गाती है। रसोई

भी पहले नम्बर की बनाती है। अभी आज ही मैंने इसके हाथ की रसोइ खाई है—स्वादिष्ट और रुचिकर !"

बुआजी ने धीरे से भाँजी से कहा—"वृन्दा ! माँ को प्रणाम करो।"

वृन्दा उठी और माँ को नमन किया। फिर खटिया पर पैरों के पास बैठी और क्षीण तथा दुर्बल पैरों को अपने हाथों से सहलाने लगी।

माँ ने उसके सुन्दर मुखड़े को देखा और प्यार से कहा—

"तेरा नाम क्या है बेटी ?"

"वृन्दमाला।"

"पूना में ही रहती है ?"

"जी।"

"गर्मी की छुट्टियों में आई है ?"

"जी।"

"कितने दिन यहाँ रहेगी ?"

"जितने दिन नानी रखें !"

"तुझे यह गाँव पसन्द है ?"

"हाँ, क्यों नहीं ?"

"हमेशा यहाँ रहना पड़े तो अच्छा लगेगा ?"

"सो, कह नहीं सकती।"

"इस वर्ष मेट्रिक की परीक्षा में बैठ रही है क्या ?"

"जी हाँ !"

"पास हो जाने पर क्या करेगी ?"

"मैं कैसे कह सकती हूँ ? पिताजी जो कहेंगे, वही करूँगी ?"

"तुझे न भाए, ऐसा कुछ करने को पिताजी कहें तो ?"

"पिताजी जो करेंगे, मेरे कल्याण के लिए ही करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। संभव है, पहले मुझे पसन्द न आए, लेकिन समय बीतते, वह मेरे लाभ की बात सिद्ध होगी, इसमें मुझे बिल्कुल सन्देह नहीं।"

"तेरे सौतेले भाई-बहन हैं ?"

"हाँ, दो भाई और एक बहन है।"

"उन पर और तेरी सौतेली माँ पर तेरा स्नेह है ? उनकी मन से सेवा करती है ?"

अब तक पूछे गए प्रश्नों से यह प्रश्न उल्टा था। परन्तु वृन्दा ने तत्काल ही उत्तर दिया।

"जी, बन सके उतना स्नेह उनसे करती हूँ और बन सके उतनी सेवा भी करती हूँ। हमारे घर में एक दूसरे के बीच तनिक भी भेदभाव नहीं है। मेरी माँ मुझे कभी नाराज नहीं करती।"

वृन्दा का उत्तर सुनकर माँ को सन्तोष हुआ।

"लड़की क़ाफी समझदार है।"—माँ मन-ही-मन बोलीं।

चालाक ठमा काकी ने देख लिया कि माँ के मन पर वृन्दा का अच्छा प्रभाव पड़ा है। प्रथम दर्शन में ही इतनी प्रगति देखकर उसे सन्तोष हुआ। अतः उसके मन की कई बातें बाहर आने को आतुर होने लगीं, लेकिन ठमा काकी ने उन पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

तदनन्तर जलवायु, औषध-उपचार, आदि कई बातें निकलीं। माँ ने गाँव की जानी-मानी अन्य स्त्रियों का कुशल-क्षेम पूछा। फिर बुआजी की ओर मुड़कर उन्होंने कहा—

"भाँजी आ गई, सो अब आपके लिए ठीक हो गया। घर एकदम सूना लगता था।"

"सच कहा, मेरा घर तो मानो खाने को दौड़ता था। घर में कोई नहीं। यह आई, और अब तो घर उजला लगता है।" फिर साड़ी के छोर से आँखें पोंछते हुए बोलीं—"सोने-जैसी थी मेरी बेटी। पर बेचारी चली गई। वृन्दा को देखकर मुझे उसकी याद आती है। देवी-जैसी थी वह !"

"बुआजी !"—माँ ने सहानुभूति सूचक स्वर में कहा। "इस संसार में कौन अमर है ? आप और मैं भी एक न एक दिन जानेवाले हैं ही।"

बुआजी ने अब बात का रुख एकदम पलटकर कहा—"माँ, आप खटिया पर पड़ी हैं। मुकुन्द को इस बात की खबर मिलेगी तो वह दौड़ा चला आएगा।"

"इस छुट्टी में तो वह नहीं आएगा।"

"क्यों, भला, क्यों न आएगा?"

"बात यह है कि अपने वर्ग के एक धनी विद्यार्थी को वह समय-समय पर कठिन विषय पढ़ाता है। वह विद्यार्थी पहले उत्तीर्ण हुआ था; मुकुन्द की सहायता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए वह उसे अपने साथ लेकर उत्तर की ओर प्रवास करने गया है। सो, इस छुट्टी में उसे यहाँ आने का अवसर मिले, ऐसा नहीं लगता।"

यह सुनकर त्रिवेणी बाई के मन में तनिक निराशा हो आई, और उसने ठमा काकी की ओर नजर डाली। लेकिन ठमा काकी ने आँख के इशारे से उसे धीरज रखने को कह दिया। फिर वह पुनः माँ से कहने लगी—

"इस दीवाली पर तो आएगा?"

"उम्मीद तो है।"

"बरस में एक-दो बार आ जाता है तो पूरा साल आनन्द में बीत जाता है। लड़का कितना स्नेह रखता है। माँ पर तो उसका अपार प्रेम है। वह छोटा था, तभी से मैं देख रही हूँ कि माँ से पूछे बिना वह एक पग भी नहीं चलता। अच्छा माँ, चलती हूँ अब।"

इतने मे यशोदा बाई कागज में लिपटी एक चीज लेकर हँसती-हँसती वहाँ आई और बोल उठी—"काकी! देखो यह चीज।"

"क्या है?" काकी ने जिज्ञासापूर्वक पूछा।

यशोदा बाई ने पत्र खोला और भीतर रखा फोटो उसने ठमा काकी के सामने धर दिया—"यह रहा मुकुन्द!!"

ठमा काकी ने एकटक फोटो को देखा। फिर सिर डुलाकर बोली—"राजकुमार-जैसा दीखता है।"

त्रिवेणी बाई ने भी फोटो देखा, और प्रसन्न हुई। वृन्दा ने अपनी नानी और ठमा काकी के मुँह से मुकुन्द के बारे में काफी सुना था। फलतः, उसे देखने की उत्सुकता खूब बढ़ गई थी। परन्तु, मुकुन्द आनेवाला नहीं, यह बात सुनकर कुछ निराश हो गई थी। अब फोटो निरखने के लिए उसका मन लाला-

यित हो रहा था। लेकिन व्यावहारिक बुद्धि ने उसकी उतावली को दबा दिया।

यशोदा बाई ने एक के बाद एक हरेक को फोटो दिखाया और अन्त में उसे वृन्दा के हाथ सौंपा। वृन्दा ने देखा कि तुरन्त ही निराशा उत्पन्न हो गई। ठमा काकी के बखान से उसने जो ऊँची-ऊँची कल्पना की थी, वैसा वह नहीं था। मुकुन्द अपने नित्य के लिबास में था। धोती, कुरता कंधे पर डाली हुई शाल, और गरदन तक लम्बे बाल—इस तरह वह बंगाली बाबू जैसा दीखता था। वृन्दा ने मुकुन्द को राजपूती या अँग्रेजी वेश में सुशोभित देखने की कल्पना की थी। वैसा ही देखने की उसकी अपेक्षा भी थी। किन्तु, फोटो में सादे मुकुन्द को देखकर उसे आघात-सा पहुँचा।

"यह तो फकीर-जैसा लगता है।" वृन्दा मन-ही-मन बोली, लेकिन उसे अधिक सोचने का समय नहीं मिला। उसकी नानी और ठमा काकी अब जाने के लिए खड़ी हो चुकी थीं। वृन्दा भी उनके साथ जाने को उठ गई।

१८
वृन्दा का विचार

रात के नौ बजे थे। राजापुर के रास्ते निर्जन हो गए थे। छोटे बच्चे निद्राधीन थे। और लोग दरवाजे बन्दकर, भोजन-कार्य में व्यस्त हो गए थे। सर्वत्र शुभ्र चाँदनी चमक रही थी। काजू के पेड़ की घनी पल्लव-राशि-सी रुपहली चन्द्रकिरणें पृथ्वी पर फैल गई थीं। नारियल के पेड़ के ऊँचे शिखरों के पत्ते पवन से डोल रहे थे और मृदु, मधुर मर्मर कर रहे थे। उस ताल के साथ झाड़ का शिरोभाग भी डोल रहा था। बीच-बीच में, गोठे में बँधी गाएँ और भैंसों का रँभाने का और कभी-कभी कुत्तों के भौंकने का स्वर सुनाई पड़ता था। वृन्दा की नानी रात्रि का भोजन निपटाकर निद्रस्थ हो गई थी। अब वह एकाकी अपने कमरे में बैठी, खिड़की से बाहर प्राकृतिक सौन्दर्य को निरख रही थी।

उस शान्त रात्रि में सुदूर समुद्र की गम्भीर गर्जनाएँ सुनाई देती थीं। मानो, थके-माँदे मानव को निद्रावश करने के लिए सागर मधुर लोरियाँ गा रहा हो! लहरें, क्षण में डरातीं, क्षण में हँसातीं, क्षण में पवन से खेलतीं, 'फूगड़ी' (स्त्रियों का एक खेल) में मस्त बनी थीं। 'पल में तोला, पल में माशा' की उक्ति की सत्यता लहरें अपनी मस्तानी अदाओं से चरितार्थ कर रही थीं।

घर के सामने बगीचा था। बगीचे के आस-पास काँटे की बाड़ थी। इस घर में मेहनत करने वाला कोई आदमी नहीं रह गया था, सो, किसी समय का

यह सुन्दर बाग आज उजाड़ बन गया था। "थोड़ा-सा श्रम करने पर यह नंद-नवन बन जाएगा।"—वृन्दा अपने से बोली।

सम्मुख उपस्थित रम्य और प्रशान्त प्राकृतिक दृश्य देखकर उसके मन में आनन्द होना चाहिए था, लेकिन इस समय तो इसके विपरीत, उसके हिये में अनेक विचार-तरंगें उठ रही थीं। मंद-मंद वायु आम्र-वृक्ष की मंजरी से महक उठा लाता। इस सुगन्ध, और दूर से आई नमकीन सुवास के एक दूसरे से मिल जाने पर, मस्तिष्क में उन्माद-सा चढ़ने लगा। पुनः वह चन्द्र की ओर देखने लगी। और उसका शरीर कम्पन अनुभव करने लगा।

उसने भाव प्रधान काव्य और कहानियाँ काफी पढ़ी थीं। इसीलिए उसे वर्तमान एकान्तिक जीवन में आराम और आश्वासन मिल रहे थे। कहानी और उपन्यास की अद्‌भुत कल्पनाओं ने उसका मस्तिष्क भर दिया था। और उसने अपने अन्तर में ही एक नवीन, अनोखी, अद्‌भुत कल्पना-सृष्टि का निर्माण किया था। अपनी सृष्टि को साक्षात् करने की उसकी अभिलाषा थी। आप प्रकृति के रमणीय दृश्य देख रही हो, या प्रशान्त रम्य परिस्थितियाँ हों तब उसके हृदय में एक मूक संवेदना जाग्रत होती, और उसके मन को क्षुब्ध बना देती थी। इसका कारण स्वयं उसकी समझ में नहीं आता था। इससे उसे लगता कि उसके जीवन में कोई कमी है, और उसकी पूर्ति करना आवश्यक है।

माँ ने उससे पूछा था—'तुझे सदा के लिए यहाँ रहना पसन्द है?' किसके लिए मैं यहाँ रहूँ? उसने अपने आपसे प्रश्न किया। एकाएक उसके मनःचक्षु के सम्मुख फोटोवाला मुकुन्द मानवी आकार धारणकर खड़ा हो गया, और उसने आँखें मूँद लीं।

एक सप्ताह से, माँ पर वृन्दा का अच्छा प्रभाव डालने के लिए नानी के प्रयास चल रहे थे। वृन्दा के लिए प्रयत्न करने में उस बुढ़िया ने कोई कसर न रखी।

वृन्दा को राजापुर में बुलाया गया, तब त्रिवेणी बाई के मन में ऐसा था कि घर में कोई आदमी नहीं, बाल-बच्चे नहीं, सो अपने एकाकी जीवन के लिए ठीक

हो जाएगा। घर में बस्ती हो जाएगी। परन्तु वृन्दा को साक्षात् देखने पर बुढ़िया को लगा कि यह लड़की किसी बड़े घर का मोती है। और उसे अपने यहाँ रख लेना उचित नहीं। वृन्दा का शारीरिक सौन्दर्य देखकर पास-पड़ौस की स्त्रियाँ भी चकित होकर बोलतीं—"बुआजी, यह आसान काम नहीं है। उसे जल्दी सौंप दीजिए। ऐसे-वैसे हाथों यह रत्न चला जाए, तो ठीक नहीं।"

वृन्दा सामने वाले शीशे में अपना अभिनव सौन्दर्य देखने लगी! उसे अपनी सुन्दरता की कल्पना थी ही। लोग उसकी प्रशंसा करते, तब उसे आनन्द होता। उसकी सुमति से पहचान हुई, तब वह सहज भाव से वृन्दा के सौन्दर्य और बुद्धि की प्रशंसा कर बैठी थी।—"मेरे प्रति उसने कितना स्नेह दिखाया था! मुझसे स्नेह-संबंध स्थापित करने को वह कितनी आतुर थी? लेकिन मैंने आखिर तक कोई दाद न दी।"

"लेकिन मुझे उससे ईर्ष्या होती है।" वृन्दा मन ही मन बोली।—"वह स्वतंत्र है। माँ-बाप की लाड़ली बेटी है। चाहे जो करने की उसे छूट है। चाहे जब, चाहे जहाँ वह अकेली जा सकती है। उसे कोई पूछने वाला नहीं। और मेरी यह दशा! सदैव मेरे चारों ओर पहरा रहता है—एक ओर सौन्दर्य की स्तुति और दूसरी ओर काँटे की बाड़।

"सुमति को आश्चर्य हुआ था, कि मुझे नाटक-सिनेमा देखना पसन्द नहीं। नाटक-सिनेमा मुझे क्यों पसन्द न हो? लेकिन मुझे लिवा जाता है कौन? उसकी तरह स्वतंत्र तितली तो मैं हूँ नहीं! और शायद कभी मेरी माँ को मुझे ले जाने की इच्छा हो गई, तो भी कटकट चालू रहती है। इसलिए, कटकट भी नहीं, और नाटक-सिनेमा देखना नहीं, ऐसा निश्चय करने का मन हो जाए, तो इसमें क्या आश्चर्य?

"सुमति मुझसे कहती थी—'तेरे माँ-बाप तेरी समस्या नहीं सुलझा पाते। कालिज में जाने की तेरी इच्छा है?' अपनी पुत्री का मानस जो पिता न जान सके वह पिता कैसा? उसे किस लिए पिता बनना चाहिए? अपने सुख के लिए शादी करें और बच्चे होने पर दैव को अभिशाप दें। पत्नी का स्वर्गवास होने पर पुनः विवाह करने को तैयार हो रहें! मैं छोटी थी, कुछ समझती न थी,

तब उन्होंने गाँव से लौटने पर, मुझे अपने पास बुलाकर कुछ पूछा हो, या ममता से मेरी पीठ पर हाथ फेरा हो, ऐसा दिन याद नहीं! और अब, जब मैं समझदार हुई, तब वृन्दा के लिए प्रेम उमड़ आता है! कालिज में जाकर अपना खून जलाना पड़े, और घर लौटकर भी, यही क्रिया चालू रहने वाली हो, तो क्या करना है मुझे कालिज जाकर?

"एक बार सुमति की ओर, तथा कालिज की अन्य लड़कियों की तरफ देखकर मन में होता है, इस स्वतंत्र जीवन में कितना आनन्द है? लेकिन किसे? जो स्वतंत्र है, उसे। इस समय मैं कन्याशाला जाती हूँ, तब भी माँ की तिरछी नजर सदैव मुझ पर रहती ही है। जब ऐसी हालत है, तो शायद मेरे कालिज जाने पर, रास्ते में मुझपर चौकी रखने के लिए आगे-पीछे सिपाही रख देंगी वह।

"तो मुझे क्या चाहिए....?"

वृन्दा एकदम चौंक गई। विचार की तंद्रा में उक्त प्रश्न उसके मुँह से जोर से निकल पड़ा। अपनी आवाज से ही वह चौंक गई थी।

अभी कल ही तो उसके नाम सुमति का पत्र आया था। वृन्दा पूना से यहाँ आई, उसके बाद तीसरे दिन सुमति अपने मामा-मामी के साथ महाबलेश्वर गई थी। वहाँ से उसने वृन्दा को पत्र लिखा था। पत्र में उसने महाबलेश्वर का रम्य वर्णन लिखा था और वृन्दा के प्रति अगाध स्नेह का दिग्दर्शन किया था। लौटती डाक से पत्रोत्तर देने का आग्रह भी किया था। अपने प्रति सहानुभूति और स्नेह दिखाने वाले व्यक्तियों से वृन्दा को प्यार हो जाता, परन्तु, घर में वह सब की तिरस्कृता थी, अतः दूर की सुमति अब निकट हो चली थी। इतने वर्षों में महाबलेश्वर जाने का एक भी अवसर नहीं मिला था, जब कि सुमति को अचानक यह मौका मिल गया, इससे वह चिढ़ गई। और उसने पत्र का कोई उत्तर न देने का निश्चय किया।

उसने मन में सोचा, सारी दुनिया ही मेरे विरुद्ध है। बचपन से ही उसका वह खयाल था और इसी खयाल के तले वह नाहक उदास और गमगीन रहती थी। राजापुर आने के बाद से एकाकीपन का अधिक आभास होने लगा। इस पराई दुनिया में अपना कहने लायक कौन है?

सहज ही उसका विचार-प्रवाह भविष्य-काल की ओर बढ़ा। प्रत्येक स्त्री की एक ही अमर आशा होती है। अपने अधिकार का, केवल अपना ही कहा जाने लायक एक ही व्यक्ति हो सकता है और वह होता है स्त्री का जीवन-सहचर—उसका पति। चारों ओर से निराश हो जाने पर, क्यों न विवाह का सीधा मार्ग अपना लें?

"कहने को तो बात सीधी है, पर कितना कठिन है, जीवन-सहचर ढूँढ़ना!" पुनः वह विचार-मग्न हो गई। कई लोग कहते हैं कि कालिज जाने से यह कार्य विशेष सरल हो जाता है। लेकिन, मुझ-जैसी लड़की के लिए यह कैसे संभव है?

"और यदि माँ मेरे लिए पति खोज लाएँ तो! न, न! मेरे जन्म का बैर साधने के लिए! मेरी नानी खटपट करें, सो ही ठीक है!"

"क्या नानी के प्रयत्न सफल होंगे?"

"मुकुन्द की पत्नी बनना मुझे पसन्द है?"

वृन्दा के मन में यों, प्रश्नों की कड़ी बन गई। उसने अपने अज्ञात सहचर के विषय में जो कल्पना की थी, वह अद्भुत कहानियों से उधार ली गई थी। उसे 'रोमेन्टिक' घटना चाहिए थी। कोई अद्भुत घटना हो जाए, और अपने को अद्भुत साथी मिल जाए, ऐसी थी उसकी किताबी कल्पना।

मुकुन्द की पारिवारिक कथा उसने अपनी नानी और ठमा काकी से सुनी थी; अपनी 'रोमान्स'-विषयक कल्पना की पोषक कथा थी वह! मुकुन्द के मृत मामा विक्रान्त पर वह मन-ही-मन मुग्ध हो गई थी। लेकिन, क्या भाँजा भी मामा-जैसा होगा? इसका क्या भरोसा!

"और, वह अपने बड़े मामा की तरह न होकर, छोटे मामा-जैसा बन जाए तो?"

इस विचार के साथ ही उसकी देह काँप उठी। तीनों मामा गोली खाकर मर गए थे, यह बात उसे गर्व करने योग्य लगी। परन्तु, विजयेन्द्र का, खून करके फाँसी पर लटकने का कार्य भीषण और वीभत्स लगा। खूब प्रयत्न करने पर भी यह बात उसके गले नहीं उतरी। "मुकुन्द ऐसा खूनी होगा?" मन में प्रश्न उठा।

"लोग उसके शान्त और सौम्य स्वभाव की स्तुति करते हैं। लेकिन, इस आन्दोलन में कई जवान उत्तेजनावश ही कूद पड़े, जब कि वह अकेला ही अविचल है, इससे मैं क्या समझूँ? वह उत्कट भावना-प्रधान व्यक्ति नहीं होगा।

"स्त्रियाँ चाहे जितनी पढ़ी-लिखी हों, फिर भी मूक पशु जैसी ही हैं।" वह अपने मन-ही-मन कहने लगी—"स्त्रियों को अपना पति पसन्द करने की छूट नहीं। माँ-बाप जहाँ चाहे, वहीं उसे जाना पड़ता है। फिर तो वह जाने और उसका नसीब!

"नानी मुझे मुकुन्द के हवाले करने की कोशिश कर रही है। लेकिन इसके लिए उसकी माँ को सन्तुष्ट करने का क्या प्रयोजन? स्वयं मुकुन्द भी तो मुझे पसन्द करे। केवल माँ के कहने-भर से, वह मुझे अपनी बना लेगा? और, मानो ऐसा कर भी ले, तो मुझे सुख मिलेगा?

काफी देर, वह चाँदनी निरखती रही। फिर ऊब उठी, और नानी के कमरे में गई। त्रिवेणी बाई जमीन पर दरी बिछाकर सोई थीं। सामने, खटिया पर वृन्दा का बिस्तर लगा हुआ था। वृन्दा बिछौने पर लेटी और तुरन्त ही उसे नींद आ गई।

नींद में—मुकुन्द के साथ उसका ब्याह हो गया है—ऐसा स्वप्न उसने देखा। इस स्वप्न की अलग-अलग, पाँच-छः आवृत्तियाँ हुईं। स्वप्न के अन्तिम चरण में उसने देखा कि दोनों अग्नि के सम्मुख बैठे हैं। ब्राह्मणों ने पवित्र सूत्र-द्वारा दोनों के दामन बाँधे हैं, इतने में उस सूत्र का डोरा उसकी गरदन से लिपट जाता है। खुद घबराकर ऊपर देखती है, तो आकाश में भयंकर हँसी हँसने वाला एक चेहरा दृष्टिगत होता है। उसके गले में फाँसी की डोरी लिपटी है। किसी अज्ञात शक्ति ने इस समय वृन्दा को सूचना दी कि वह फाँसी पर लटकाया गया विजयेन्द्र है। तुरन्त ही उसके गले से चीख निकल पड़ी। और वह घबराकर जाग उठी, इधर-उधर देखने लगी। सर्वत्र सूनी शान्ति फैली थी। कमरे में चन्द्र-किरणें बिछी हैं, और त्रिवेणी बाई के खुर्राटों की ध्वनि से कमरा गूँज रहा है। वृन्दा अस्वस्थ हुई। सारी रात उसके भयग्रस्त मन को शान्ति न मिली। उसने पूरी रात जागकर काट दी।

११
गर्मी की छुट्टियाँ

गर्मियों की इस छुट्टी में तीन व्यक्ति अलग-अलग स्थानों में अपने दिन बिता रहे थे। मुकुन्द अपने गुजराती मित्र के साथ उत्तर का प्रवास कर रहा था। उसने कई ऐतिहासिक स्थान-क्षेत्र—बुद्ध-गया, हृषीकेस आदि देखे। अटक से लेकर कटक तक—समूचा प्रदेश उसने देख लिया। और अन्त में हिमालय की यात्रा समाप्तकर वह बम्बई की ओर लौटा।

सुमति महाबलेश्वर में अपनी छुट्टी के दिन, आनन्द से, बिता रही थी। अपने मिलनसार और मधुर स्वभाव के कारण वह मामा-मामी की प्रिय हो गई थी। मामा-मामी के बच्चे भी उसके प्रति आकर्षित थे। लेकिन मामी के साथ अधिक परिचय होने पर सुमति को मामी में अनेक दोष दृष्टिगत हुए। वृन्दा के प्रति मामी के मन में भेदभाव भरा था। मामी को वृन्दा से ईर्ष्या थी। शायद वृन्दा अपनी बेटी के रूप में उसे अच्छी न लगे, किन्तु अपनी छोटी बहन मानकर भी उस पर प्रेम रखना चाहिए, मामी को ऐसा नहीं लगता था। सुमति ने परोक्ष रूप से मामी को सुधारने का प्रयास किया, किन्तु सब चिकने घड़े पर पानी ढोने के समान व्यर्थ हो गया। वृन्दा से पत्र-व्यवहार करने की उसकी इच्छा थी। लेकिन उसके लगातार दो पत्र लिखने पर, वृन्दा की ओर से एक छोटी-सी चिट्ठी ही प्रत्युत्तर में आई। इससे भी वह निराश न हुई और

अपना कार्य आगे बढ़ाती रही। छुट्टी समाप्त होते ही वह बम्बई लौट आई। और अपने निश्चित कार्य में व्यस्त हो गई।

वृन्दा की छुट्टियाँ राजापुर में बीतीं। अपनी सौतेली माँ से दूर रहने के कारण, उसे आनन्द होना चाहिए था, किन्तु उसके स्वभाव में सन्तोष-वृत्ति का अभाव और कोई अतृप्त आकांक्षा उसके मन को झुलसा रही है, इन कारणों से उसे सुख नहीं मिलता था। राजापुर में माँ के साथ उसका परिचय दिन प्रति-दिन बढ़ रहा था। प्रथम मिलन में उस पर माँ का गहरा प्रभाव न पड़ा, अथवा, जो कुछ प्रभाव पड़ा वह स्वार्थजन्य था; किन्तु त्रिवेणी बाई को येन-केन प्रकारेण मुकुन्द के साथ उसका ब्याह कर देना था, सो, किसी न किसी बहाने वह वृन्दा को माँ के पास ले जाती या भेज देती। इस प्रकार वृन्दा को त्रिवेणी बाई जानबूझकर माँ की सेवा करने का अवसर देती थी। और धीरे-धीरे माँ के स्नेहमय, देवी स्वभाव से वृन्दा परिचित होने लगी। शनैः-शनैः उसके मन में माँ के प्रति सम्मान, आदर और प्रेमभाव जागृत हुआ। फिर त्रिवेणी बाई परोक्ष रूप में वृन्दा के घर की भली-बुरी स्थिति का, नमक-मिर्च लगाकर, वर्णन माँ के सामने करने लगी।—"बेचारी वृन्दा बिना माँ की लड़की है। सौतेली माँ इसे खूब कष्ट देती है। और बाप तो नई माँ के हाथ की गुड़िया बन गया है। वृन्दा की उम्र तो कम है, परन्तु प्रौढ़ महिला-जैसी समझ उसमें है। घर-संसार उत्तम रीति से चलाएगी और सेवा करने में तो, शायद ही कोई उसकी बराबरी में खड़ा हो सकेगा।" त्रिवेणी बाई इस प्रकार की बातें, माँ के सम्मुख, बारबार किया करती थीं।

वृन्दा के लिए अपने घर लौटने का समय ज्यों-ज्यों समीप आने लगा, त्यों-त्यों बुढ़िया का जी ऊँचा-नीचा होने लगा। अन्ततः एक दिन वह ठमा काकी को लिवाकर माँ के पास आई और आँख में आँसू लाकर वृन्दा को स्वीकार करने की विनती करने लगी।

माँ ने कहा—"यों तो वृन्दा की योग्यता और बुद्धिमानी में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। लेकिन, आश्चर्य इतना ही है कि उसके माँ-बाप के होते हुए आप क्यों परेशान हो रही हैं! फर्ज करें, आपका पसन्द किया स्थान उसके

माँ-बाप को ठीक न जँचे, तो ?"

"उनकी क्या मजाल है कि नापसन्द करें ? इस लड़की पर मेरा कोई अधिकार ही नहीं ? फिर उसके पिता को इस लड़की के लिए कोशिश करने की चिन्ता नहीं। उल्टे, मैंने स्थल ढूँढ़ लिया है, तो अपनी मेहनत बचने के कारण उन्हें आनन्द ही होगा। और फिर ऐसा घर-बार तीन लोक में भी न मिलेगा।"—त्रिवेणी बाई ने कहा।

माँ को इस प्रशंसा-पुष्पावली से तनिक भी गर्व न हुआ। वह इतना ही बोलीं—"ऐसा होने पर भी, इस समय, मैं कुछ नहीं कह सकती। व्याह लड़के को करना है। सबसे पहले उसकी पसन्द होनी चाहिए। लेकिन इस समय वह परीक्षा की गड़बड़ में होगा। यह साल पूरा न हो जाए, तब तक उसके मन को बेचैन करने वाली कोई बात उससे नहीं कहनी है।"

माँ का यह निश्चित उत्तर सुनकर त्रिवेणी बाई को निराशा हुई। किन्तु, ठमा काकी ने धीरज बँधाई। और आगामी दीवाली पर पुनः विवाह-संबंधी हलचल करने का आश्वासन देकर वहाँ से उठीं।

वृन्दा, जाने से पूर्व, माँ को प्रणाम करने गई, तब माँ ने उससे पूछा—"फिर दुबारा आएगी यहाँ ?"

अपने नेत्र माँ के नेत्रों में डालकर उसने उत्तर दिया—

"आपका आशीर्वाद होगा, तो आ भी जाऊँगी।"

इस वाक्य का क्या तात्पर्य हो सकता है ?—इस बारे में माँ लम्बे समय तक अपने मन में विचार करती रहीं।

२०

बढ़ता हुआ परिचय

आन्दोलन तेज़ी से चल रहा था। राष्ट्रीय शिक्षा के प्रवाह में बम्बई के तरुण बहे जा रहे थे। चन्द्रशेखर, सुमति और निर्मला, सब एक ही कालिज में दाखिल हो गए थे। परन्तु अब उनके सदा के यंत्रवत् जीवन को ग़ज़ब का धक्का लगने से पहले का एकसूत्री जीवन समाप्त हो गया; और उसके स्थान पर अस्थिरता और असंतोष ने अड्डा जमा लिया।

प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव के अनुसार, उसके मन पर इस घटना की छाप पड़ी। लीलाधर धीरे-धीरे ऊबने लगा। उसके पसन्द के विषय यानी खेल-कूद और उत्सव-समारंभ, अब उसे नहीं मिलते थे; सो वह असन्तुष्ट रहने लगा। चन्द्रशेखर पढ़ाई से जी चुराता था, अतः वह अपनी कक्षा में अनुपस्थित रहने लगा। उसका लक्ष्य विद्या प्राप्त करने की अपेक्षा, धन प्राप्त करने की ओर अधिक था। उसमें फिर घर में पिता का रोष था। इसलिए आप आर्थिक दृष्टि से जितना जल्दी स्वतंत्र बन जाए; उतना अच्छा, ऐसा उसे लग रहा था। फलतः वह पैसा पैदा करने का प्रयत्न करने लगा। सुमति अब विशेष गंभीर बनने लगी थी। राष्ट्रीय शिक्षा-प्राप्ति का आरम्भ, उसे अपना 'केरिअर' डुबो देने का आभास देने लगा। उसे, अपनी कोई चिन्ता नहीं थी, किन्तु चिन्ता थी तो केवल इतनी ही कि वह अपने पिताजी के लिए किस प्रकार

सहायक बन सकेगी? पिता और देश, दोनों का ऋण चुकाने की राह वह खोज रही थी। निर्मला थी धनी बाप की बेटी। उसे जरा भी आर्थिक चिन्ता नहीं थी। किन्तु समय बीतते उसकी महत्त्वाकांक्षा दब गई। परिस्थिति के अभाव में उसके लिए अपने 'कर्तृत्व' का प्रदर्शन करना असंभव था, इसलिए वह दुःखी थी। केवल राष्ट्रीय शिक्षा से उसे सन्तोष नहीं होता था।

एक ही कालिज में एक ही ध्येय को लेकर छात्र आए थे, सो इनका पारस्परिक परिचय बढ़ने लगा। सुमति अब भी बोर्डिंग में रहती थी। उसने अपनी 'ट्यूशन' भी जारी रखी। आन्दोलन के कारण जिन विद्यार्थियों से उसका विशेष परिचय हुआ था, वे किसी न किसी बहाने अब भी उससे मिलने आते थे।

मुकुन्द और लीलाधर के बीच मतभेद हो गया था, फिर भी उनके बीच स्नेह तो क़ायम था ही। लीलाधर बारबार उससे मिलने जाता और कई बार तो साथ में घूमने भी जाता था। इसी तरह एक बार वे दोनों घूमकर लौट रहे थे, कि मार्ग में सुमति से भेंट हो गई। मुकुन्द ने, उस दिन—चौपाटी के भाषण के दिन—दूर खड़े-खड़े उसका भाषण सुना था। परन्तु प्रत्यक्ष परिचय नहीं हुआ था। अब तक उसने किसी भी विद्यार्थिनी के साथ संभाषण नहीं किया था। वह बहुत ही संकोची स्वभाव का था, परन्तु इस दिन लीलाधर ने उसके संकोच का विचार न कर, सुमति से उसका परिचय करा दिया।

मुकुन्द को इस परिचय से आनन्द हुआ। स्त्री-जाति के प्रति उसके मन में अवस्थित पूज्य भावना, पूज्य बुद्धि सुमति के साथ परिचय होने से दुगुनी हो गई। 'सचमुच! वह एक देवी है!' वह अपने मन से कहने लगा। माँ के पास था, तब उसे माँ से प्रेरणा मिलती थी; परन्तु बम्बई में वैसा कोई प्रेरणा और स्फूर्तिदायक स्थान न होने से, उसे लगता था कि उसने सदा के लिए वह स्थान खो दिया है। अब सुमति से परिचय होने से उसे आशा हो गई कि उस अभाव की पूर्ति हो गई है।

इस परिचय के बाद, मुकुन्द कोई उत्तम ग्रन्थ पढ़ता, या उलझन-भरी कोई

समस्या उसके मन में घुल जाती, तो वह दौड़कर सुमति के पास चला आता और उसके मुख से विवेक और आश्वासन के शब्द सुनकर अपार सन्तोष प्राप्त करता। सुमति को भी मुकुन्द का साथ पसन्द था। उसकी बुद्धिमत्ता और उसके सौजन्य पर, वह मुग्ध हो गई थी। उसके मुँह से अपनी माता के विषय में निकलने वाली बातें सुनकर सुमति को कभी-कभी उनका दर्शन करने की इच्छा हो जाती थी।

एक दिन जब उसने सुना कि मुकुन्द का मूल गाँव राजापुर है, तब उसे आश्चर्य हुआ। उसे वृन्दा याद आ गई।

"इस गाँव का नाम मैंने सुना है।" सुमति बोली—"वहाँ त्रिवेणी बाई नामक कोई महिला राममंदिर के पास रहती है?"

"हाँ, वे हैं 'बुआजी'!" मुकुन्द बोला।

"मेरे मामा की बेटी की वे नानी हैं। ममेरी बहन गरमी में वहीं छुट्टी बिताने गई थी।"

"अ....च्छा!" मुकुन्द ने इतना ही कहा। अधिक पूछताछ नहीं की।

परन्तु अधिक वार्तालाप से सुमति को मुकुन्द का जीवन अनिश्चित लगा। उसने एक बार मुकुन्द से पूछा—"आपने अपने जीवन की कोई दिशा निश्चित की है?"

मुकुन्द कुछ सहम गया। अब तक उसने अपना जीवन-लक्ष्य निश्चित नहीं किया था। अतः उसने संकोचपूर्वक उत्तर दिया—"वास्तव में, अब तक मैं अपने जीवन की निश्चित दिशा स्पष्ट नहीं कर सका हूँ। मैं काफी सोचता हूँ, लेकिन मुझे भीतर से प्रेरणा नहीं मिलती।"

"यह कैसे संभव है? किसी विषय का सतत चिन्तन किए बिना, अन्तः-प्रेरणा कैसे मिले? मुझे तो यही लगता है कि आपने स्पष्ट विचार ही नहीं किया।"

"हो सकता है। लेकिन सच कहूँ? मैंने अब तक अपने आपको स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में नहीं देखा है, प्रवाह में बह रहा हूँ। उदर-पोषण की चिन्ता नहीं, इसीलिए ऐसा हुआ है।"

"मुझे लगता है कि अब आप अपने को भौतिक दृष्टि से भूल जाइए, और ऐसा समझिए कि जंगल के खेत में मजदूर बनकर रहना,तभी आपकी वृत्ति और प्रवृत्ति कुछ कर्म करने में लगेगी।" सुमति ने कटाक्ष और हँसी में कहा।

सुमति को, मजाक का परिणाम आगे चलकर क्या होगा, इसकी कोई कल्पना नहीं थी। यदि वह यह जानती तो उक्त वाक्योद्गार के पूर्व सात बार सोच लेती।

इस पर भी मुकुन्द ने निःसंकोच कहा—"जिस दिन आप मुझे कार्योन्मुखता लाने का उपाय बताएँगी, उस दिन मैं आपका सचमुच आभारी हूँगा। प्रस्तुत परिस्थिति के प्रति मेरा दुर्लक्ष हो, ऐसी बात नहीं। मैं केवल हवा में ही उछल रहा हूँ, ऐसा भी नहीं। मेरा अवलोकन और अध्ययन अविरल जारी है। लेकिन मेरी दृष्टि को स्वाभाविक मार्ग अब तक नहीं मिला है। अनेक मनुष्य अनेक मत और विचार प्रदर्शित करते हैं, लेकिन अपने लिए 'स्वधर्म' नाम की कोई चीज है भी? उस स्वधर्म को मैं अब तक नहीं समझ सका। कुछ दिन पूर्व ही मैं यात्रा करके और हिमालय देखकर यहाँ आया हूँ। वहाँ का भव्य राजैश्वर्य देखकर मुझे ऐसा हो गया कि इस दुनिया में न आऊँ। वहीं रहकर अन्तःकरण की शुद्धि करता रहूँ। परन्तु, अपने मित्र पर मेरे खो जाने का आरोप न आए, इसलिए मैंने अपने मन को मनाया और यहाँ लौट आया हूँ। लेकिन वह कल्पना, वह इच्छा अब तक मेरे मन से मिटी नहीं। मुझे पेट भरने की कोई चिन्ता नहीं, पैतृक सम्पत्ति होने से मैं बेफिक्र हूँ, ऐसी भी बात नहीं। सच पूछें तो दौलत का विचार भी मन में नहीं आता। मुझे स्वाभाविक रूप से लगता है कि पेट भरने की परेशानी तो होगी नहीं। बाह्य उपाधि का विचार मुझे स्पर्श नहीं करता। आजकल की परिस्थिति का, मैंने अपने इस प्रवास में, सूक्ष्म अवलोकन किया तभी मुझे लगा कि कुछ करना ही चाहिए। किन्तु, मार्गदर्शक ज्योति मुझे न मिले, तब तक कोई हलचल करना मेरे लिए संभव नहीं।"

सुमति के मन में आज विनोद का उछाह था। वह व्यंग्य में बोली—"आप 'पुरुष' हैं। पुरुष विचार करता है अवश्य, लेकिन उसकी अभिव्यक्ति

के लिए, प्रत्यक्ष बनाने के लिए उसे 'प्रकृति' से भी सहायता लेनी पड़ती है। मुकुन्द! मुझे लगता है, आप भी अपनी प्रकृति खोज लें। अपने आप ही आपको ज्योति के साथ प्रकाश की प्राप्ति हो जाएगी।"

मुकुन्द केवल मुस्करा दिया।

२१

एक पारिवारिक प्रसंग

दीवाली निकट आ रही थी। लीलाधर का विचार इस समय ऐसा था कि मुकुन्द को साथ लेकर मजे से किसी रम्य स्थान में छुट्टियाँ बिताई जाएँ। लेकिन मुकुन्द ने गत गरमी की छुट्टियों में भी अपनी माता के दर्शन नहीं किये थे, सो इस समय मुकुन्द की स्थिति किसी बुभुक्षित-जैसी थी। उसे अपनी माता के पास जाने की ललक थी। इस प्रश्न का निराकरण विचित्र रूप में हुआ।

जगदीश का स्वास्थ्य शुरू से ही नरम-गरम रहा करता था, इसलिए रमा काकी को उसके विषय में काफी चिन्ता रहती थी। एक बार उसे गम्भीर बीमारी हो जाने के बाद से वे उसकी खूब देख-भाल करतीं, किन्तु उनकी मेहनत और व्यवस्था का कोई लाभ न हुआ और जगदीश पुनः बीमार हो गया। डाक्टरों ने सलाह दी कि जगदीश को वायु-परिवर्तन कराया जाए। इस सलाह के अनुसार उसे बाहर ले जाना पड़ा।

माधवराव रमा काकी के साथ जाने की स्थिति में नहीं थे। यद्यपि अदालत की छुट्टियाँ थीं तथापि उनके पास अन्य महत्वपूर्ण कामकाज आ पड़ा था और उनका राजनीति से भी न्यूनाधिक संबंध था। सो, रमा काकी के साथ लीलाधर का जाना निश्चित हुआ।

किन्तु, लीलाधर किसी की बीमारी या किसी का दुःख न देख सकता था।

सेवा करना, उसके बस के बाहर था। मृत्यु के प्रसंगों से वह सदा दूर ही भागता था। उसे सदैव सौख्य की पिपासा रहती। कोई नदी में डूब रहा हो, तो ज्वर में भी वह कूदकर उसे बचा लेता, लेकिन मरणासन्न मनुष्य की शैया के पास खड़े रहने की हिम्मत उसमें नहीं थी। बीमार के पास खड़ा रहना, उसे नापसन्द था। सो, जगदीश की इस बार की बीमारी में उसे साथ ही रहना पड़ेगा, यह जानकर उसे दुःख हुआ।

"मनुष्य क्यों बीमार पड़ते हैं, समझ में नहीं आता।" सुमति के पास वह अपने 'हिये की हाय' निकाल रहा था—"जगदीश की तो मानो बीमारी के साथ जन्मजात मित्रता है, महीने, दो महीने एक-न-एक बीमारी है ही। और ये लोग स्वयं बीमारी भुगतते हैं और स्वस्थ लोगों को अपना आधा कष्ट भुगतने पर मजबूर करते हैं।"

"इतना अधिक अनुदार होना, अच्छा नहीं।" सुमति ने उसे शान्त करते हुए कहा। "बीमारों को क्या कष्ट सहने का शौक है ?"

"तब वे अपने शरीर की चिन्ता क्यों नहीं करते ?" लीलाधर चिढ़कर बोला —"जगदीश कोई नन्हा बालक नहीं। लेकिन मैं काफी अर्से से देख रहा हूँ कि वह नियमित नहीं रहता। परहेज के नियमों का पालन नहीं करता।"

"तबीयत अच्छी रहने पर मनुष्य को ऐसा ही लगता है कि चाहे जो खाए-पीए, सब हजम हो जाएगा। अरे! पत्थर भी हजम हो जाएगा। लेकिन स्वास्थ्य बिगड़ने पर ही उसे भान होता है। और फिर जगदीश क्या अभी छोटा नहीं ! इस उम्र में उसे क्या ज्ञान हो सकता है ?"

"बीमार आदमी की सेवा करना आपको पसन्द है ?" लीलाधर ने प्रश्न किया।

"मेरा तो यह परम प्रिय व्यवसाय है। पाँच वर्ष पूर्व मेरा छोटा भाई क्षय के कारण मृत्युगत हुआ था। मैंने लगातार सात महीने उसकी सेवा की थी।"

"अरे बापरे ! मैं होता, तो मर जाता।" लीलाधर बोला। फिर कुछ क्षण वह शान्त रहा। बाद में धीरे से उसने कहा—"सचमुच ! जगदीश के आप-जैसी बहन होती तो वह जल्दी ही अच्छा हो जाता और हमारी माताजी को भी

राहत मिलती।"

इस समय सुमति के मन में अचानक किसी विचार के आने से उसका चेहरा लाल हो गया। लेकिन उस तरफ लीलाधर का ध्यान न था। वह अपनी ही धुन में मस्त था।

"कब जा रहे हैं, बाहर?" सुमति ने पूछा।

"कल ही निकलने वाले हैं। अच्छा, तो बैठिए। मैं जा रहा हूँ। लौटूँगा, तब फिर मिलूँगा।"

लीलाधर गया, फिर सुमति खिड़की के सींखचों पर गाल टिकाकर, काफी समय तक लीलाधर जिस दिशा में गया था, उस दिशा में देखती रही। लीलाधर के विषय में अपने मन में कोई भावना जगी है, ऐसा उसे लगा। किन्तु, लीलाधर तो उसके साथ अब तक मित्रता का व्यवहार रख रहा था।

कुछ देर बाद मुकुन्द उससे मिलने आया। अपने गाँव राजापुर चलने का निमंत्रण देने के लिए आज वह आया था। लेकिन सुमति ने शान्तिपूर्वक उस आमंत्रण को स्वीकार करने में अपने-आपको असमर्थ बतलाया।

"हैदराबाद गए एक वर्ष हो गया है, इस दीवाली पर तो मुझे जाना ही चाहिए। अन्यथा माता-पिता बुरा मान जाएँगे।" वह बोली।

यह सुनकर मुकुन्द निराश हुआ। उसने अपनी माँ को सुमति के संबंध में खूब खूब लिखा था। और माँ के कहने से ही वह सुमति को अपने घर ले जाना चाहता था। किन्तु सुमति आ नहीं सकेगी, यह जानकर वह निराश हो गया।

"कोई बात नहीं।" वह पुनः उत्साह से बोला—"आगामी गरमियों में आने का अवश्य ही निश्चय कीजिएगा।"

"अवश्य!" सुमति ने स्वीकृति दी। "आगामी गरमी में मैं अवश्य ही आपकी माताजी के दर्शन करने आऊँगी।"

लेकिन आज का वचन जाने किस परिस्थिति में सत्य होने वाला है, दोनों को इसकी कल्पना न थी!

लगभग एक वर्ष के बाद मुकुन्द अपनी माँ के दर्शन कर सका था। इस समय माँ की दशा देखकर उसके मन को बड़ा आघात लगा।

"तू इतनी ज्यादा बीमार है और मुझे खबर तक न दी?" अश्रुपूर्ण नेत्रों से वह अपनी माता से कहने लगा।

"इसमें खबर देने और शोक करने-जैसा क्या है? एक दिन तो यह शरीर जाने ही वाला है। खैर, जाने दे यह बात! तेरी सहेली तेरे साथ क्यों नहीं आई?"

मुकुन्द ने विवरण पेश किया। फिर झटपट सुमति का इतिहास संक्षेप में कह सुनाया और उसकी समझ, बुद्धि और सौजन्य की तारीफ की।

मुकुन्द आया है, यह जानते ही त्रिवेणी बाई का जी घबराया। उसने उतावली में पूना पत्र देकर वृन्दा को राजापुर भेज देने का लिख दिया और वृन्दा की सगाई के लिए अच्छे घर का लालच भी दिखाया। परन्तु वृन्दा के पिता ने—"श्रीमतीजी का प्रसवकाल समीप आ रहा है, सो वृन्दा को वहाँ भेजने से घर के काम में अड़चन आ जाएगी। अतः फिलहाल वृन्दा को नहीं भेजा जा सकता।"—यों लिखकर सगाई के सम्बन्ध में अधिक विवरण भेजने को कहा। यह पढ़कर बुढ़िया अति निराश हो गई!

मुकुन्द को इस खटपट की जानकारी न होने से वह अपने ही कार्य में मग्न था। उसका अधिकांश समय माता की सेवा में बीतता। यशोदा बाई अप्रत्यक्ष रूप से मुकुन्द की सगाई के सिलसिले में माँ से पूछती, परन्तु माँ की कड़ी धाक के कारण वह मुकुन्द की उपस्थिति में कुछ न कह पाती।

राजापुर आने के बाद दूसरे सप्ताह मुकुन्द को लीलाधर का पत्र मिला—"जगदीश यह संसार छोड़कर चला गया है। मृत्यु देखने का यह प्रथम अवसर था, और मैं चाहूँगा कि यह अन्तिम अवसर बने। माँ के रुदन का क्या वर्णन करूँ? मृत्यु से अधिक यही दुःखद और आघातकारक लगता है। घर में इस समय कोई नहीं है। मैं माँ को कैसे समझाऊँ, सुमति रहती, तो ठीक था।"

मुकुन्द ने तुरन्त ही शोक प्रकट करते हुए पत्र लिखा। सुमति को भी पत्र

लिखकर यह समाचार दे दिया। और सान्त्वना का एक पत्र लीलाधर को लिखने की सूचना भी सुमति को दे दी।

उस दिन सुमति एक नई दुनिया में विहार कर रही थी। उसने सान्त्वना-प्रेरक जो पत्र लीलाधर को लिखा था, उसका उत्तर लीलाधर की ओर से आया था। पत्र था तो छोटा, लेकिन उसने दस बार उसका पारायण किया।

लोनावला,
३-११-'२१

प्रिय सुमति,

तुम्हारा आश्वासन-पत्र मिला। उससे मेरे मन को बड़ी शान्ति मिली। इतना ही नहीं, वरन पत्र पढ़कर सुनाने पर माताजी को भी सान्त्वना मिली है। बम्बई लौटने पर परिचय करा देने की उन्होंने इच्छा प्रदर्शित की है। हम यथा-समय पुनः मिलेंगे, ऐसी आशा है।

तुम्हारा शुभचिंतक,
लीलाधर।

सुमति ने कालेज के अपने मित्रों की जानकारी अपने पिताजी को दी थी। उसके स्वभाव में गुप्त कुछ भी नहीं था। उसके माँ-बाप भी सुमति के स्वभाव को बखूबी जानते थे, सो दोनों को ही सुमति के विषय में चिन्ता नहीं थी। उक्त पत्र सुमति ने अपने पिताजी को दिखलाया था। इससे उन्हें संतोष हुआ और सुमति को लीलाधर के घर जाने की अनुमति भी दे दी।

आशा के अनेक महल रचते हुए सुमति ने बम्बई में प्रवेश किया।

रमा काकी और सुमति का प्रथम परिचय शुभ मुहूर्त में हुआ होगा, ऐसा लगता है। क्योंकि दोनों परस्पर आकर्षित हो गई थीं।

कालिज की लड़कियों के बारे में रमा काकी का अभिप्राय अच्छा नहीं था। कालिज की छोकरी फक्कड़ बनकर घूमती है, काम से जी चुराती है, बड़ों का सम्मान नहीं करती, और उसे अपनी मातृ-भाषा भी शुद्ध बोलना नहीं आता—ऐसा वह मानती थीं। 'अपनी हेमलता को मैं कभी कालिज में भेजूँगी नहीं।'

ऐसा वे कहतीं। और हेमलता तुरन्त ही क्रुद्ध होकर हाथ-पैर पछाड़ने लगती। लीलाधर उसका पक्ष लेकर अपढ़ स्त्रियों के अनाड़ीपन की मजाक करता। ऐसा उपहास करते समय उसे भान न रहता कि वह अनजाने में अपनी माँ की भी टीका कर रहा है। परन्तु, रमा काकी ने जब से सुमति को देखा उनका पूर्वग्रह बहुत कुछ कम हो गया। सुमति शुद्ध खादी की सादी साड़ी पहने थी। उसके चेहरे पर पाउडर नहीं था। उसकी भाषा शुद्ध मराठी थी और 'बैठने' को कहने पर वह कुर्सी पर न बैठकर नीचे गलीचे पर बैठ गई थी। रमा काकी को यह देखकर अच्छा लगा। मन-ही-मन वे सुमति पर खुश हो गईं। फिर अल्पाहार शुरू हुआ। उस समय हेमलता और सरला, खुले बालों से, एकदम भीतर आ गईं और—"माँ, माँ! बाल सँवारो!"—यों शोर मचाने लगीं तथा रमा काकी से लिपट गईं।

"तनिक धीरज रखो!" रमा काकी झल्ला उठीं। "मेहमान आए हैं, देखती नहीं?"

"लेकिन हमें टहलने जाने में देर हो रही है। आज चौपाटी पर हमें किला बनाना है। तारी और यमी पहले पहुँच जाएँगी तो वे हमसे पहले किला बना लेंगी।" हेमलता बोली।

"पहले बाँध लेंगी तो तेरा कौन नुकसान हो जाएगा? किला बनाकर तुझे कौन-सा बड़ा राज्य लेना है? अपने बाल सँवारना तो आता नहीं, चली है दिग्विजय करने।" रमा काकी चिढ़ गई थीं।

दोनों पंचम स्वर निकालने की तैयारी में थीं कि सुमति ने कहा—"मैं बाल सँवार दूँ तो? तेल और कंघी तो ले आओ।"

रमा काकी ना कर देतीं, पर हेमलता को प्रस्ताव पसन्द आ गया था। वह एकदम सब चीजें ले आई। और फिर सुमति के सामने बैठ गई। सुमति की कुशल केश-रचना देखकर दोनों लड़कियाँ और रमा काकी भी खुश-खुश हो गईं। मुक्त स्वभाव की रमा काकी को सुमति के विषय में विचित्र अपनापन लगा, और अब तो उसने सुमति के सामने मन का गुबार निकालना भी शुरू कर दिया

सुमति जाने को खड़ी हो गई, तब रमा काकी ने उसे हमेशा अपने यहाँ आने के लिए तीन-तीन बार कहा।

रमा काकी के सौजन्य से सुमति ने जरा भी लाभ न उठाया। वह अत्यधिक संयमी लड़की होने से थोड़े में ही संतोष और समाधान मान लेती। अपनी सहानुभूति का उसने कोई प्रदर्शन न किया।

११

विदेश-गमन

दिसम्बर महीना ज्यों-ज्यों समीप आता गया, त्यों-त्यों अहमदाबाद में काँग्रेस की तैयारियाँ जोर-शोर से चलने लगीं। देश-भर में जाग्रति और क्रान्ति की ज्वालाएँ फूट निकलीं। चन्द्रशेखर और लीलाधर दोनों काँग्रेस की बैठक में उपस्थित रहने के लिए इच्छुक थे।

सुमति राष्ट्रीय कालेज में पढ़ रही थी, सो, बम्बई में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन में वह यथाशक्ति भाग ले रही थी। निर्मला अहमदाबाद जानेवाली थी, उसने सुमति को अपने साथ आने को कहा, परन्तु सुमति को वहाँ जाने-आने और रहने आदि के खर्च की सुविधा नहीं थी, इसलिए उसने निर्मला के आग्रह को सविनय अस्वीकार किया।

"खर्च की चिन्ता क्यों करती है? तू और मैं अलग नहीं।" निर्मला ने सुमति की कठिनाई को सुलझा दिया। किन्तु सुमति ने अहमदाबाद न जाने का अपना निर्णय नहीं बदला।

काँग्रेस का अधिवेशन समाप्त हुआ। समूचे देश में सत्याग्रह की भेरी बज उठी। लेकिन चौरी-चौरा की घटना से देश दहल गया और अन्त में पुनः शान्ति स्थापित हो गई। देश में ज्वार आता था और जिस वेग से वह आता

था, उससे चार गुना वेग से उतर जाता था। आखिरकार मार्च की १० वीं तारीख को महात्माजी कृष्णमंदिरवासी बने और पूरे देश में सर्वत्र उदास शान्ति छा गई।

लगभग सभी राष्ट्रीय नेता जेल में बन्द हो गए थे। बाहर बचे लोग कच्चे थे। कोई भी कसौटी पर खरा उतरता न था, फिर विद्यार्थी क्या समझकर आगे बढ़ें? माधवराव की वकालत तो बन्द न हुई थी। उन्होंने अब भाषण देना भी बन्द कर दिया था। बच्चे की मृत्यु-वेला निकट आ जाने पर भी जो माधवराय घर की ओर यत्किंचित ध्यान न देते, वे अब शायद ही घर से बाहर निकलते। अपनी पुत्रियों की ओर भी उनका ध्यान गया। अब तो वे रमा काकी को साथ लेकर तीर्थयात्रा करने की बातें भी करने लगे।

दूसरी ओर, लीलाधर के मन में दबी बरसों पुरानी कल्पना, पुनः उभर आई। राष्ट्रीय आन्दोलन के बन्द होने पर राष्ट्रीय शिक्षा का विचार कौन करे? फिर, एक बार छोड़े गए कालेज में पुनः दाखिल होना उसे अच्छा न लगा। सो, उसने अपने पिता से कहा—"मैं बैरिस्टरी के लिए इंग्लैंड जाऊँ?"

अब माधवराव की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी वह अकेला ही था। अतएव, उसके लिए कुछ हजार रुपयों का खर्च करने में माधवराव को कोई आपत्ति नहीं थी। उन्होने तत्काल सम्मति दे दी। लेकिन, रमा काकी को यह बात पसन्द न आई। इसका एक कारण था, जगदीश का स्वर्गवास हो चुका था, सो लीलाधर उनकी नजरों से ओझल हो दूर परदेश चला जाए, यह बात उनके लिए असह्य थी। पर, बेचारी रमा काकी की कौन सुनता?

लीलाधर के विदेश जाने की तैयारी तेजी से होने लगी। सुमति को जब खबर मिली कि लीलाधर अब तीन वर्ष तक उसे न दीखेगा, तो उसके हृदय को दुःख हुआ। परन्तु, लीलाधर को जिसमें आनन्द है, उसमें मुझे भी आनन्दित होना ही चाहिए, यों मन को मनाकर ऊपर-ऊपर उसने अपनी हँसी बनाए रखी।

"वहाँ जाने के बाद मोह उपजाने वाले कई साधन उन्हें मिल जाएँगे। विदेश जाने पर विदेशी लड़कियों से विवाह भी जल्दी हो जाते हैं, ऐसा मैंने

सुना है। लीलाधर भी वहाँ कुछ ऐसा ही कर ले तो....तब तो शेष बची आशा भी चूर-चूर हो जाएगी। लेकिन जाने दूँ उसे। किसी भी व्यक्ति से कोई आशा रखने का मुझे क्या अधिकार है?" मन-ही-मन उमड़ने वाली इन तरंगों पर सुमति ने दीर्घ निश्वास लिया।

लीलाधर जिस दिन विदेश जाने वाला था, उस दिन उसने चन्द्रशेखर, मुकुन्द और सुमति को अपने यहाँ भोजन का निमंत्रण दिया था। मुकुन्द इससे पूर्व उसके घर एक बार आया था, वह भी दो वर्ष पूर्व जब रमा काकी जगदीश को स्थान-परिवर्तन के लिए ले जाने वाली थीं, तब। फलतः उन दो भाइयों के अतिरिक्त लीलाधर के घर के अन्य लोगों से परिचय करने का प्रसंग मुकुन्द को नहीं मिला था। वह झिझकता था, किन्तु सुमति को वहाँ देख, उसमें हिम्मत आ गई।

मात्र चन्द्रशेखर ही घरेलू आदमी की तरह बरत रहा था। लीलाधर को पोशाक, खान-पान, शिष्टाचार और अन्य कई विषयों की सूचनाएँ दे रहा था। बीच-बीच में विनोद भी करता था।

"संभलना भाई! वहाँ जाने के बाद कोई गोरी रमणी अपना मोह-जाल बिछाए तो उसमें फँसना मत।" चन्द्रशेखर आँख की पलक नचाकर, सविनोद बोला।

"गोरी रमणी ही क्यों?" लीलाधर ने हँसकर जवाब दिया—"हमारे देशी रत्नों की वहाँ कमी नहीं है।"

"स्वदेशी युवती से गाँठ बाँधनी हो तो वह अपनी जाति वाली नहीं ही होगी। परजाति की कोई सुन्दरी पसन्द करके ले आए, तो सच्चा बहादुर!"

सुमति को ये बातें असह्य हो रही थीं, परन्तु बीच में बोलने की हिम्मत न हुई। सो, मुकुन्द ने उसे मुक्ति दिलाई।

"यह सब सुनकर तो कोई यही कहे कि लीलाधर विद्या-प्राप्ति के लिए नहीं, वरन विवाह करने इंग्लैंड जा रहा है।" मुकुन्द ने गम्भीरतापूर्वक अपनी बात कही।

इस वाक्य के प्रहार और व्यंग्य ध्यान में आते ही लीलाधर और चन्द्र-

शेखर दोनों चुप हो गए थे, कि हेमलता, दरवाजा खोलकर, भोजन के लिए उन्हें बुलाने आई।

हेमलता ने आज रुआबदार कपड़े पहने थे। इंग्लैंड जाने वाले स्टीमर पर अपने भाई को बिदा करने उसे जाना था। अतः आज उसने योरोपीय लोगों में खपने लायक भड़कदार पोशाक पहनी थी। भाई को भोजन की सूचना देने के बाद उसने आगन्तुक अतिथियों पर उड़ती दृष्टि डाली। मेहमान अपनी प्रशंसा करें, वाह-वाह करें, ऐसा उसका हेतु था। अचानक उसकी नजर मुकुन्द पर पड़ी और वह रुक गई।

हेमलता ने सुमति और चन्द्रशेखर को कई बार देखा था। लेकिन मुकुन्द को देखने का यह प्रथम अवसर था। मुकुन्द की ओर अपलक देखती वह उसके सामने खड़ी रह गई।

लीलाधर ने कहा—"हेम! तुझे यह मेहमान नए लगते हैं? ये भी मेरे मित्र ही हैं।" फिर मुकुन्द की ओर मुड़कर कहा—"मुकुन्द! यह है मेरी छोटी बहन, हेमलता!"

मुकुन्द का छोटी बालिकाओं से पहले कभी परिचय नहीं हुआ था। हेमलता उसे बहुत ही चतुर और मधुर लगी। फिर भी, उसे अपने पास बुलाकर उससे मीठी बात करना मुकुन्द को नहीं सूझा। चन्द्रशेखर ने तो सदा की तरह आज भी अपनी जेब से चॉकलेट का पैकेट निकाला और हेम को बुलाने लगा "आइए हेमप्रभा देवीजी! अपना नैवेद्य ग्रहण कीजिए।"

लेकिन, हेमलता ने उधर ध्यान न दिया। इस समय उसने जो किया अकल्पनीय था। वह सीधी मुकुन्द के पास गई और अपने छोटे-छोटे हाथ मुकुन्द के गले में डालकर, उसने मुकुन्द के गाल का चुम्बन लिया—"कैसे सुन्दर हैं आप, मुझे आप भले लगते हैं।"

हेमलता के इस कृत्य से मुकुन्द लजा गया। सुमति और चन्द्रशेखर को आश्चर्य हुआ। सामने से रमा काकी आ रही थीं, वे द्वार में रुक गईं और जोर से बोलीं—"अरी हेमड़ी, तुझे लाज-शरम है भी? सिर पर चढ़ गई है तू तो।"

किन्तु लीलाधर तुरन्त ही बोला—"नाहक उस पर खीझती हैं। वह तो अभी बच्चा है। रीति-रिवाज को वह क्या जाने ?" फिर मुकुन्द कि ओर मुड़कर बोला—"हेम सौन्दर्योपासक है। सुन्दर वस्तु, फूल, बालक, मनुष्य, गायन जो भी सुन्दर हो, सब उसे भाता है। प्रदर्शनी देखना तो कभी नहीं चूकती। उसका कमरा देखेंगे तो जान जाएँगे कि वह कला का भंडार ही है। सभी सुन्दर चीजें—सीप, शंख और चित्र, उसने अपने कमरे में सजा दिए हैं; देखेंगे ?"

हेमलता का हाथ मुकुन्द ने अपने गले से दूर कर दिया था। लेकिन वह तो अभी उससे सिमटकर ही खड़ी थी। उसके नेत्र मुकुन्द के सुन्दर चेहरे पर टकटकी लगाए थे। उसकी निर्दोष सरलता का असर कुछ अंशों में मुकुन्द के हृदय पर भी अंकित हो गया। उसकी पीठ थपथपाते हुए मुकुन्द बोला—"ले जाएगी तू हमें अपना कमरा दिखाने ?"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं, चलिए।" हेम ने तुरन्त ही उत्तर दिया।

फिर सब लोग उसका कमरा देखने गए। सचमुच हेमलता का पदार्थ-संग्रहालय और रचना-कौशल देखकर मुकुन्द मुग्ध हो गया ! छोटी-सी लड़की में भी इस कदर सौन्दर्योपासना हो सकती है, मुकुन्द को इसकी कल्पना भी न थी।

भोजन के बाद सब लोग बन्दरगाह की ओर रवाना हो गए। लीलाधर की तरह अन्य कई परिचित विद्यार्थी इंग्लैंड जा रहे थे। सुमति की सहेली निर्मला भी उनमें थी।

निर्मला का पूरा परिवार इंग्लैंड जा रहा था। वेम्बले प्रदर्शन आगामी वर्ष भरने वाला था, और उसके पिता को वहाँ व्यावसायिक कार्य था। तदुपरात, उन्हें हीरों के व्यापार के संबंध में पेरिस और एम्स्टर्डम भी जाना था। शिक्षा ग्रहण करने के लिए निर्मला को इंग्लैंड छोड़कर वे आगे प्रवासार्थ जाने वाले थे।

लीलाधर और निर्मला एक ही स्टीमर में इंग्लैंड जाएँ और वहाँ एक साथ शिक्षा लें, यह विचार सुमति के मन में आते ही कुछ ईर्ष्या प्रकटी। परन्तु उसने

ईर्ष्या का निग्रह किया और दोनों को समान स्नेह से बिदा किया।

"मुझे लन्दन का मोह नहीं।" निर्मला बोली—"मुझे तो जर्मनी जाना पसन्द है। शिक्षा की दृष्टि से वह देश श्रेष्ठ है। देखूँ, क्या होता है।"

स्टीमर दूर-दूर जा रही थी, त्यों-त्यों सुमति स्निग्ध नेत्रों से डेक की ओर ताक रही थी। उसकी आँखों में आँसू डबडबा गए थे। रमा काकी तो चीख-कर रो रही थीं। चन्द्रशेखर ने तुरन्त ही सुमति की मनःस्थिति परख ली। और उसकी आँखों के अश्रु मुकुन्द को दिखलाकर धीरे से रहस्य को समझाया।

मुकुन्द को अचरज हुआ। लेकिन, उसने सोचा, चन्द्रशेखर का अनुमान जल्दबाजी का होगा। रमा काकी का दुःख देखकर ही सुमति के नेत्रों में स्वाभाविक रीति से अश्रु छलक आए हों, मुकुन्द ने यही तर्क किया।

"एक काम तो पूरा हुआ। चलो! मैं भी अब मुक्त हो गया।"—चन्द्रशेखर बोला।

"क्या मतलब?"—मुकुन्द ने पूछा।

"यही कि, अब मैं भी अपने धन्धे में लग जाऊँगा।"—चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया।

"कौन-सा धन्धा?"

"पैसे कमाने का, और कौन-सा?"

"यानी, तू पढ़ाई छोड़ देगा?"

"छोड़ ही दिया है। विद्या से पैसा ही श्रेष्ठ है, इस जगत में, समझा?"

"इंग्लैंड जाने की इच्छा हो आई है क्या?" सुमति ने हँसकर पूछा।

"पैसा आ जाए तो इंग्लैंड ही क्या सारी दुनिया घूम आऊँ।" चन्द्रशेखर ने फुदककर कहा—"बस, अपने को तो पैसा ही चाहिए!!!"

२३

पूर्व इतिहास

मुकुन्द की परीक्षा जिस दिन समाप्त हुई, उसी दिन शाम को जैसे ही वह अपने कमरे में आया कि तुरन्त उसे अपने पिताजी का पत्र मिला।

"तेरी माताजी का स्वास्थ्य अधिक बिगड़ा है, अतः चिकित्सा के लिए उसे बम्बई ले जाना पड़ेगा। कल यहाँ से निकलेंगे और गामदेवी पर स्थित 'शंकर-निवास' में ठहरेंगे।" ऐसा उस पत्र में सूचित किया गया था।

मुकुन्द को लगा कि बम्बई आने की योजना कई दिन पहले से बनाई गई होगी, किन्तु मेरे अध्ययन में विघ्न न आए इसलिए मेरी स्नेही और शुभाकांक्षी माँ ने मुझे अग्रिम सूचना नहीं दी होगी। धारणा के अनुसार माता-पिता दूसरे दिन आने वाले थे

दूसरे दिन वह बन्दर पर गया। माँ के साथ यशोदा बाई और त्रिवेणी-बाई भी थीं, यह उसने जाना। सब-के-सब शंकर निवास में आए और ब्लाक का कब्जा ले लिया। फिर तुरन्त ही सामान व्यवस्थित रख दिया गया और अन्य आवश्यक व्यवस्था भी कर दी गई। माँ खटिया पर सो रही थीं। मुकुन्द उनके पास गया और स्वास्थ्य की पूछताछ करने लगा।

माँ ने मुकुन्द की परीक्षा के बारे में पूछा। पर्चे संतोषजनक थे, यह सुन-कर माँ को हर्ष हुआ। अब मुकुन्द का निवास भी यहीं हो गया। माँ को अस्व-

ताल ले जाकर चिकित्सा करवाई गई। रोग का निदान किया गया। और यह निश्चित हुआ कि शल्य-क्रिया की आवश्यकता नहीं है। यह समाचार सुनने पर ही मुकुन्द का मन शान्त हो सका। औषधोपचार-संबंधी, डाक्टरों ने जो सलाह दी थी, तदनुसार सब दवाइयाँ खरीदी गईं।

एक रोज विश्वनाथ पंत यशोदा बाई और त्रिवेणी बाई को शहर बताने को ले गए। माँ के पास अकेला मुकुन्द ही बैठा था। कमरे में सम्पूर्ण शान्ति प्रसारित थी। मुकुन्द एक पुस्तक पढ़ रहा था। माँ सो रही है, ऐसी उसकी धारणा थी। यकायक उसने पुस्तक में से सिर उठाकर देखा तो माँ एकटक उसकी ओर ताक रही थी और उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे, ऐसा लगा। मुकुन्द घबराया। इसके पहले कभी उसने माँ को रोते न देखा था, आज उसे रोती देखकर उसे आश्चर्य हुआ।

एकदम दौड़कर वह माँ के पास पहुँचा और घुटनों के बल बैठ गया। माँ के कृश-दुबले हाथ अपने हाथों में लेकर चूमने लगा और अवरुद्ध कंठ से पूछा—"माँ! आपके जी को कोई कष्ट हो रहा है?"

माँ काफी समय तक कुछ बोल न पाई। कुछ देर बाद उन्होंने कहा—"कुछ नहीं, बेटा! यह तो मुझे बहुत पुरानी एक बात याद आ गई थी।"

मुकुन्द की दृष्टि की आड़ में भूतकाल का पर्दा पड़ा था। सो उसकी कुछ समझ में न आया।

माँ ने आगे कहा—"तेरी उम्र अब इक्कीस बरस की हो गई है। अब तू समझदार बन गया है, फिर भी मेरे मन तो तू अब भी छोटा बालक ही है। कुछ स्वार्थ और कुछ भय के कारण मैं आज तक कई बातें तुझसे छिपाकर रखती थी। लेकिन अब मुझे अपनी देह का भरोसा नहीं, अतः लगता है, मन की सारी बातें तुझसे कह दूँ।"

मुकुन्द असमंजस में पड़ गया। उसने रवीन्द्रनाथ ठाकुर का 'गोरा' नामक उपन्यास पढ़ा था। गोरा की तरह मेरे जन्म की कोई गूढ़ बात गुप्त रही होगी क्या? उसके मन में सहज सन्देह हुआ।

वह बोला—"आप कौन-सी बात कहना चाहती हैं, मेरी समझ में नहीं आया। परन्तु आप जो भी कहेंगी, मैं खुशी-खुशी सुनूँगा, इसमें सन्देह नहीं।"

माँ ने पानी माँगा। पानी पी लेने पर उसे कुछ आराम लगा। उसने पुनः बोलना आरम्भ किया।

"पैंतीस वर्ष पहले की यह बात है। तेरे नाना के संबंध में आज तक तुझे कुछ भी मालूम नहीं है। किन्तु, गाँव के बूढ़े अब भी यह जानते हैं। आज तक मैंने यह बात तेरे कानों तक नहीं आने दी। इसके दो कारण हैं, एक तो उस दुःखद प्रसंग की याद मेरे लिए असह्य है, और दूसरे, तेरे बारे में मेरे मन में सदा एक भय रहा करता है।

"बेटा! तेरे जन्म से पहले का इतिहास कितना बड़ा है, तू नहीं जानता। आज मैं तुझे देखती हूँ, तब तेरे बड़े मामा की याद आती है। तू बिल्कुल उनके जैसा ही लगता है। वे भी ठीक पच्चीस वर्ष के ही थे। उन्हें अधिक आयु नहीं मिली थी, या यों कहो कि उन्होंने स्वयमेव ही अपने आयुष्य की होली जला दी थी!

"उनके पिता ने भी उन पर अपनी सारी आशाएँ केन्द्रित की थीं। लेकिन सब आशाएँ व्यर्थ गईं! असाध्य आशा की धुन में पिताजी ने उन्हें खो दिया।"

माँ सिसकियाँ भरने लगीं। मुकुन्द के हृदय को गहरा दुःख हुआ। परन्तु, पूरी हकीकत सुनने की उत्सुकता उसके मन में थी, सो वह स्वस्थ बनकर गंभीरतापूर्वक सुनने लगा।

अन्ततः माँ ने मन को संयमित किया और पूरी कथा कहने लगीं। मुकुन्द एकाग्र चित्त से सब सुनने लगा।

विक्रान्त का वर्णन करते-करते माँ का हृदय भर आया। उनका गुणगान करते हुए माँ को अजीब स्फूर्ति मिल रही थी। विक्रान्त का प्रेम, उनका धैर्य, उनकी सहृदयता, उनका शौर्य, बलिदान देने के लिए उनकी तत्परता—इन सबका वर्णन करते समय माँ तन्मय हो गई थीं।

"सचमुच ! विक्रान्त का हृदय कोमल था। दादा के विचार और मार्ग उन्हें बिल्कुल पसन्द न थे। वह विलायत गये, तब मैं बहुत छोटी थी। दादा उन्हें और अन्य लड़कों को समझाते रहते। क्रान्ति का मार्ग अपनाने के लिए उनके मन में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए वे भगीरथ प्रयत्न कर रहे थे। लेकिन मैं यह सब नहीं समझती थी। छोटे भाई इतने विचारशील नहीं थे। विक्रान्त विचारशील थे। फिर, उनका मन कोमल, अति कोमल था। बीमारों की सेवा करना उन्हें खूब भाता। हमारी पाली हुई एक कुतिया के पिल्ले के पैर पर एक बार गाड़ी का पहिया गुजरा था। पिल्ले की दशा देख वह खूब रोये। खाना-पीना भी उन्हें नहीं सूझता था। लगातार आठ दिन सेवा-टहल की, और जब पैर अच्छा हुआ तभी उनके मन को सन्तोष हुआ, तथा वे निश्चिंत हुए थे। ऐसे मृदु हृदय और दयावान थे वह ! परन्तु, अन्त में उनकी यह मृदुता ही उनके विनाश का कारण बन गई। दादा ने देखा कि सैकड़ों प्रयत्न करने पर भी विक्रान्त के मन पर प्रभाव नहीं पड़ता। तब उन्होंने एक युक्ति खोज निकाली। देश के अकालग्रस्त, रोगग्रस्त भाग में दादा उन्हें किसी-न-किसी बहाने भेजते। लेकिन कोमल हृदय विक्रान्त से दीन-हीन दुःखितों की दशा न देखी जाती। तब दादा उन पर क्रुद्ध होते। एक दिन वे बोले—'जरा देखो तो ! इस धन-धान्य सम्पन्न देश की प्रजा कैसी दरिद्र, कंगाल और ऋणी हो गई है ! इसके मूल में कौन है ? अँग्रेज !! हमारे शस्त्र छीन लिये, हमारी जागीरें छीन लीं, जमीनें जब्त कर लीं, व्यापार-धन्धे नष्ट कर दिए और अकाल और रोगों का निवारण नहीं करती ! उल्टे, वे हमारी इन आपत्तियों से लाभ उठाकर हमारे धर्म पर भी प्रहार करते हैं।' इस प्रकार रोज साँझ-सबेरे दादा उनके कान में विष डालते, इससे विक्रान्त का भावनाशील स्वभाव उग्र बन गया।

"परन्तु, मुझे तो आज भी विश्वास है कि भले ही उन्होंने क्रान्ति का पथ अपनाया था, किन्तु उन्हें इस मार्ग के औचित्य के संबंध में विश्वास न था। उनसे किसी का दुःख न देखा जाता था। इन दुःखों का निवारण करने का अन्य मार्ग उन्हें नहीं सूझता था, या यों कहो कि दादा ने उन्हें शान्तिपूर्वक

विचार करने का अवसर ही नहीं दिया। देश की दुर्दशा उन्हें खल रही थी। देश की दशा से वह दुःखी थे। जिस परिस्थिति का उपाय नहीं सूझता, और जो सहन भी नहीं हो सकता, उस जीवन का अन्त किए बिना अन्य चारा नहीं, ऐसा उन्हें लगा होगा। कई बार मैंने उन्हें नदी-तट पर बैठे, हथेली पर सिर धरे, आँसू बहाते देखा था। मुझे यह सब समझ में न आता था। मैं छोटी थी। मैं उन्हें अपने तौर पर थोड़ा-बहुत समझाने जाती, तब वे मुझे पास बिठा-कर कहते—'बेबी, ईश्वर का कितना उपकार है कि तू अभी छोटी है, नादान है। तू सदा ऐसी ही रहे!' उनका उस समय का अश्रु-व्याप्त करुण-रस-पूर्ण चेहरा आज भी मेरी आँखों से नहीं खिसकता। आज भी जब वह चेहरा मेरी दृष्टि के सम्मुख आ जाता है, तब मेरा हृदय दहल जाता है।"

माँ बहुत देर तक बोल न सकीं। परन्तु हर प्रकार से उन्होंने इस इति-हास को पूरा करने का दृढ़ संकल्प किया था।

"विक्रान्त विलायत गये। वहाँ भी उन्होंने अपने मधुर और मिलनसार स्वभाव के कारण कई मित्र बना लिये। एक बार वह शिकार पर गये थे, तब उन्होंने एक अमीर की सुन्दर लड़की को आफत से बचाया था। तदनन्तर वह लड़की विक्रान्त के प्रेम में पड़ गई। उनके लिए वह अपना धर्म, जाति, देश—सब-कुछ छोड़ने को तत्पर थी। हमारी माँ बचपन में ही मर गई थीं, इसलिए विक्रान्त को मातृ-सुख लगभग मिला ही नहीं था, ऐसा कह सकते हैं। और, उन पर स्नेह करनेवालेकिस व्यक्ति—विशेषतः स्त्री की उन्हें आवश्य-कता थी। विलायत से वह मुझे कई पत्र लिखते थे। मैं छोटी थी, फिर भी वह मुझे बड़ी ही मानते थे और अपने मन के कई विचार वह मुझे लिखते थे।

"उन पत्रों से, उनके मन की स्थिति कैसी थी, स्पष्ट हो जाता था। उस प्रेयसी का उनके प्रति अगाध प्रेम और सर्वस्व समर्पण करने की तत्परता के कारण अन्ततः उन्होंने उसके प्रेम को स्वीकार किया। परन्तु, यहाँ उनका कर्तव्य उन्हें खींच रहा था। कुछ दिन उन्होंने इस उधेड़बुन में बिताये। लेकिन, आखिर में कड़ा हृदय करके उन्होंने अपनी प्रेयसी को सच्ची बात बता दी। उससे क्षमा-याचना कर अपना पीछा छोड़ने की विनती की। फिर

भी उस प्रेयसी का प्यार ऐसा था कि वह विक्रान्त के ध्येय में, कार्य में सहभागी बनने को तैयार हो गई। पुनः विक्रान्त का सहृदय स्वभाव बीच में आया। अपने खातिर उसका जीवन धूल में मिले, उसके जीवन को हानि पहुँचे, यह उन्हें न रुचा। फलतः वे अपनी प्रेयसी को सूचना दिए बिना ही वहाँ से भाग-कर स्वदेश के लिए चल पड़े। उनका देहावसान होने पर ही उनकी प्रेयसी को समाचार दिया गया था।"

माँ के मुख से अपने वृद्ध नाना का—उनके शूरवीर, साहसी और त्यागी स्वभाव का, अपने सभी मामा का—उनकी पितृ-निष्ठा, जाति-प्रेम, देश-प्रेम, शौर्य और निस्सीम स्वार्थ त्याग का समग्र इतिहास सुनकर मुकुन्द मुग्ध रह गया।

उसकी आँखों के सामने एक नया जगत उपस्थित हो गया। ध्येय के लिए आत्माहुति देने वाले अपने मामा के प्रति उसके दिल में पूज्य भावना उमड़ पड़ी थी।

माँ उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखती रहीं। कुछ देर बाद उन्होंने गम्भीरतापूर्वक अपने हृदय की अंतरंग बातें कहना शुरू कीं।

"मुकुन्द, यह सारी कथा आज तक तेरे कान में नहीं पड़ने दी। उसका यदि कोई कारण है तो वह मेरा स्वार्थ है। मरते समय तेरे नाना ने जो आशी-र्वादात्मक वरदान मुझे दिया था, वह मुझे कँपा रहा था। ननिहाल का खून तुझमें खौल उठे और तू भी उसी मार्ग का अनुसरण करे तो? तो मेरी क्या स्थिति हो जाती?

"रूप-गुण में तू अपने बड़े मामा पर गया है। इसीलिए मुझे अधिक अस्वस्थता और चिन्ता लगी रहती थी। मुझे अपने देश के लिए, धर्म के लिए, प्रेम न हो, ऐसी बात नहीं। उल्टे माँ-बाप, देव-गुरु का ऋण चुकाना जिस भाँति अनिवार्य है वैसे ही देश का ऋण भी चुकाना अनिवार्य है। इस ऋण को चुकाने के लिए व्यक्ति को जी जान से प्रयास करना चाहिए, ऐसी मेरी मान्यता है। परन्तु तेरे नाना का मार्ग मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं था। आज भी पसन्द नहीं है। उस मार्ग का अंगीकार करने से ध्येय की सिद्धि होती हो, ऐसा नहीं लगता। मुझे राजनीति की गुत्थियों का ज्ञान नहीं। मुझे इतना ही

चाहिए था कि तुझ-जैसे एक लड़के को यदि मैं सुसंस्कार देकर तैयार कर सकूँ, तो तेरी बुद्धि आगे चलकर अपने स्वभाव के अनुरूप योग्य मार्ग ढूँढ निकालेगी और वह स्वाभाविक श्रेष्ठ मार्ग एक बार तुझे मिल जाने पर वह तेरे नित्यक्रम का एक भाग बन जाएगा। फिर, ऐसा देश-सेवक बेटा देश को समर्पण कर दूँ, तो मेरा कार्य पूरा हुआ, ऐसा मैं मान लूँगी।

"तेरी प्राकृतिक प्रवृत्ति और विचार क्या है, यह जब तक मुझे मालूम न हुए, तब तक मैंने तेरे सम्मुख राजनीति और देशभक्ति की चर्चा नहीं की। राजनीति कोई सीखने की वस्तु नहीं। मनुष्य एक बार अपने को पहचान ले, उसे अपनी जिम्मेदारी का स्पष्ट भान हो जाए, तो रास्ता उसे स्पष्ट दीखता है, उसका उपाय भी वह खोज लेता है। अपने स्वभाव के अनुसार मैं अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का यथाशक्ति आचरण करती हूँ। अब तुझे स्पष्ट मार्ग पर लगा दूँ, फिर मेरा कार्य समाप्त हो जाएगा। मुझे खुद को तो कोई पराक्रम करने की इच्छा नहीं थी, और वैसा समय भी नहीं था। अवसर आने पर स्वाभाविक गुण कसौटी पर आते हैं और विकसित भी होते हैं। मुझे तो ईश्वर ने ऐसी परिस्थिति या अवसर नहीं दिया। तेरे सामने समय और अवसर का प्रवाह बह रहा है। तुझसे मुझे बड़ी आशा है।

"जो अवसर तेरे मामा को नहीं मिला, वह तुझे मिल सके, इसीलिए महात्मा गाँधीजी के आन्दोलन में भाग लेने के लिए मैंने तुझे प्रोत्साहन नहीं दिया। एक तो उस आन्दोलन में मुझे पूर्ण विश्वास न हुआ था और तू उतावली में न फँस जाए, ऐसा मुझे लगता था। तूने मेरा कहा माना, सो अच्छा हुआ। तेरी भीतरी शक्ति का पूरा समर्थन न मिले, तेरी अन्तरशक्ति इसके लिए तत्पर है, इसकी पूर्ण जानकारी न हो जाए, तब तक तू उतावली न करना, यही मैं कहना चाहती हूँ। इस मैदान में देर से आना, कोई बुरा नहीं, पर, एक बार कूद पड़ने पर इस पार या उस पार जाने के बाद ही छुट्टी मिलती है। फिर अपयश लेना अच्छा नहीं और पीछे हटना भी अच्छा नहीं।

"मेरे कहने का तात्पर्य तेरी समझ में आया?"

मुकुन्द ने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया। माँ ने फिर कहा—"तुझे इक्कीस

साल पूरे हो गए हैं। तू समझदार है। अब मैं तेरी व्यक्तिगत बातों में पड़ना नहीं चाहती। परन्तु मैं तुझसे एक बात पूछूँ? ऐतराज न हो तो कहना कि तुझे एकाकीपन खलता है कि नहीं? शायद मैं जीवित हूँ तब तक तुझे ऐसा न भी लगे! लेकिन मैं परलोक जाऊँ तो? तब तो तुझे एकाकीपन खलेगा ही न?"

"मुझे तो यही लगता है माँ! कि तेरे बिना यह जगत सूना है।"

"यानी तुझ पर माँ-जैसा प्रेम करने वाला कोई चाहिए। सच कहती हूँ न? वही तो मैं आज कहने वाली हूँ। अब मुझे अपने शरीर का भरोसा नहीं। डाक्टर चाहे जो कहे, मैं भाँप गई हूँ कि मैं अब अधिक न जी सकूँगी। तुझे आगे पढ़ना हो, तो तू पढ़ सकता है। लेकिन मुझे लगता है कि अब तू विवाह कर ले। इसके कई कारण हैं। एक तो आज या कल मेरी कमी पूरी हो सके। पत्नी ही उत्तम मित्र और माता बन सकती है। तू भावना से उत्तेजित होकर बहक न जाए, और उदासीन भी न हो जाए, इसलिए प्रत्येक प्रसंग में तेरी मैत्रिणी और सलाहकार के रूप तेरी पत्नी तेरे पास में रहनी चाहिए। उससे तुझे सदैव प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए। इसलिए तू अपने स्वभाव के अनुकूल किसी कन्या से ब्याह कर ले, यही इष्ट है। तेरे स्वभाव से मैंने जो निष्कर्ष निकाला है, उसे देखते हुए मैं सलाह दूँगी कि तुझे पत्नी की आवश्यकता है। हर मनुष्य को उसकी आवश्यकता हो, ऐसा नहीं है। लेकिन मुझे लगता है, कि तुझे यदि सेवा करनी हो तो वैसी राह दिखाने को और प्रत्यक्ष कार्य में भी वही तेरी प्रेरक बन सकती है।"

मुकुन्द को याद आया कि एक बार सुमति ने भी उसे पुरुष की उपमा देकर प्रकृति का नाम सुझाया था।

"यदि तू इसी समय ब्याह कर ले, तो तेरी पढ़ाई समाप्त होने तक तेरी पत्नी को साथ रख उचित संस्कार देकर तेरे योग्य बनाने की चेष्टा करूँगी।"

इस विश्वास के कारण मुकुन्द को सन्तोष हुआ। अब वह बोला—"माँ, अब तक मैं स्त्री-जाति की ओर उसी दृष्टि से देखता था, जिस दृष्टि से तेरी ओर देखता हूँ। व्याह का विचार कभी मेरे मन में नहीं आया। पर अब तेरा कहना है। एक बार सुमति बहन ने भी परोक्ष रीति से कहा था। तेरी दृष्टि

में विवाह योग्य है तो मेरी ना नहीं। मात्र यही बात है कि आज तक मैंने किसी भी स्त्री की ओर विकारी दृष्टि से नहीं देखा है, सो पत्नी की ओर भी विकारी दृष्टि से देखना मुश्किल होगा, ऐसा लगता है। उसे भी मैं तेरे समान मान लूँ तो ? वह तो मेरे लिए तेरी जगह ही होनी चाहिए। सत्य की शोध में मेरी सहचारिणी और मित्र के रूप में होनी चाहिए।"

"ऐसी कोई तेरे ध्यान में है ?"

"नहीं।"

"मैं ढूँढ़ लूँ तो चलेगा ?"

"माँ! तुझ पर मेरा पूर्ण विश्वास है। और फिर दो साल तक तू उसे अपने पास रखकर योग्य संस्कार तो देगी ही।"

"मुझे ऐसी आशा है। और किसी कन्या के बारे में मैं कुछ नहीं कह सकती। लेकिन एक लड़की मेरे ध्यान में है, उसने मेरे मन पर अच्छा प्रभाव डाला है। सो, उसे बहू के रूप में स्वीकार करना योग्य होगा।" फिर, माँ ने वृन्दा की हकीकत मुकुन्द से कह दी। "वह लड़की होशियार है। उसे मातृ-प्रेम नहीं मिला, यही त्रुटि है। परन्तु, प्रत्येक स्त्री में मातृ-प्रेम सुषुप्त अवस्था में होता ही है। उसे गति मिलनी चाहिए। वृन्दा मेरे पास आ जाए, फिर यह मेरा काम है।"

और भी कई बातें हुईं। मुकुन्द को माँ पर पूरा विश्वास था, इसलिए उसने लड़की देखने का आग्रह नहीं किया। सब-कुछ माता पर छोड़ दिया।

त्रिवेणी बाई बाहर से निवास-स्थान पर लौटी। तुरंत ही माँ से उसने सुना कि मुकुन्द वृन्दा को स्वीकार करने को तैयार है। यह सुनकर उसके आनन्द का पार न रहा। उसी रात वह पूना के लिए रवाना हो गई।

उसके बाद की विगत संक्षेप में कही जाए तो यह कि उक्त प्रसंग के बाद वृन्दा के पिता बम्बई आए और माँ से मिले। दोनों पक्षों के वचनबद्ध होने पर, दो सप्ताह बाद राजापुर में विवाह करने का निश्चय हुआ। माँ के आग्रह के कारण ब्याह के समय धार्मिक विधि के अतिरिक्त अन्य रूढ़ प्रथाओं को तिलांजलि देनी पड़ी। 'हुण्डा' तो माँ ने लिया नहीं। इस प्रकार वृन्दा के पिता को हर प्रकार से सन्तोष हुआ।

२४

माता का उपदेश

विवाह निश्चित हो जाने पर माँ ने पुनः एक बार मुकन्द को बुलाया, और उससे चर्चा करने लगी।

"विवाह अपने जीवन में एक महत्व की घटना है, यह तो तू मानता है?"

"हाँ।"

"पश्चिमी लोग इसे 'सन्धि' मानते हैं और हम इसे 'धर्मकृत्य' मानते हैं। हमारी विवाह-संस्था को अस्तित्व में लानेवाले ऋषि-मुनियों ने इसे पवित्र स्वरूप दिया था। आज हम उस महान तत्व को भूल गए हैं। पति और पत्नी एक दूसरे को भोग्य वस्तु की दृष्टि से देखते हैं। पुरुष अपने को मालिक और पत्नी को दौलत के रूप में समझता है। अज्ञान और मनोदौर्बल्य के कारण पत्नी भी अपने-आपको पति के पाँव की जूती समझकर जीवन बिताती है। फलस्वरूप अपने परिवार की व्यवस्था विकृत हो जाती है। विवाह द्वारा अर्थ और काम दोनों की सिद्धि मानी जाती है, जब कि उसमें धर्म को प्राधान्य दिया गया है। यह हम भूल जाते हैं। धर्म की प्रधानता भूलना उचित नहीं, अर्थ और काम धर्म की मर्यादा में होने चाहिए। हमारे शास्त्र यही कहते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में कहा है—

'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।'

श्रेष्ठ कार्य की सिद्धि होगी ?"

उसके बाद उसे सुमति की याद आई। जब से माँ बम्बई में आई, वह उसकी सेवा में लग गया और सुमति को भूल गया। अब जो सुमति की स्मृति आई तो, उसने सोचा कि क्यों न सुमति को यहाँ बुला लूँ और माँ से उसकी पहचान करा दूँ ? और गर्मियों की इन छुट्टियों में, यों भी, वह सुमति को राजापुर बुलाने ही वाला था।

उसने माँ से पूछा—"माँ ! तुझे सुमति की याद है ? उसके विषय में मैंने तुझे कई बार लिखा है।"

"याद क्यों नहीं, अच्छी तरह याद है। मैं तुझे कहने ही वाली थी कि यदि वह यहाँ हो तो, उसे बुला ले। जाता है उसे लेने ?"

"हाँ, माँ ! जाता हूँ।"

इतना कहकर मुकुन्द सुमति को लिवा लाने के लिए रवाना हो गया।

बहुत दिनों बाद मुकुन्द सुमति से मिला है। अतएव अपनी लापरवाही के लिए उसने खेद प्रकट किया। इसके बाद उसने माँ की बीमारी के बारे में कुछ आवश्यक बातें कीं और तत्पश्चात् दोनों बाहर निकल आए।

राह में चलते-चलते मुकुन्द ने कहा—"मैंने तुमसे आग्रह किया था कि राजापुर आओ। तब मेरी मंशा थी कि माँ से तुम्हारा परिचय हो जाए। अब तो तुम्हारा परिचय एक और नए प्राणी से होगा।"

"कौन है वह ?"

"मेरी भावी पत्नी।"

सुमति विस्मित होकर बोली—"क्या ? तुम्हारा ब्याह निश्चित हो गया ?"

मुकुन्द ने स्वीकार किया और संक्षेप में सारी बात बताई।

"अरे....रे ! वह तो मेरे मामा की लड़की है। मेरी बहन वृन्दा ! उसी से तुम्हारा ब्याह तय हुआ है ?"

मुकुन्द को भी आश्चर्य हुआ—"अच्छा ! वह तुम्हारी संबंधी है, सो भी बहन ! अच्छा हुआ।"

इतने में दोनों जन शंकर निवास आ पहुँचे और भीतर जाकर माँ के सामने खड़े हो गए।

सुमति ने माँ को प्रणाम किया। माँ ने उसे आशीष दी। कहने लगीं—"आज तक तुम्हारे बारे में सुनती आई हूँ। आज सामने देख रही हूँ। तुम मेरी कल्पना से अपरिचित नहीं निकली। तुम्हें देखते ही मन में प्यार आता है। स्वाभाविक, हार्दिक आनन्द हो रहा है, भला यह क्यों?"

"इसका कारण यह है कि अब ये मेरी साली होने वाली हैं।" मुकुन्द मुसकराया।

माँ ने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा। मुकुन्द ने बुझाकर कहा—"अभी ही मुझे सुमति ने बताया कि आपकी भावी बहू, इसके मामा की पुत्री, इसकी बहन है।"

"क्या यह सच है?" माँ ने पूछा।

"हाँ, सच है।"—सुमति ने सविनय कहा।

"अच्छा, तब तो बहुत अच्छा हुआ। किन्तु अब तो तुम्हें दुल्हे की बहन के रूप में, उसके साथ बारात में जाना है।"—हँसती हुई माँ बोली।

तत्पश्चात् माँ ने सुमति के बारे में उसी से पूछा—उसकी पढ़ाई-लिखाई, रुचिकर विषय आदि के बारे में परिचय पाया। इसके बाद कई बातें हुई और फिर वृन्दा की बात आई।

"तू अपने मामा की बेटी को तो अच्छी तरह जानती होगी। मैं भी उसे पहचानती हूँ। लेकिन समान उम्र की बहन अथवा सहेली एक दूसरी के अंतरंग को भली-भाँति निरख-परख सकती हैं। इसी से मैं तुझसे पूछती हूँ। मुकुन्द के लिए हमारी यह पसन्द उचित है या नहीं?"

अब तो सुमति पशोपेश में पड़ गई। वह भी तो वृन्दा के अन्तस्तल को नहीं जानती थी। इसके विपरीत सगाई की बात सुनकर उसे एक प्रकार का धक्का लगा था और वृन्दा के विषय में जो कुछ उसका अनुभव है, वह क्या बताया जा सकता है?

"रूप और शिक्षा की दृष्टि से यह जोड़ी खूब जँचेगी।"—आखिर कुछ

कहना तो चाहिए, यह सोचकर सुमति ने कह दिया।

"और क्या गुण तथा विचारों में मेल नहीं है?" माँ ने हँसकर पूछा।

"ऐसी बात नहीं है माँ!"—सुमति जरा सकपकाकर बोली—"मैं भी वृन्दा को अच्छी तरह नहीं जान पाई हूँ। हाँ, बचपन में मैं उसके साथ खेली हूँ। बाद में मैं अलग हो गई और वर्षों एक दूसरी से मिल न सकीं। पिछली गर्मियों में मैं एक सप्ताह उसके साथ रही हूँ। पर इस छोटी अवधि में उसके मानस को कैसे पढ़ पाती। इतना तो कहूँगी कि रूप, विद्या और कला में वह किसी लड़की से पीछे नहीं है।"

"इतना तो मैं भी कह सकती हूँ।" माँ ने जवाब दिया। "मुझे जो जाननी है, वह दूसरी ही बात है। मेरे साथ उसकी बात हुई है। तब मैंने उसमें जो विवेक-मर्यादा देखी, वह मुझे भा गई। अपने से बड़ों के सामने जिस मर्यादा को रखकर बोलना चाहिए, उसी को सुरक्षित रख वह बात कर रही थी। और तब बातचीत में उसका विनय और विवेक प्रकट हो रहा था। फिर भी मुझे यह प्रतीत हुआ कि वह असमय ही विचारों में प्रौढ़ बन गई है। उसके व्यवहार और वर्तन में शिष्टता और सभ्यता है। सेवा करते वह थकती नहीं। यह सब बातें मेरे ध्यान में हैं। मैं इससे अधिक न जान सकी, यही कारण रहा कि तुमसे पूछ रही थी। वह हमारे यहाँ हमेशा तो नहीं आती थी, और जब आती थी तब अधिक देर नहीं बैठती थी। तो, यह तो बता, उसकी रुचि के विषय कौन-से हैं?"

सुमति को उन काम-शृङ्गार संबंधी पुस्तकों की याद आई जो उसने वृन्दा की मेज के दराज में देखी थीं; किन्तु यह सचाई उसके मुख से, जबान पर आकर, बाहर प्रकट न हो सकी। उसने इतना ही कहा—"एक बार कहती थी, मुझे नाटक-सिनेमा पसन्द नहीं। घरेलू काम और अध्ययन, इन दोनों विषयों में रस और रुचि है।"

"अच्छा, यह कहा था उसने?" माँ ने साश्चर्य पूछा।

"हाँ!"

कुछ देर माँ विचार करती रहीं, फिर उन्होंने विषय बदल दिया।

सुमति जब अपने घर लौटने को खड़ी हुई, उससे पहले ही माँ ने उससे विशेष रूप से आग्रह किया कि वह उनके साथ राजापुर आए। लेकिन इस आग्रह-भरे निमन्त्रण से सुमति परेशानी में पड़ गई। क्योंकि, एक ओर माँ और मुकन्द थे तो दूसरी ओर मामा और उनका परिवार था। ऐसी स्थिति में वह क्या करे, यह वह सोचने लगी। उसने एक रास्ता खोज निकाला और दोनों दलों को खुश करने के लिए यह निश्चय किया कि माँ जिस शुभकार्य के लिए सबसे पहले सपरिवार राजापुर जाने वाली हैं, उस काम में साथ देने के लिए वह भी साथ-साथ जाएगी। बाद में जब मामा आ जाएँगे, तब उनके वहाँ चली जाएगी। सुमति ने इस आशय का एक खत लिखा और पूना भेज दिया। इसके बाद उसने भी माँ के साथ राजापुर प्रस्थान किया।

२५

विवाह

वृन्दा को जब मालूम हुआ होगा कि उसकी सगाई मुकुन्द से हुई है, तब उसकी क्या मनोदशा रही होगी, यह कहना कठिन है।

ब्याह के लिए तो वह बहुत कुछ आतुर थी ही, लेकिन जब यह प्रसंग प्रत्यक्ष आकर खड़ा हो गया तो वह गड़बड़ी में पड़ गई।

बहुत समय तक तो, उसे इस बात पर यकीन ही नहीं आया। वह स्वप्न तो नहीं देख रही है? ऐसा ही कुछ अनुभव उसे हुआ। लेकिन जब उसे अपनी सहेलियों के लिखे बधाई-पत्र प्राप्त होने लगे और सुमति का अभिनन्दन-पत्र भी आया, घर में ब्याह की तैयारियाँ होने लगीं, तब वह जैसे इस स्वप्न से जागी और सोच-विचार करने लगी।

मुकुन्द को उपदेश देने वाली थी—उसकी माँ। किन्तु वृन्दा का कोई नहीं था। मामी को उसके विवाह का न सुख था, न दुःख था। मामा सोचते थे कि चलो, वृन्दा को योग्य घर-वर मिल गया। उन्हें बड़ा सन्तोष था और पत्नी को जरा अच्छा लगे और उसके चेहरे पर चमक आए, इस हेतु से उन्होंने उसकी राय ली थी। इससे अधिक, दोनों में इस विवाह को लेकर कोई बातचीत नहीं हुई।

अन्ततया सब लोग राजापुर आ पहुँचे। वृन्दा की नानी का विचार था कि विवाह का बड़ा जलसा मनाया जाए। लेकिन माँ की इच्छा के आगे एक न चली। उसकी सौतेली माँ की मंशा को तरजीह दी गई। चलो, विवाह की सरपच्ची और भाग-दौड़ कम हुई, अतएव मामी भी खुश थी।

जब मामा, मामी और उनका परिवार राजापुर आ गया, तो सुमति भी उनके साथ रहने के लिए चली आई। उसका पहला काम वृन्दा को खोज निकालना था। वृन्दा खिड़की में बैठी कुछ सी रही थी। सुमति ने उसके निकट जाकर बधाई दी—"सचमुच वृन्दा! मुकुन्द-जैसा वर पाकर तू भाग्यवती बनी है। और तू भी उसकी शोभा बनेगी।"

वृन्दा ने केवल सिर हिला दिया। उसकी इच्छा थी कि सुमति मुकुन्द के बारे में कुछ बताए। लेकिन यह भाव प्रकट करने का उसका साहस न हुआ। इसके बाद सुमति ने मुकुन्द की माँ का बखान करना शुरू किया। उनका प्रेमपूर्ण स्वभाव, सौजन्य और अब तक का अपना अनुभव, सब सुमति ने सराहा। फिर धीमे से वृन्दा से पूछा—"यह तो बता तू इस संबंध से खुश है? तेरे मन में तनिक भी असन्तोष तो नहीं है?"

"मैं सदैव सुखी और सन्तुष्ट ही हूँ। और असन्तुष्ट और अप्रसन्न मैं कब होती हूँ भला?" वृन्दा ने सदा की तरह अपना जवाब दिया।

सुमति निराश हो गई। उसकी कल्पना थी कि विवाह की बात सुनकर वृन्दा हर्षित होगी, लेकिन वृन्दा के बोलने का जो तरीका था, वह उत्साहप्रद न था।

और इसके बाद बिना किसी विशेष धूमधाम के ब्याह सम्पन्न हो गया। धर्म-विधियों के अतिरिक्त, अन्य रूढ़ियाँ छोड़ दी गईं, फिर भी, गाँव के कई आदमियों ने इस उत्सव में भाग लिया था। मेहमानों को नारियल-जैसी कुछ अपरिहार्य, आवश्यक वस्तुएँ ही दी गई थीं।

वर और वधू एक दूसरे के सामने अस्वस्थ मनोदशा लिये खड़े थे। वर

प्रसन्नता से और वधू अप्रसन्नता से यों दोनों परवश हुए थे। दोनों ने एक दूसरे को इसके पूर्व देखा नहीं था। न इनके बड़ों को इस बात की आवश्यकता ही महसूस हुई थी कि पहले दोनों का परिचय तो हो जाए। और इन दोनों ने भी कोई विरोध नहीं किया। मुकुन्द यह माने बैठा था कि—मैंने विवाह किया, अतः मेरी माँ का मन खुश हुआ है। वृन्दा यह सोचती थी कि—मेरा व्याह हो जाने से, मेरी सौतेली माँ को सन्तोष हुआ है और यों विवाह में मैंने अपना बलिदान दिया है।

मुकुन्द के मनःचक्षुओं के सम्मुख विक्रान्त की सिद्धान्त-साधना बार-बार आ खड़ी होती। वृन्दा की दृष्टि में विजयेन्द्र के गले में पड़ा फाँसी का फन्दा तैरता रहता। अतएव जब अन्तरपट हटाया गया और वर-वधू के परस्पर एक दूसरे को वरमाला पहनाने का अवसर आया, तो कौन जाने क्यों, लेकिन वृन्दा की नजरें सबसे पहले मुकुन्द की ग्रीवा में पड़ीं। बाद में उसने वर को देखा और दोनों का प्रथम नेत्र-मिलन हुआ।

और मानो मुकुन्द के नेत्र वृन्दा से पूछ रहे थे—"तुम मेरे जीवन-पथ की ज्योतिर्मयी किरण बनोगी न?"

"आप मुझ पर सतत प्रेम की वृष्टि करेंगे न?" मानो यह वृन्दा का प्रश्न था।

माँ के मन में विचार था—"अब मैं मुकुन्द के विषय में निश्चिन्त हुई। अब वह कोई साहसिक कार्य, कोई अविचारी करतब न दिखलाएगा। यह सम्भव ही नहीं रहा।"

सुमति सोचती थी—"इस विवाह-द्वारा किस उद्देश्य की परिपूर्ति होगी?"

१६

नया अनुभव

प्रशान्त रमणीय चाँदनी रात में मुकुन्द तुलसी के चबूतरे पर बैठा मन-ही-मन प्रार्थना कर रहा था। उसके सिर पर पीपल के पत्ते सुमधुर, सुकोमल और सुमर्मर ध्वनि कर रहे थे। आकाश में पूर्ण चन्द्र मन्द मन्द मुसकरा रहा था। चारों ओर शान्ति का साम्राज्य छाया था।

इस समय घर का प्रत्येक प्राणी निद्राधीन हो गया था। विवाह की विधि संक्षेप में निबट गई थी। इस कारण सारे मेहमान समय पर अपने-अपने घर चले गए थे और विवाह-विधि के अन्त पर अपनी मानसिक थकान मिटाने के लिए परिवार के सदस्य भी यथासमय जल्दी-जल्दी शैयारूढ़ हो गए थे। लेकिन इस रात केवल दो ही प्राणी ऐसे थे जिन्हें नींद न आई थी। एक था मुकुन्द और दूसरी थी वृन्दा!

ऊपरी मंज़िल पर आकर मुकुन्द ने सोने का प्रयास किया। लेकिन उसे नींद न आई। अतएव वह पिछवाड़े के चौक में स्थित तुलसीक्यारे के पास आ बैठा।

एक अनजान व्यक्ति को उसने सदा के लिए अपना बना लिया है। वह जीवन में उसके निकट आ गया है—यह भावना उसके हृदय में अस्पष्ट संवेदना जाग्रत कर रही थी। बार-बार उसके मन में यह बात उठ रही थी कि

अब उसका और वृन्दा का जीवन एक हो गया है। और अब वह एकाकार होनेवाला है।

जब प्रथम नेत्र-मिलन हुआ था, तब मुकुन्द की दृष्टि वृन्दा की सुन्दरता और रूप-स्वरूप के बजाय, उसकी आँखों के भाव पर लगी थी। उसे वृन्दा की नजरों में कोई उद्‌बोधन नहीं मिला। फिर भी, इतना तो प्रतीत हुआ कि वह उत्कण्ठिता है, घबराई हुई है।

विवाह-विधि के समय जब पाणि-ग्रहण का प्रसंग आया, तब वृन्दा का हाथ काँप रहा था। लेकिन वह शायद भीतिवश अथवा उन अज्ञात भावनाओं के कारण, जो उसके मन में उछल रही थीं। इस विषय मे मुकुन्द कुछ तय नहीं कर पाया। सबसे पहले उसके मन में अनुकम्पा की भावना उठी। 'मुझे इस लड़की का हृदयाधार बनना चाहिए।' वह मन-ही-मन परमेश्वर से प्रार्थना कर रहा था कि उसे इतनी शक्ति दे कि वह अपना उत्तरदायित्व पूरा कर सके।

अब वृन्दा का भी नया जीवन शुरू हुआ।

ब्याह के बाद वह ससुराल ही रहने लगी। माँ ने उसे अपनी देख-रेख और निरीक्षण में लिया। माँ के मन में उसके लिए कोई भिन्न भाव न था। वह उसे अपनी बेटी की तरह मानती थी। वृन्दा को पहले तो यहाँ का जीवन पूना की अपेक्षा भिन्न प्रकार का प्रतीत हुआ। लेकिन दूसरी बातों की अपेक्षा माँ के सान्निध्य से उसे आश्वासन और सहारा मिला और इस सबब से सुख का बोध हुआ। माँ ने भी निश्चय कर लिया था कि वह वृन्दा का मन-ही-मन मुरझाने, जलने और बुझनेवाला स्वभाव बदल देगी। इससे वृन्दा के लिए यह कठिन हो गया कि वह माँ के सामने उदासीन अथवा गमगीन रहे।

यशोदा बाई पुराने विचारों की महिला थी, इसलिए उसे यह ठीक न लगता था कि माँ अपनी पतोहू को इतना करीब रखे। इस हेतु से वह प्रच्छन्न रूप में माँ से कहती—'बहू को लाड़ लड़ाओगी, तो वह सिर पर चढ़ जाएगी।' लेकिन माँ थीं कि ऐसी व्यर्थ की बातों पर तनिक भी ध्यान न देतीं। ससुराल आने पर वृन्दा के सामने एक बहुत बड़ी मुश्किल आकर खड़ी हुई। उसे चाय

का व्यसन था और यहाँ कोई चाय नहीं पीता था, यहाँ चाय का बहिष्कार था।

चाय के बिना वृन्दा को बड़ा कष्ट होने लगा, वह बेचैन रहने लगी। लेकिन अपना कोई कष्ट किसी से न कहने और उसे मन-ही-मन, भीतर-ही-भीतर दफना देने के स्वभाववश वह खामोश रही। लेकिन उसका मुख देखने पर, उसकी बेचैनी और कठिनाई छिपी न रही। सुबह में तो चाय के बिना उसे चक्कर आने लगे। कोई काम-काज न सूझता, कहीं मन न लगता, ऐसी हालत हो गई। इस दशा में उसके हाथों चूक होने लगी और ज्यों-ज्यों चूक बढ़ती गई त्यों-त्यों यशोदा बाई की बड़बड़ाहट भी बढ़ती गई। लेकिन माँ व्यवहारकुशल थीं, सामनेवाले के मन की मुरझाहट पहचाननेवाली थीं। उन्होंने परिस्थिति की कल्पना से जान लिया और एक दिन वृन्दा से पूछा—"तुझे चाय पीने की आदत है?"

बड़ी ना, ना और आनाकानी के बाद वृन्दा ने स्वीकार किया। सुनकर माँ को दुःख हुआ, लेकिन उन्होंने अपनी समझ का उपयोग किया और अकेली वृन्दा को चाय पीने की छूट दे दी। चाय मिल जाने से अब वृन्दा की थकान और बेचैनी दूर हो गई, किन्तु यशोदा बाई की कटकट शुरू हो गई—"आजकल की लड़कियों को तो देखो! चाय के बिना इनका सिरदर्द नहीं मिटता। हमारी तो इतनी उम्र हुई, परन्तु यह नहीं जानती की चाय का स्वाद कैसा होता है! और इतने बूढ़े हो जाने पर भी शरीर कितना मजबूत है।"

वृन्दा चुप रही। यशोदा बाई को उत्तर देना उसके लिए शक्य न था।

इसके बाद दूसरे दिन, तीसरे पहर वृन्दा माँ की सेवा में थी कि बीच में कोई चीज लेने के लिए वह रसोईघर में गई। वहाँ उसने जो दृश्य देखा, उससे एकदम स्तब्ध रह गई। यशोदा बाई चूल्हे के सामने बैठकर पतिली की उबलती हुई चाय को एक थाल में ढालकर गटागट पी रही थी। अचानक वृन्दा को रसोई में उपस्थित देखकर चौंक पड़ी और लज्जित हुई। फिर होठों में ही गुनगुनाने लगी—"क्या करूँ! तीन दिन से सिर दुख रहा है। कोई दवा न चली, इसलिए सोचा, जरा एकाध घूँट चाय ही क्यों न पी लूँ।"

वृन्दा कुछ न बोली। यह सब सुनकर उसके मन में कुतूहल जागा और

तभी यशोदा बाई उसके निकट आकर धीमी आवाज में कहने लगी—"लड़की, मैं चाय पी रही थी, यह बात अपनी सास को न बताना, हाँ!"

वृन्दा ने सिर हिलाकर सूचित किया कि नहीं कहेगी। इसके बाद यशोदा बाई वृन्दा के साथ-साथ, सदैव चाय का रसास्वादन करने लगीं। और इस बात की खबर माँ को न मिली, या यों कहिए, उन तक इसकी ध्वनि न पहुँचने दी गई।

२७

सुहागरात

मुकुन्द परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ और उसे ख्याति भी मिली। ऊँचे नम्बर पाने के कारण उसे स्कालरशिप मिली। शादी के बाद, कालिज खुलने में अभी दो-तीन सप्ताह की देर थी। इसलिए उसका बहुत-कुछ समय माँ की सेवा, अध्ययन और अभ्यास में व्यतीत होने लगा।

वह और वृन्दा एक ही घर में रह रहे थे, फिर भी दोनों में निकट परिचय न हुआ था। न वे आपस में बातचीत ही कर सके थे और न उनका गुप्त मिलन ही हुआ था। वृन्दा मन-ही-मन कलपती थी। मुकुन्द से उसे कई आशाएँ थीं। वे पूरी न हुईं। वह सोचती—क्या मुकुन्द उसके अनेक वर्षों से सहेजे मनोजगत् का सम्राट् नहीं?

वृन्दा को काव्य में रुचि थी। उसने यह अपेक्षा रखी थी कि मुकुन्द उसके अन्तरतम की लालसाओं को परितृप्त करेगा अथवा उन्हें जान लेने का प्रयत्न तो करेगा ही। ऐसी अनेक अभिलाषाएँ उसने रखी थीं, लेकिन मुकुन्द ने तो उसकी ओर कुतूहल से भी नहीं देखा।

वृन्दा ने कई प्रयत्न किए कि मुकुन्द का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो। प्रतिदिन नए-नए शृंगार करना, ऐसी मीठी बानी में बोलना कि मुकुन्द के कानों तक जाए और वह लुभाए। बार-बार उसकी नजरों-सामने से निकलना

और ऐसे कई प्रयोग उसने आजमा देखे। किन्तु, मुकुन्द अचल, अस्खलित रहा।

वृन्दा यह न जानती थी कि ब्याह के पूर्व माँ और मुकुन्द के मध्य क्या-क्या शर्तें तय हुई थीं। इसके अलावा, वह मुकुन्द के स्वभाव और रुचि के विषय में अनजान थी। इस कारण उसके लिए, मुकुन्द के उससे दूर-दूर रहने का कारण जानना कठिन हो गया। उसने कालिज में पढ़े-लिखे कई जवानों को देखा था। और उसने अपनी सहेलियों के मुख से सुना था कि किस प्रकार तरुण-तरुणी—पति-पत्नी पारस्परिक प्यार में डूबे रहते हैं, एक जगह रहने पर भी, पति-पत्नी के बीच किस प्रकार गुप्त पत्र-व्यवहार होता है। रस और रास के आयोजन, सिनेमा देखना, सैर पर जाना और ऐसी ही कई चर्चाएँ उसके कानों तक आई थीं, जिन्होंने उसके मन में सुख की कई कल्पनाएँ जगा दी थीं। लेकिन कुछ न हुआ! उसकी निराशा का पार न रहा। वह बेचैन हो गई।

वृन्दा अंतःकरण से माँ की सेवा करती। उसके आने से पहले यह काम मुकुन्द करता था। परन्तु जब वह ससुराल आई तो इस सेवा का अधिकार उसका है, यह मानकर मुकुन्द उसकी राह से हट गया। फिर भी, दिन का अधिकांश समय वह माँ के पास बिताता। कभी वह सुन्दर पुस्तक पढ़कर सुनाता, कभी चरखे पर सूत कातता हुआ विविध विषयों पर चर्चा करता। ऐसे समय, जब-जब वृन्दा वहाँ होती, उसे मुकुन्द की पसन्द-नापसन्द, रुचि-अरुचि और विचारों के बारे में परिचय पाने का अवसर मिलता। प्रथम तो मुकुन्द के विचार ही ऐसे थे कि वृन्दा को पसन्द न आएँ, उसी प्रकार उसके अध्ययन के विषय भी रसहीन थे। इन बातों का उस पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वह अधिकाधिक उदास होती गई।

कुछ दिनों यही स्थिति रही और फिर मुकुन्द के बम्बई लौटने का समय निकट आ गया। अब माँ विचारने लगीं, वृन्दा के मनोभाव उसके नारी-हृदय से अनजाने न रहे। जब तक मुकुन्द कुछ कमाने न लग जाए, तब तक व्यक्तिगत और व्यावहारिक दृष्टि से उसका अपनी पत्नी के साथ शहर में रहना अनुचित था। इस पर भी यदि वृन्दा अपने पति के साथ बम्बई जाने को उत्सुक

थी, तो इसमें आश्चर्य-जैसी कोई बात नहीं। माँ को खयाल आया कि अब वृन्दा को सारी वस्तुस्थिति समझा देनी चाहिए और मुकुन्द से उसका परिचय करा देना चाहिए।

इस हेतु, एक दिन उसने मुकुन्द से कहा—"अभी तक तेरा और वृन्दा का परिचय नहीं हुआ। उससे तू मिला नहीं—यह तो ठीक नहीं कहा जा सकता।"

मुकुन्द ने कहा—"माँ, मैं तुम्हारी आज्ञा की प्रतीक्षा में था।"

"तो आज ही शाम को जब उसका काम-काज पूरा हो जाए, तब उसके पास जा और उसके विचार जान ले।"

"ठीक।"—मुकुन्द ने कहा।

माँ बोली—"वह गाना-बाजना भी अच्छा जानती है। एक बार जब वह गा रही थी तो मेरे कान तक उसके मधुर स्वर आए थे। बजाती कैसा है, यह मैं नहीं जानती। लेकिन, ऊपरी मंजिल पर वह बजाएगी, सो मैं नीचे सुन सकूँगी।"

माँ की आज्ञा पाकर मुकुन्द वहाँ से उठ चला।

साँझ के दीए जलते ही, घर का सारा काम-काज पूराकर समेट लेना, माँ का नियम था। इस नियमानुसार रात के आठ-साढ़े आठ बजे तक घर का सारा कार्य सम्पन्न हो जाता। जब से वृन्दा आई वह यह सब काम निबटाकर ऊपरी मंजिल पर अपने कमरे में जाती और लिखने या पढ़ने में मन लगाती, तत्पश्चात् वह नीचे लौट आती और माँ के कमरे में माँ के पास सो जाती।

इस रात वह अपने कमरे में बैठी पुस्तक पढ़ रही थी कि दरवाजे पर हल्की दस्तक सुनी। यह सुनकर उसके सारे शरीर में बिजली दौड़ गई। दरवाजा खटखटाने वाला कौन हो सकता है? मुकुन्द ही होना चाहिए, उसने अनुमान लगाया। वह जिस घटना की अति आतुरतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी वह अब आ पहुँची है क्या? उसकी छाती धड़कने लगी और व्यग्रता बढ़ गई। चपल गति से वह द्वार तक गई और किवाड़ खोले। मुकुन्द खड़ा था। वह उसके मुख की ओर न देख सकी। देख लेती तो अच्छा होता, उसकी घबराहट

दूर हो जाती। मुकुन्द की हालत भी कुछ ऐसी ही थी। बम्बई में जब वह सुमति के साथ बैठा था और जो दशा हुई थी, वैसी ही स्थिति इस समय उसकी थी। उसने सहज ही पूछा—"अन्दर आ सकता हूँ?"

यह प्रश्न क्यों?—वृन्दा को विचित्र लगा। मेरे कमरे में आने के लिए इन्हें इजाजत लेनी पड़ती है; लेकिन उसने अपने को सँभाल लिया और आनन्द के आवेश में मधुर स्वर में बोली—"खुशी से आइए।"

भीतर आकर मुकुन्द मेज के पास एक कुर्सी पर बैठ गया। वृन्दा जरा दूर खड़ी रही। मुकुन्द ने उससे कहा—"खड़ी क्यों हो, यहाँ बैठ जाओ।"

बड़े संकोचपूर्वक वह अपनी कुर्सी पर आ बैठी। कुछ स्वस्थ होने पर उसने अपने नेत्र उठाकर ऊपर देखा। मुकुन्द उसकी ओर एकटक देख रहा था। उसका चेहरा निर्विकार था तथापि आँखों में रस और कौतूहल स्पष्ट झलक रहे थे। कुछ पल बीतने पर मुकुन्द ने पूछा—"तुम्हें यहाँ अच्छा लगता है?"

वृन्दा ने सोचा कि इस प्रश्न का उत्तर पहेली में दे, किन्तु मुकुन्द के चेहरे के स्थिर भाव देखकर उसने अपने मन को रोक लिया। जरा ठनक से बोली—"वक्त इस तरह निकल जाता है कि मालूम नहीं होता।"

"तुम शहर में रही हो इसलिए यह ग्राम्य जीवन जरा कम पसन्द आता होगा, ठीक है न?"

"बाहरी कष्टों से नहीं, लेकिन अपने ही कार्यों से मनुष्य अपना जीवन सुखमय या दुःखमय बना लेता है।"

"तुम्हारा यह जवाब सुनकर मैं प्रसन्न हूँ। सच बात तो यह है, मुझे चाहिए था कि तुमसे कुछ पहले परिचय कर लेता। लेकिन अब तो मेरे बम्बई लौटने का वक्त बहुत करीब आ गया है।"

यह सुनकर वृन्दा को इच्छा हुई कि बहुत, बहुत-कुछ कहे, परन्तु उसका मुँह न खुला।

फिर मुकुन्द कहने लगा—"कालिज में छुट्टियाँ होने पर मैं साल में दो बार यहाँ आता हूँ। तब तुम्हारा-मेरा परिचय बढ़ेगा। बम्बई जाने पर तुम मुझे पत्र लिखना। पत्रों में मनुष्य का मन दर्पण-जैसा स्वच्छ झलक आता है। मुझे

आशा है कि मैं कुछ समय बाद तुम्हें ठीक तरह से पहचान लूँगा और इस प्रकार तुम्हारी सच्ची सेवा करने की पात्रता मुझमें आ जाएगी।"

वृन्दा स्तब्ध रह गई। कौन तरुण पति होगा, जो नवोढ़ा, नवविवाहिता पत्नी से ऐसी विचित्र भाषा में बात करता होगा? और यह बात करनेवाला व्यक्ति मुकुन्द ही है या दूसरा, यह जानने के लिए उसने एक बार पुनः मुकुन्द की ओर जान-मानकर देखा। इसके बाद मुकुन्द ने वृन्दा की शाला, उसका विद्यार्थी जीवन और मनपसन्द विषय आदि के बारे में पूछा। यह सब सुनकर तो वृन्दा को भयंकर पीड़ा का बोध हुआ। वह हैरान रह गई। यद्यपि वार्तालाप चालू रखने के लिए ही प्रश्न किए जा रहे थे फिर भी उनमें खोज और जिज्ञासा का भाव ही अधिक था। यह सब जानने में वृन्दा को अधिक समय न लगा। और यहाँ शर्म की बात तो यह थी कि आज तक वह लोगों को बात काटने या उड़ाने के लिए अद्भुत चतुराई दिखाती आई थी, लेकिन आज मुकुन्द के सामने उसकी हार हो गई और उसे अपना अन्तरंग खोलकर दिखाना पड़ा। इसके बाद मुकुन्द मराठी और अंग्रेजी साहित्य की चर्चा करता रहा, उसने देखा कि इस विषय में वृन्दा का अभ्यास न कुछ के बराबर था। तदनन्तर मुकुन्द ने सामयिक घटनाओं पर बातचीत की, लेकिन वृन्दा तो सिवाय महात्मा गाँधी के, किसी अन्य नेता का नाम तक नहीं जानती थी। इससे मुकुन्द को बड़ा दुःख हुआ। वृन्दा का मन यहाँ अमुक्त नहीं है, बँधा-बँधा रहा है, यह तथ्य मुकुन्द की दृष्टि में आया। वृन्दा कभी समाचारपत्र नहीं पढ़ती थी और जीवन-चरित्र पढ़ते-पढ़ते तो उसका सिर दुखने लग जाता। राजनीति का तो उसने नाम भी न सुना था। फिर संगीत की बात चली। वृन्दा कुछ उत्साहित प्रतीत हुई। इस सारी बातचीत से मुकुन्द ने यह निष्कर्ष निकाला कि वृन्दा ने शास्त्रीय पद्धति से संगीत का अभ्यास नहीं किया है। उसे सिर्फ हल्के बाजारू गाने याद हैं, जो आजकल का एक सस्ता फैशन बन गया है। और इस फैशन को देख-सुनकर कुछ गाना सीखना चाहिए—यह मानकर उसने संगीत की शिक्षा पाई। तब अपनी तंत्री बजाकर कोई गाना सुनाने के लिए मुकुन्द ने वृन्दा से विनती की। इस विनती से वृन्दा हर्षित हुई

और उसने दिलरुबा हाथ में लिया। वह दिलरुबा के तारों पर अपनी कोमल उँगलियाँ चलाने लगी।

—"सखि, सजन बड़े मन चोर।"

वृन्दा ने यह गीत भली-भाँति गाकर सुनाया। गाना पूरा हुआ, लेकिन मुकुन्द ने उसकी प्रशंसा न की और न दूसरा गाना सुनाने का आग्रह ही किया। इधर-उधर की कुछ और बातों पर मुकुन्द ने हँसकर कहा—"अब तक तो मैं ही तुमसे प्रश्न करता रहा हूँ। अब तुम भी मुझसे कुछ पूछो। जिस प्रकार मैंने तुम्हारा परिचय पाने का प्रयत्न किया उस प्रकार तुम भी करो तो अच्छा है।"

अनन्त अपमान के अनुभव से वृन्दा का रोम-रोम धधकने लगा। क्या यही है उसकी सुहागरात? यद्यपि मुकुन्द मुक्तमन से उससे बातचीत कर रहा था, तथापि उसे यह प्रतीत होता था कि वह ऊपरी मन से व्यवहार निभा रहा है।

वृन्दा उदास और अधिक उदास हो गई।

कुछ देर जल-भुनकर, चिढ़कर वह बोली—"मुझे कुछ नहीं पूछना।"

"आज ही पूछ लो, ऐसी कोई जल्दी नहीं।"—मुकुन्द ने शान्ति से जवाब दिया। "अभी थोड़े दिन मैं यहीं रहनेवाला हूँ, बाद में जब चाहो पूछ लेना। अच्छा चलता हूँ, अब तुम्हें भी नींद आती होगी, इसलिए तुम्हारा अधिक समय लेना अच्छा नहीं।"

"क्या कहा तुमने?"—वृन्दा मन-ही-मन रो उठी। परन्तु, होठों तक एक शब्द न आया।

जब मुकुन्द माँ को प्रणाम करने गया तब वह अपने बिछौने पर लेटी जाग रही थी। पूछा—"क्यों मुकुन्द?"

"माँ, दो साल तक अपनी छाया में रखकर उसे शिक्षा देने की तुम्हारी कल्पना में बड़ी दूरदर्शिता थी, आज मैं इस बात को महसूस करता हूँ।"

मुकुन्द ने इतना ही कहा और वहाँ से चल दिया।

कुछ देर बाद वृन्दा माँ के कमरे में आई। माँ ने स्नेहपूर्वक कहा—"बेटी, आज काफी देर हो गई, इसलिए मेरी सेवा की जरूरत नहीं। जा, सो जा। तुझे नींद आती होगी।"

वृन्दा ने कुछ उत्तर न दिया और माँ की इच्छा न रहने पर भी उसने उसके पैर दबाना शुरू कर दिए। माँ ने पूछा—"बेटी, तू खुश तो है?"

"हाँ!"—वृन्दा रुद्ध कण्ठ से बोली।

"अभी तू जो गाना गा रही थी, मैंने यहाँ लेटे-लेटे सुना है। तेरा स्वर बहुत मधुर है और वाद्ययंत्र बजाने का अभ्यास भी अच्छा है।"

"आपको पसन्द आया, मुझे सन्तोष है।"—वृन्दा ने 'आप' शब्द पर जोर देते हुए कहा। वृन्दा की वाणी में सना हुआ अन्तस्वर और प्रहार माँ की नजरों से छिपा न रहा। वह बोली—"बहू! प्रथम मिलन के दिन हृदय को इस प्रकार दुःखी न होने दे। मुकुन्द का मन बड़ा कोमल है। बहुत-कुछ प्रसंग ऐसे होंगे जो तुझे पसन्द आएँ, न आएँ; लेकिन ज्यों-ज्यों वक्त गुजरेगा त्यों-त्यों वह तेरे करीब आता जाएगा। इस बात पर विश्वास रखना। अब देखना यही है कि तुम दोनों में से कौन पहले एक दूसरे में लीन होता है।"

बड़ी देर तक वृन्दा माँ के इस अन्तिम वाक्य पर विचार करती रही।

१८

खेत की सैर

प्रथम मिलन के बाद, वृन्दा और मुकुन्द दो-एक बार और मिले, लेकिन इन भेंटों से उसके उत्साह या आनन्द में कोई अभिवृद्धि नहीं हुई। उल्टे, जो कुछ उत्साह बचा था, वह भी निःशेष हो गया। उसका अपना हर्ष भी धीरे-धीरे डूबता गया। मुकुन्द वृन्दा से सदैव मुक्त-मन से बात करता। अपने विचारों के विषय में उसे बहुत-कुछ बताता और उसकी सम्मति लेने का प्रयत्न करता। इतना ही नहीं उसकी आकांक्षा और इच्छा भी जानने की कोशिश करता। लेकिन वह वृन्दा के हृदय-तट तक न पहुँच सका। फिर उसकी गहराई जानना तो दूर रहा। इसका कारण था—वृन्दा जो चाहती, उसे जो अपेक्षा थी, वह उसे मुकुन्द से नहीं मिली। मुकुन्द की जो बोली उसके मित्रों और संबंधियों को बहुत मधुर और आकर्षक प्रतीत होती, वह वृन्दा को निरी शुष्क लगती!

इन बातों के अतिरिक्त वृन्दा में एक नया परिवर्तन आया, उसके मन में अभिनव भय पैठ गया। यह भय उसमें कैसे पैदा हुआ, यह वह खुद भी न जान सकी। मुकुन्द के आने का वक्त होता कि तुरन्त ही वह पढ़ने की अपनी किताबें छिपा लेती। काम करते हुए यदि मुकुन्द की उपस्थिति का आभास मिल जाता, तो वह गलतियाँ कर बैठती। एक बार वह बरतन लिये जीने से

नीचे आ रही थी कि मुकुन्द की आवाज सुनाई दी और वह इतनी घबरा गई कि उसके हाथों के बरतन छूटकर बिखर गए। और सीढ़ियों पर लुढ़कते इन बरतनों की आवाज से बचे रहने के लिए उसने अपने कान बन्द कर लिये। वह इतनी डर गई थी, जैसे बिल्ली को सामने देखकर कबूतर आँखें बन्द कर लेता है।

तब उसका हृदय धड़कने लगा और उसे प्रतीत हुआ कि उसे मुकुन्द का भय है और जब यह बात भली-भाँति विदित हो गई तो उसे बहुत दुःख हुआ।

मुकुन्द इस हकीकत से अनजान था। उसका खयाल था कि कोई कारण है कि वृन्दा उससे नहीं बोलती और यह बात उसके मन में चुभती थी। उसने माँ से जाकर इस बात का बयान किया और माँ ने कहा—"चूँकि वृन्दा बचपन से ही दबकर रही है, सम्भव है कि इसी वजह से उसमें व्यावहारिकता नहीं आ पाई। मैंने सुमति से जो कुछ जाना है, उसे देखते हुए वृन्दा का यह व्यवहार विचित्र नहीं है। एक काम कर, तू उसे खुली हवा में अपने साथ सैर के लिए ले जा। उसका मन खुलेगा।"

मुकुन्द को सलाह पसन्द आई और वह वृन्दा को इसकी सूचना देने गया। उस समय वृन्दा रसोईघर में थी। मुकुन्द ने ज्योंही रसोईघर में कदम रखा उसे एक विचित्र दृश्य नजर आया—चूल्हे के निकट बैठी यशोदा बाई और वृन्दा बड़े मजे से चाय पी रही थीं। वृन्दा कप से पी रही थी और यशोदा बाई अपनी रिजर्व्ड थाली से। थाली को मुँह के पास लाकर, चाय पर फूँक मारकर यशोदा बाई बड़ी मौज में चाय का स्वाद ले रही थी। पास में तेज मसाले वाला नमकीन पदार्थ और तली हुई चीजें रखी थीं। दोनों महिलाओं का वार्ता-विषय यही पदार्थ था।

मुकुन्द के लिए यह दृश्य एकदम नया था। आज तक उसके यहाँ कोई चाय नहीं पीता था और तेल में तले हुए, मसाले वाले तेज नमकीन पदार्थ भी वर्जित थे। दोपहर का भोजन कुछ देर से और शाम का खाना कुछ जल्दी निपट जाता था। अतएव बीच के वक्त में नाश्ते की जरूरत नहीं पड़ती थी। उसने यह मान लिया कि चाय-पान की यह परम्परा वृन्दा ने शुरू की है।

लेकिन यशोदा बाई भी चाय का शिकार बन गई है, इस बात से उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। यशोदा बाई की ओर देखने पर उसे ज्ञात हुआ कि वे मिल का कपड़ा पहने हुई है। जब वह यहाँ आई थी तब तो खादी पहनती थी और बराबर पहन रही थी। ऐसा मालूम होता है, सन्दूक में सहेजकर रखे हुए मिल-वस्त्र उन्होंने फिर से धारण किए हैं। हाथ में सोने की चूड़ियाँ थीं और केशों की सज्जा में भी अभिनव विशिष्टता थी।

मुकुन्द ने एक मिनट भी दोनों को न देखा होगा कि उन्होंने उसे देख लिया। वृन्दा के हाथ से चाय का प्याला छूटकर टूट गया और यशोदा बाई भी घबरा गई।

अपने आकस्मिक प्रवेश से इन दोनों की यह दशा देखकर मुकुन्द को परेशानी हुई। उसने मानो कुछ न देखा हो इस प्रकार का बहाना बनाकर वृन्दा से कहा—"आज तुम मेरे साथ घूमने चलोगी। इससे तुम्हें खेतों के दृश्य देखने का मौका मिलेगा और घर से बाहर निकलने का यह अवसर भी अच्छा रहेगा।"

वृन्दा सिर झुकाए सुनती रही और सिर हिलाकर ही उसने स्वीकृति दी। उसकी स्वीकृति पाकर मुकुन्द वहाँ से चल दिया।

साँझ होते ही दोनों सैर के लिए निकल पड़े। कुछ ही दिन हुए पानी बरसने लगा था। इसीलिए चारों ओर हरियाली फैली हुई थी। आमों के झुरमुट से कोयल का कूजन सुनाई दे रहा था। साँझ होने के कारण पंछीगण अपने-अपने नीड़ों की ओर लौट रहे थे। मंद-मंद वायु परिपक्व कैरियों की गंध चारों ओर फैला रहा था। किसान अपने बैलों के साथ घरों को लौट रहे थे। मुकुन्द उनमें से कइयों को जानता था, इसलिए वे उससे 'राम-राम' करते थे और माँ की तबीयत का हाल पूछ लेते थे। जब-तब उनके प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मुकुन्द को राह में रुकना पड़ता। बड़े प्रेम से मुकुन्द उनका हाल-चाल पूछता। उनके बच्चों के बारे में प्रश्न करता और यथावश्यकता सहायता का आश्वासन देता।

और वृन्दा के मन में यह विचार था कि घर से निकली है तो घर में जो अशक्य है, वह बाहर शक्य होगा। उसके मन में यह कल्पना थी कि अपने हृदय में रमती रोमांस की उत्कट अभिलाषा को वह बाहर के सुरम्य वातावरण में साकार देख सकेगी। लेकिन जब उसने देखा कि मुकुन्द की सत्यसृष्टि उसकी रोमेंटिक दुनिया से एकदम दूर और अजीब है, तो उसे भारी निराशा हुई। उसकी आशाओं के तार-तार बिखर गए।

जब-जब मुकुन्द किसानों से बात करने में लग जाता, तब-तब वृन्दा मुँह चढ़ाकर एक ओर खड़ी हो जाती। यह बात मुकुन्द के ध्यान में आ गई और उसे यह पसन्द न आया। जब कोई किसान चला जाता और दोनों मिलकर साथ-साथ चलते तो एक बार मुकुन्द ने कह दिया—"तुम दूर क्यों खड़ी रहती हो? लोगों से बात क्यों नहीं करती? ये कोई पराए लोग नहीं हैं, अपने ही हैं।"

"इन किसानों से मेरे बोलने जैसा क्या है?" वृन्दा ने तनिक अरुचिकर भाव और तिरस्कार-पूर्वक कहा—"सब-के-सब अनाड़ी हैं, गन्दे भी कितने!"

यह सुनकर मुकुन्द को आश्चर्य और दुःख हुआ। वह बोला—"गरीबी और संस्कार के अभावों में पले और रात-दिन खेतों में काम करने वाले इन बेचारों की यदि यह दशा है तो इसमें कौन-सी बड़ी बात है। इस पर भी इतना कष्ट सहकर, श्रम करके, खुद आधे भूखे रहकर ये हमारे जैसे बिना मेहनत खाने वालों के पेट भरते हैं। यदि तुम इस बात पर विचार करोगी तो तुम्हें स्वयं पर दया आएगी और इन तथाकथित जंगली और अनाड़ियों की सेवा करने को तैयार हो जाओगी। अन्नदाता के हाथ का आखिरी कौर भी न छीन लेना चाहिए, इसी हेतु मैं तुमसे कहता हूँ कि मेहनत करने वाले इन लोगों को प्यार करना सीखो।"

मुकुन्द अपने अन्तर के आवेग से बोल रहा है, यह बोध होते ही वृन्दा ने अपना अमोघ अस्त्र चलाया—उसने तत्काल मौन धारण किया।

मुकुन्द किसानों की दुर्दशा के विषय में अपने विचार प्रकट कर रहा था तभी उसका प्रिय लेखक टाल्स्टाय उसकी नजरों के सामने खड़ा हो गया। अब तो मानों उसकी जिह्वा पर रस का ज्वार आ गया और उसने अपने विचार,

टाल्स्टाय के उपदेश वृन्दा को बताना आरम्भ किया। इस बीच दोनों जन खेत पारकर एक पगडंडी पर आ पहुँचे थे। इसी समय किसी किसान की आठ-नौ साल की एक लड़की दौड़ती हुई मुकुन्द के निकट आई और अपने दुबले-मैले हाथों से मुकुन्द का आस्तीन पकड़कर कहने लगी—"बड़े भैया, हमारे यहाँ चलिए न, मेरी माँ बहुत बीमार है।"

अचानक यदि सेवा का अवसर मिल जाए तो मुकुन्द की खुशी का क्या कहना। ऐसे कामों के लिए वह सदा तैयार है। तत्काल उत्तर दिया—"चल काशी, चल।"

तीनों चलने लगे। एक फर्लांग चलने पर काशी की झोपड़ी आ गई। वहाँ पास में ही लकड़ी के कुछ खूँटे जमीन में इधर-उधर गड़े थे और उनसे मृतःप्राय बैल बँधे थे। वे गोबर और घास के कूड़े में खड़े थे। झोपड़ी के आँगन में सूखे पत्ते, डालियाँ, कागज के टुकड़े और गन्दे चिथड़े इधर-उधर फैले थे। कोने में चक्की के दोनों पट रखे थे। एक ओर करेले और दूसरी ओर प्याज का ढेर था। झोपड़ी के थंबे से टिककर बैठे एक वृद्ध और दुर्बल व्यक्ति के सामने खड़े दो छोटे-नंगे बालक किसी चीज के लिए हठ कर रहे थे। बाईं ओर रसोईघर था। यह उस ओर से आने वाले धुएँ से मालूम पड़ता था। वहाँ कोई स्त्री पिटे गले से चिल्ला रही थी। मुकुन्द और वृन्दा ने काशी के साथ ज्योंही चबूतरे पर पैर रखा कि वृद्ध व्यक्ति खड़ा हो गया। और आगन्तुकों के बैठने के लिए अपना फटा-पुराना कम्बल बिछाने लगा। मुकुन्द ने उसे रोकते हुए कहा—"अरे बापुराव, हम क्या पराए आदमी हैं? यह तकलीफ क्यों? अच्छा, काशी की माँ को क्या हुआ है?"

"होगा क्या? रोज बुखार आता है। सारे दिन चिल्लाती रहती है। लगता है, इसे भूत-प्रेत की बाधा है।"

"छिः, छिः, भूत-वूत की बात न करो। ऐसा कुछ नहीं होता। कहाँ है वह?"

"ये उधर लेटी है। पास में उसकी बहन और रखमाई बैठी हैं।"

बूढ़ा उन्हें झोपड़ी के भीतरी भाग में ले गया। अन्दर घोर अन्धकार था

खिड़की का नाम भी न था। दरवाजे पर भी एक पुरानी रजाई लटका दी गई थी। इस प्रकार खुली हवा और प्रकाश का तिरस्कार किया गया था।

इस अँधेरे भाग में पैर रखते ही वृन्दा घबड़ाने लगी। एक गंदगी वहाँ उठ रही थी। उसे कुछ नजर न आ रहा था। सहसा उसके पैर में किसी चीज का स्पर्श हुआ। वह घबराकर चिल्ला उठी और मुकुन्द से लिपट गई। दर-असल तो यह प्याज का ढेर था, लेकिन वृन्दा को इस जीवन का जरा भी अनुभव न था इसलिए स्पर्शमात्र से ही वह चौंक उठी।

"घबराओ नहीं।"—मुकुन्द ने उसे थामकर रखते हुए कहा। "किसानों के घर में यदि चीजें यों इधर-उधर न बिखरी पड़ी हों तो फिर, घर की शोभा ही क्या ? अभी हमारे लोगों को इनके जीवन और व्यवहार के विषय में बहुत-कुछ जान लेना है।" मुकुन्द के इन स्नेह-भरे शब्दों से वृन्दा को धैर्य बँधा—लेकिन उससे भी अधिक मुकुन्द की देह का स्पर्श उसे सुखदायी लगा। लेकिन मुकुन्द को ऐसा कुछ अनुभव न हुआ। उसने सोचा कि वृन्दा किसानों के घरों से अजान है, इसीलिए यों घबरा गई है। उसने वृन्दा के हाथ में दबा हुआ अपना हाथ वैसा ही रहने दिया, यह सोचकर कि इस प्रकार उसे आश्वासन और धैर्य मिलेगा। इसके बाद मुकुन्द ने बापुराव से कहा—"दादा, बीमार आदमी को अँधेरी कोठरी में बन्द रखना ठीक नहीं। सेवंती बाई को बाहर की खुली हवा में लाओ तो देखूँ कि उन्हें क्या हुआ है और आवश्यक उपचार भी बताऊँ।"

इस पर अँधेरे में सेवंती बाई की सुश्रूषा करने वाली स्त्रियों के विरोधी शब्द मुकुन्द को सुनाई दिए—"सेवंती को बाहर की हवा लगेगी तो बुखार बढ़ जाएगा और सर्दी हो जाएगी।" लेकिन मुकुन्द ने अपनी हठ नहीं छोड़ी। इसलिए बड़ी सिर-पच्ची के बाद बीमार सेवंती बाहर लाई गई। बीच-बीच में वह शोर करती थी। मुकुन्द ने अपने हाथों बाहर की जगह साफ की और कम्बल बिछाया। सेवंती बाई को कम्बल पर लेटते ही, बाहरी हवा और रोशनी के कारण शान्ति मिली। उसने मुकुन्द की ओर देखकर कहा—"पानी ! पानी !"

तुरन्त उसे पानी पिलाया गया। अनुभवी डाक्टर की तरह मुकुन्द ने उसके

बुखार की जाँच की और इलाज भी किया। इसके बाद उसने बापुराव को कई सूचनाएँ दीं। इनमें खास सूचना सेवंती बाई को खुली जगह में रखने की थी। इस सूचना को अमल में लाने के लिए तीनों व्यक्तियों को लगभग आध घंटा बहस करनी पड़ी।

"अच्छा, चलता हूँ। अभी मैं दूध और दवाई भेजता हूँ।"—इतना कह-कर मुकुन्द वृन्दा के साथ चल दिया। इस समय सूर्य अस्ताचल की गोद में ढल गया था।

घर को लौटते, राह चलते मुकुन्द के मन में दरिद्रनारायण की दशा पर विविध विचार उठ रहे थे। इस समय वृन्दा निराशा का अनन्त दुःख भोग रही थी। वह सोच रही थी—'इनके मन में गरीबों के लिए जितनी लगन है उसकी आधी भी यदि मेरे लिए होती तो?' तब अचानक मुकुन्द ने पूछा—"अभी देखे इस दृश्य से जरा बताओ तुम्हारे मन पर क्या प्रभाव पड़ा है?"

वृन्दा इस प्रश्न का उत्तर न दे सकी। उसे यह कहने की इच्छा हो रही थी कि 'सेवंती बाई का मुँह काला था या गोरा, मुझे इसका भी पता नहीं। लेकिन तुम्हारा सुकोमल कर-स्पर्श मुझे बहुत सुखद लगा और उसका आनन्द मैं अभी भी ले रही हूँ।' लेकिन ऐसे शब्द उसके मुँह से होठों तक न आते थे।

एक दीर्घ निःश्वास लेकर मुकुन्द वृन्दा के साथ घर लौट आया।

१९

प्रयाण

अब मुकुन्द के बम्बई लौटने का दिन आ पहुँचा था। इस दिवस के आगमन से वृन्दा को बहुत दुःख हुआ। अभी उसके हृदय में यद्यपि मुकुन्द के लिए उत्कट प्रेम का उद्भव न हुआ था, तथापि मुकुन्द उसका है, यह गर्व-भाव उसे सान्त्वना दे रहा था। यद्यपि मुकुन्द उसके कल्पना-लोक के नायक की कोटि में नहीं आता था तथापि भविष्य में उसे यह पद प्राप्त होगा, ऐसी अभिलाषा और आशा वृन्दा के मन में थी। अतएव मुकुन्द के जाते ही उसे लगा कि उसके कल्पना-लोक का नायक अदृश्य हो गया है। इसीलिए वह दुःखी थी, किन्तु इसका क्या उपाय?

मुकुन्द ने उसे पत्र लिखने का आश्वासन दिया था। इस आश्वासन से वृन्दा के मन को शान्ति मिली। लेकिन जाते-जाते मुकुन्द वृन्दा से एक बात कहता ही गया—"माँ का ध्यान रखना" और यह कहते-कहते उसकी आँखों से आँसू बहने लगे थे—"अब मेरे स्थान पर तुम हो और स्त्री होने से तुम माँ की सेवा भली-भाँति कर सकोगी। जिसमें मैं तो तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता।"

मुकुन्द के प्रयाण-दिवस वृन्दा बड़ी भोर बाग में गई और वहाँ से बकुल के फूल चुन लाई। कमरे मे आकर उसने एक सुन्दर हार बनाया। उसने सोचा कि बम्बई प्रस्थान करने के पूर्व जब मुकुन्द उससे एकान्त में मिलेगा तब

वह उसे यह हार पहना देगी—और ऐसी ही मनोरम कल्पनाओं में वह विचरण कर रही थी। लेकिन उसके दुर्भाग्य से ऐसा कोई एकान्त उसे मिला नहीं। पूरे समय मुकुन्द माँ के पास ही बैठा रहा। बिदा की वेला आते ही वह अपने इष्टदेव और पूर्वजों को प्रणामकर जाने के लिए खड़ा हो गया। वृन्दा म्लान-मुख वहीं खड़ी रह गई। उसके मन की बात जानकर माँ ने कहा—"बेटा, रसोई से दही और चीनी की कटोरी भर ला, बाहर जाने से पहले मुकुन्द को मैं सदैव दही-चीनी खिलाती हूँ।" जब वृन्दा रसोई की ओर गई तो ऐसा ही कोई दूसरा बहाना निकालकर, माँ मुकुन्द को भी भीतर भेजना चाहती थी कि यशोदा बाई बीच में ही बोल उठी—"दही-चीनी की कटोरी तो मैं कब से यहाँ ले आई हूँ। वृन्दा के जाने की जरूरत नहीं। लो यह कटोरी।"

इस प्रकार मुकुन्द बम्बई के लिए रवाना हुआ और वृन्दा के मनोरथों का महल लड़खड़ाकर गिर पड़ा और उसकी गूँथी सुन्दर, सुगंधित पुष्पमाला यों ही रखी रही और अन्त में सूख गई।

सुमति का यह अन्तिम वर्ष था, इसलिए वह पढ़ाई में विशेष ध्यान देती थी। मुकुन्द के ब्याह के बाद तीसरे ही दिन उसने राजापुर छोड़ दिया था। उसके बाद उसे मुकुन्द का सिर्फ एक खत मिला था।

मुकुन्द बम्बई आते ही कालिज का 'फेलो' नियुक्त हुआ। चार-पाँच दिन बाद वह सुमति से मिला। पारस्परिक कुशल के बाद वृन्दा की बात चली। मुकुन्द का अनुभव जान लेने के लिए सुमति अति उत्सुक थी। और जब मुकुन्द के मुँह से वृन्दा के विषय में कुछ शब्द औपचारिक रूप में निकले तो सुमति को विस्मय हुआ। मुकुन्द के शब्दों में कटाक्ष था। वह वृन्दा से ऊबा प्रतीत होता था।

"मुझे तो ऐसा लगता है, तुम्हारी बहन किसी साधु-संन्यासी या मुनि की चेली है। अब तो मुझे अपने उत्तरदायित्व का भान होने लगा है।"

"क्या मतलब ? क्या वह तुमसे खुलकर बात नहीं करती ?"

"नहीं, अभी मैं उसके मनोलोक में प्रवेश न पा सका। मेरा खयाल है,

ज्यों-ज्यों परिचय बढ़ेगा, त्यों-त्यों स्नेह की वृद्धि भी होगी और हम एक दूसरे को पहचान सकेंगे। इसके उपरान्त राह बताने के लिए माँ तो है ही।"

सुमति को यह सब विचित्र प्रतीत हुआ। उसे शंका हुई कि यह सब कहने वाला व्यक्ति मुकुन्द ही है या कोई दूसरा। इसके बाद सुमति ने बड़ी युक्ति और चतुराई से मुकुन्द से सारी हकीकत जान ली। मुकुन्द की विवाहित जीवन की कल्पना, दम्पत्ति के संबंधों का विशिष्ट उद्देश्य, माँ का आश्वासन—ये सब जानकर सुमति के विस्मय की सीमा न रही। उसने पूछा—"लेकिन, क्या वृन्दा ये सब बातें जानती है?" उसके स्वर में शंका और विषाद था।

"मैंने उसे बहुत कुछ समझाने का प्रयत्न किया और अब माँ उसकी माता और गुरु के स्थान पर है। इसलिए वे उसे ठीक तरह समझाएँगी।"

सुमति सिर हिलाकर बोली—"मुझे तुम्हारे विचार विचित्र प्रतीत होते हैं। पत्नी को अपनी संगिनी, मंत्रिणी और परामर्शदात्री समझना ठीक है, परन्तु यह आदर्श कल्पना में जितना ऊँचा है, व्यवहार में उतना ही कठिन है। दूसरे, स्त्रियों को परम्परा में दासत्व के संस्कार मिलते रहे हैं इसलिए वे, चाहे कुछ पढ़ी-लिखी भी हों, पति की समानता में अपने को तुच्छ मानती हैं। वे पति की तुलना में अपने-आपको 'इन्फिरियारिटी कॉम्प्लेक्स' की दृष्टि से ही देखती हैं। यदि उन्हें सामाजिक सम्मान भी दिया जाएगा तो भी वे उसे पचा न सकेंगी। तुम जिस स्थिति की कल्पना करते हो वहाँ तक पहुँचने में उन्हें अभी बहुत समय लगेगा।"

"तो यह बताओ, शुरूआत किसे करनी चाहिए? कब और कहाँ से करनी चाहिए? क्योंकि योग्यता या अयोग्यता का प्रश्न बार-बार उठ खड़ा होगा।" —कहते मुकुन्द मुस्करा दिया।

"फिर भी वृन्दा के विषय में तुम इतने आदर्शवादी बनो, यह न चलेगा।" —सुमति ने कुछ बेढंगा जवाब दिया।

"स्त्री-जाति समान है, चाहे उनमें से एक वृन्दा ही क्यों न हो।"—मुकुन्द ने कहा—"मैं कोई अपवाद रखना नहीं चाहता। ईश्वर ने मुझे वृन्दा—स्त्री जाति की एक प्रतिनिधि स्त्री के रूप में दी है। मैं उसे इसी आदर-दृष्टि से

देखूँगा। वह मेरी गुलाम नहीं, मिल्कियत नहीं।"

सुमति को यह न सूझा कि मुकुन्द को कैसे समझाए। तभी वह बोला—"मेरा इतना ही कहना है कि तुम बीच-बीच में उसे पत्र लिखती रहो।"

इस समय तो सुमति ने यह बात स्वीकार कर ली। तदुपरान्त लीलाधर की बात चली। लीलाधर ने इन दोनों को अलग-अलग खत लिखे थे। दोनों ने परस्पर अपने-अपने पत्रों की बात चलाई।

उस सारे दिन सुमति को वृन्दा के विषय में विचार आते रहे और वह बहुत परेशान रही।

३०

कुछ यहाँ, कुछ वहाँ

महीने पर महीने बीतने लगे। सुमति इस समय अपने अध्ययन में डूबी थी, इसलिए मुकुन्द के लिए अध्ययन तथा अध्यापन के कार्य प्रस्तुत थे। उसने एम० ए० में दर्शन-शास्त्र का विषय लिया था। उसे बहुत कम समय मिलता। हफ्ते दो हफ्ते में वह सुमति से मिलने जाता। पखवाड़े में एक बार वह वृन्दा को एक लम्बा पत्र लिखा करता। उसके इन पत्रों के उत्तर भी नियमित रूप से उसे मिलते रहते। लेकिन इन उत्तरों में प्रमुखतया माँ के ही समाचार रहते। कभी-कभी वृन्दा गाँव के भी कुछ हाल लिख देती, लेकिन उसमें अपने विषय में इनी-गिनी ही पंक्तियाँ होतीं।

और वह लिखती भी क्या? अपने विषय में कुछ लिखने-परखने या आत्म-निरीक्षण करने का उसे अभ्यास ही नहीं था। उसने आज तक मनन करने योग्य साहित्य नहीं पढ़ा था और इसके विपरीत, मुकुन्द ने, उसके स्त्रीत्व के अनुदान की अभिलाषा और माँग भी न रखी थी। इस परिस्थिति में उसे कुछ सूझ नहीं पड़ता था कि आखिर वह क्या लिखे? लम्बे लम्बे पत्र—हृदयस्पर्शी प्रेम-पत्र वह कैसे लिखती?

बकुल की माला का उल्लेख करने को उसकी इच्छा होती, परन्तु उसने कभी उसके बारे में नहीं लिखा, तब मुकुन्द से उसे सान्त्वना कैसे मिलती?

माँ की तबीयत दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। बम्बई में इलाज करवाने के बाद, गाँव में लौट आने पर यह आशा थी कि अब दवाई लेते रहने से लाभ होगा, और वह घूम-फिर सकेंगी। विश्वनाथ पंत की उत्कट अभिलाषा थी कि पत्नी स्वस्थ हो जाए तो उसे लेकर यात्रा कर आए। वह रोज उसके पास जाकर अपनी मनोकामना व्यक्त करता। लेकिन उसकी पत्नी ने बिछौना नहीं छोड़ा।

माँ को इस बात का दुःख था कि वह स्वयं अपनी यौवनावस्था में अपने गुरुजनों की सेवा नहीं कर सकी और उत्तरावस्था में बीमारी के कारण अपनी पुत्र-वधू को रिझा न सकी। बैठे-बैठे उपदेश करने से शिष्य पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना प्रत्यक्ष कार्य-प्रदर्शन का। ऐसे कार्य-द्वारा गुरु अपने शिष्य को उचित संस्कार दे सकता है। माँ इन बातों को भली-भाँति जानती थी। और इसीलिए उसने अपनी पुत्र-वधू को मुकुन्द के आदर्शों के अनुरूप ढालने का महाकार्य अपने हाथ में लिया था। किन्तु बीमारी के कारण वह अपनी जिम्मेदारी को पूरा न कर सकी। इसका क्या उपाय?

वृन्दा माँ का बड़ा सम्मान करती। तन-मन से उनकी सेवा करती। माँ की नजरों से यह लगन छिप न सकी। तथापि भीतर ही भीतर वृन्दा असन्तुष्ट है, यह बात माँ की तीक्ष्ण दृष्टि में आ गई।

दूसरी ओर, यशोदा बाई में जो अभिनव परिवर्तन हो गया था, वह माँ की दृष्टि में अद्भुत था। वृन्दा पूना से यहाँ आई तो अपने साथ शहरी संस्कार भी लेती आई। माँ की बाड़ी आज तक सादगी का नमूना रही थी। वृन्दा के आगमनोपरान्त स्थिति बदल गई। गाँव की लड़कियाँ वृन्दा की ओर कौतुहल-भरी नजरों से देखतीं और उसकी केश-रचना की नकल करतीं। यही नहीं, प्रौढ़ उम्र की स्त्रियों पर भी वृन्दा के केश-कलाप का प्रभाव माँ को दृष्टिगोचर हुआ। इससे उसे दुःख हुआ, लेकिन इसका कोई इलाज न था।

माँ इस बात से सतत सावधान रहती कि वृन्दा को कुछ समझाते या सिखाते समय उसकी वाणी कटु या कसैली न हो जाए। उसने वृन्दा को बार-बार यह बताया कि किस प्रकार उसने मुकुन्द का लालन-पालन किया—उसका

बचपन, शिक्षा-दीक्षा—और इन विषयों के प्रति की गई तैयारी ! और वृन्दा थी कि यह सब मौन सुनती रहती, कभी माँ के सम्मुख अपने विचार प्रकट न करती !

पतिव्रता स्त्री के पति और समाज के प्रति क्या-क्या कर्त्तव्य हैं यह सब माँ वृन्दा को भली-भाँति समझाती और इस विषय के ग्रन्थ भी पढ़कर सुनाती। आवश्यकतानुसार महत्त्वपूर्ण अंशों का विवेचन भी करती, परन्तु उसने कभी वृन्दा को यह न बताया कि पुरुष और स्त्री के रूप में पति-पत्नी के क्या-क्या कर्त्तव्य और संबंध हैं !

यों, माँ ने अपने विचार, मत और मन्तव्य के अनुसार वृन्दा को संस्कार प्रदान करने का कार्य चालू रखा। अब उसे यह प्रतीत होने लगा कि उसकी यह कोशिश प्रत्यक्ष उदाहरण के अभाव में अकारथ जा रही है !

दीवाली आ पहुँची थी। अक्तूबर की छुट्टियाँ होने में अभी एक सप्ताह शेष था। इस समय एक साँझ चन्द्रशेखर सुमति से मिलने के लिए आया। लीलाधर के विलायत जाने के बाद चन्द्रशेखर ने ज्यों-त्यों कर परीक्षा तो दी ही। इसके पश्चात् उसने अर्थोपार्जन का मार्ग खोज निकाला। सड़क पर एक-दो बार अचानक उसकी भेंट सुमति से हुई थी। सुमति नहीं जानती थी कि वह क्या धन्धा करता है ? लेकिन इतना तो वह जानती थी कि भाई साहब कुछ इधर-उधर जरूर कर रहे होंगे। आज उसे बोर्डिंग में अचानक उपस्थित देखकर सुमति को विस्मय हुआ।

पारस्परिक अभिवादन पर सुमति ने उससे पूछा—"क्यों, भाई साहब, आज कैसे इधर रास्ता भूल गए ? आज काम से सिर उठाने की फुर्सत मिली है आपको ?"

"काम ? कैसा काम ? आज के बाद कौन मिलने वाला है ?"

"यानी ?"

"आगामी दशहरे पर मैं सीमोल्लंघन करने वाला हूँ। बम्बई को अन्तिम प्रणाम करना है।"

"बम्बई से ऊब गए ? इंग्लैंड जा रहे हैं ?"

"तुम्हें तो जब-तब इंग्लैंड के सिवाय कुछ सूझता नहीं !"—सुमति की बात को काटते हुए चन्द्रशेखर ने कहा।

चन्द्रशेखर का आशय और उसका कटाक्ष सुमति समझ गई। उसकी आँखें लाल हो गईं और साँसें उष्ण होकर बहने लगीं, लेकिन उसने अपने को रोक लिया।

"सबको इंग्लैंड जाने का अवसर नहीं मिलता है।" चन्द्रशेखर ने कहा—"लीलाधर बड़ा भाग्यवान् है। आजकल उसी का बोलबाला है। आगामी छुट्टियों में वह आल्प्स-आरोहण के लिए जाएगा।"

"यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ ? तुम्हारे पास क्या उसके पत्र आते रहते हैं ?"

"हाँ, हाँ, महीने में एक पत्र तो वह मुझे लिखता ही है। उसके पत्रों में बड़ी मजेदार बातें रहती हैं—नाटक, ऑपेरा, सैर-सपाटा, नाच, डीनर आदि के मनो-मुग्धकारी वर्णन वह देता है। मित्र और सखियों में वह जो मौज मना रहा है, उसका संवाद जानकर तो इन भाईजी का मन भी वहाँ जाने के लिए ललचा रहा है।"

यह सुनकर सुमति स्तब्ध रह गई। उसके पास भी लीलाधर के पत्र आए थे, किन्तु उसमें वे बातें न थीं, जिनका जिक्र चन्द्रशेखर ने किया है। सुमति को यह मालूम न था कि इन दोनों में गहरी मित्रता है। उसने सोचा कि लीलाधर सबको अपनी-अपनी रुचि के अनुसार पत्र लिखता है।

"और क्या लिखता है वह अपने पत्रों में ?" सुमति ने तनिक मुस्करा कर कहा।

चन्द्रशेखर का उत्साह बढ़ गया। अब तो वह रसमय भाषा में लीलाधर की पसन्द के विषयों का वर्णन करने लगा। इस वर्णन के बीच उसने यह भी बताया कि कालिज के दिनों में उन्होंने क्या-क्या मजे किए हैं—होटलों में रातों के विलास, सिनेमा के तीनों शो देखना, सभी जलसों में भाग लेना आदि। इतना ही नहीं उसने यह भी कहा—"यहाँ हमने बड़ी मौज की। आन्दोलन

के दिनों में तो हम बहुत भटकते थे। लीलाधर-जैसा दूसरा साथी मिलना कठिन है। लेकिन, अब वे दिन कहाँ ? हम दोनों भिन्न मार्गों के पथिक बन गए हैं। सचमुच, अकेले मजा नहीं। फिर भी उसका मौज-शौक तो चलता ही है, साथ में मैं नहीं तो क्या हुआ ? दूसरे मित्र तो हैं ही और मित्र-साथी नहीं तो सहेलियाँ तो हैं।"

यह सुनकर सुमति को बड़ा धक्का लगा, परन्तु वह बाहर-बाहर अपने को सँभाले बैठी रही। और बोली—"ठीक है। यह तो होना ही है। यहाँ की अपेक्षा विलायत की परिस्थिति भिन्न है। वहाँ लड़के-लड़कियों को पूर्ण और समान स्वतंत्रता है।"

"मैं इस बात को कोई महत्व नहीं देता और न ही नई सूचना दे रहा हूँ। सिर्फ इतना ही कि जिस प्रकार लीलाधर को मित्र मिले हैं, उस प्रकार लड़कियाँ भी मिली हैं। यह उसके पत्रों से विदित होता है। तुम निर्मला को तो जानती हो ? इन दिनों लीलाधर की संगिनी है वह। दोनों में बहुत पट रही है। नाटक-सिनेमा देखने साथ साथ जाते हैं, साथ ही सैर करते हैं। और अब आल्प्स पर्वत के आरोहण में भी साथ-साथ जा रहे हैं। निर्मला की प्रेरणा से ही यह तैयारी हुई है।"

सुमति के अन्तर में एक अकथ्य वेदना उठी। यदि वह यों ही सुनती रही तो यह वाचाल चन्द्रशेखर अपनी बकवास बन्द न करेगा, इसलिए उसने तुरन्त विषय-परिवर्तन किया—"सीमोल्लंघन के विषय में तुम क्या कह रहे थे ?"

"मेरा मतलब था, नौकरी मिली कि बाहर गाँव गया।"

"सचमुच ?"

"कानपुर में एक गुजराती व्यापारी का शुगर मिल है। पिताजी के द्वारा उससे परिचय हुआ है। सेठ ने अपने कारखाने का मैनेज़र पद ऑफर किया है। इसलिए मैं कानपुर जाने वाला हूँ।"

"तब तो तुम्हारे जीवन को एक अभिनव दिशा मिली है ?"

"कौन कह सकता है ? लेकिन, हवाई-महल बनाने का धन्धा बन्द हो गया है। पिछले चार महीनों से ऊब चला था।"

"क्य भला ? तुम तो किसी व्यवसाय में थे ?"

"कैसा धन्धा और व्यवसाय ? और वह भी स्थायी कहाँ ?"

तब सुमति ने अधिक प्रश्न न किए। परन्तु चन्द्रशेखर बिना बोले न रह सका। कहने लगा—"अब हम कौन जाने कब मिलेंगे ! किन्तु पत्र-व्यवहार में तुम्हें कोई उज्र तो नहीं। यह तुम्हारा अन्तिम वर्ष है। तुम पास हो जाओगी, इसमें सन्देह नहीं। उसके बाद क्या इरादा है ?"

सुमति ने पहले तो मन में यह तय किया था कि वह जवाब न देगी, लेकिन इस वाचाल चन्द्रशेखर का मुँह योंही बन्द न हो जाएगा, यह सोचकर वह धीमे बोली—"आजीविका का प्रश्न सबके पीछे लगा है। इसके अतिरिक्त पितृ-ऋण भी सिर पर है, फिर भी मैं सरकारी नौकरी तो नहीं ही करूँगी। यथा-शक्य राष्ट्रीय-शिक्षण-कार्य हाथ में लूँगी।"

"ठीक, इस काम से आपको कितनी प्राप्ति की आशा है ?" चन्द्रशेखर जैसे ताना दे रहा हो।

सुमति को क्रोध आ गया, बोली—"मैं कुछ कमाने की आशा से काम नहीं करती हूँ। आवश्यक खर्च मिल जाए, तो बहुत होगा। मेरी इच्छा है कि अपनी अधिकांश शक्ति सेवा में लगे।"

"मुझे तुम्हारा यह कहना अच्छा नहीं लगता। आज भूले तुम्हारे ऐसे विचार हों, लेकिन बाद में पछताना पड़ेगा। शारीरिक-शक्ति सदैव नहीं रहेगी, यह सोचकर निर्णय करना चाहिए। इस पर तुम रहीं अबला स्त्री। स्त्री को पुरुष का आधार चाहिए। यह न मिले, तो वह इस संसार में रह नहीं सकती।"

यह सुनकर, सुमति उसे एक खासा जवाब देने जा रही थी, लेकिन रुक गई। इस बीच चन्द्रशेखर को कुछ याद आया कि वह ठहाका मारकर हँस उठा—"तुम्हारी प्रिय सहेली बड़ी डींग हाँकती थी ! आखिर किया न उसने भी ब्याह ! और वह भी किसके साथ, एक बूढ़े श्रीमंत से, जिसे तीन-तीन लड़कियाँ पहले ही ब्याह चुकी थीं।"

"विवाह एक भिन्न प्रश्न है। सरयू यदि शादी न करती, तो वह बेचारी अकेली कैसे रहती ?"

"रह सकती थी, लेकिन उसने जल्दी में विवाह क्यों किया? और उसका पति तन-मन से उससे कितना विपरीत है? शायद, अब सरयू ने अपने मन को समझा लिया है।" इतना कहकर, उसने आँखें मटकाईं—"लेकिन जिस व्यक्ति को ब्याहने से दूसरी लड़कियों ने इन्कार कर दिया, उसे सरयू ने स्वीकार किया, यह बात सच है।"

"मुझे नहीं मालूम।"

"लेकिन, मुझे मालूम है! और इसमें कोई बुरी बात नहीं है। विवाह तो एक सौदा है! बाजार में कई चीजें बिकती हैं, कई ग्राहक आकर भाव पूछते हैं, जिसे जो पसन्द आता है—खरीद लेता है। ब्याह की भी ऐसी ही बात है। सरयू को पसन्द आया, और सेठ का काम बन गया। जो हुआ, वह ठीक ही हुआ। सरयू को सहारा तो मिला।"

चन्द्रशेखर के ये विचार सुमति को विचित्र प्रतीत हुए। समग्र स्त्री-समाज की ओर चन्द्रशेखर क्या ऐसी ही हल्की नजर से देखता है? उसके मन में यह तर्क उठा, लेकिन प्रकट में उसे प्रकाशित न किया।

"शायद तुम्हें मेरी बातें ठीक न लगती हों! जाने दो इन बातों को। परन्तु एक बात मैं तुम्हें जता देना चाहता हूँ कि मैं चाहे जहाँ रहूँ, लेकिन सदैव तुम्हारा मित्र हूँ। कभी जरूरत हो, तो हुक्म देना, संकोच न रखना। यदि तुम्हारे काम आ सका तो अपना जीवन धन्य मानूँगा।" चन्द्रशेखर का यह अकारण प्रेम-निवेदन सुनकर, सुमति को संकोच हुआ, लेकिन इस अनमाँगे-अनचाहे निवेदन के प्रति उसे कृतज्ञता प्रकट करनी ही पड़ी।

फिर दोनों विदा हो गए।

३१

माँ का देहावसान

मुकुन्द अपने विद्यार्थियों में प्रिय हो गया। सभी उसके प्रति स्नेह और ममत्व दर्शाने लगे। यह स्नेह इस सीमा तक बढ़ गया कि विद्यार्थियों ने अधिक स्नेह-संपर्क पाने के लिए दीवाली की छुट्टियों में एक 'ट्रिप' पर जाने का निश्चय किया।

स्वभाव से मुकुन्द एकान्त-प्रिय था। फिर भी वह विद्यार्थियों को ना न कह सका। और 'ट्रिप' पर जाना स्वीकार किया। दक्षिण-भारत का द्राविड़-शिल्प देखने का प्रोग्राम बना। उसने अपनी माँ और वृन्दा को लिख दिया कि वह इस साल छुट्टियों में न आ सकेगा।

वास्तव में तो वृन्दा की पहली दीवाली उसके मायके होनी चाहिए थी, लेकिन वहाँ मामी का भाई बीमार हो गया था, वह खुद भी अपने मायके चली गई थी। इस प्रसंग-वश दीवाली नहीं मनाई गई। मुकुन्द या माँ के लिए इस पर्व का महत्व न था, लेकिन बेचारी वृन्दा ! ब्याह के बाद उसे यह प्रतीत होने लगा था कि सारा संसार जैसे उसके विरुद्ध है। इससे उसकी यह धारणा बनती गई कि विधाता ने उसके भाग्य में सुख ही नहीं लिखा है। और इस बात को उसने एक गाँठ की तरह अपने मन में बाँध लिया।

पूना में उसकी एक-दो सहेलियाँ थीं, लेकिन यहाँ तो सहेलियों का वह

वह वृन्दा के निकट गया, उसके दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये और आँखों-में-आँखें डालकर बोला—"क्यों, मेरी भावना तुम्हारी नजर में आज ही आई है?"

वृन्दा पशोपेश में पड़ गई। पर मुकुन्द के इस आवेग से उसे सुख मिला।

"क्या सोचती हो? मैं कोई तुम्हारा हाकिम नहीं हूँ। सचमुच, तुम मुझे अच्छी लगती हो और मेरे मन में तुम्हारे लिए मान है, वन्दना है। मैं तुममें सृष्टि की समस्त पवित्रता देख रहा हूँ। तुम मेरी ज्योति हो। तुम्हीं मेरी चिन्ता रखने वाली, प्रोत्साहन देने वाली और मेरी शक्ति हो। अब जरा कहो, मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति प्यार क्यों न हो? इन साधारण चीजों की क्या बात है, मैंने अपना जीवन तुम्हारे हाथों में सौंप दिया है, क्या तुम यह नहीं जानतीं?"

वृन्दा ने सोचा कि बहुत हुआ। मुकुन्द का आवेग कहीं आसमान में छलाँगें न भरने लग जाए, यह मानकर, उसने गम्भीर मुख से कहा—"छिः-छिः, महीनों से आपके दर्शन न हुए इस पर भी आप कहते हैं कि मेरे हाथों में है आपका जीवन! मुझे तो इसकी प्रतीति नहीं होती। यदि यह सच है, तो मेरे चाहने पर आपके दर्शन क्यों नहीं होते?"

इन शब्दों को सुनकर, मुकुन्द मानों आकाश से गिर पड़ा। वृन्दा अभी भी धरती पर विचरण कर रही है....यह बात उसके लक्ष्य में न आई थी!

इसके बाद उन दोनों में काफी बातचीत हुई। वृन्दा ने दिलरुबा उठाया और मुकुन्द की पसन्द का एक गीत सुनाया। इस प्रकार दो घंटे बीत गए।

इस घटना के बाद चार-पाँच दिन शान्ति से बीते। अगले दिन माँ के शरीर में रोग का विकार दृष्टिगोचर हुआ। वह गम्भीर था और मुकुन्द को विश्वास हो गया कि उससे माँ को मुक्ति मिलना कठिन है। सब लोग दौड़ धूप करने लगे। अकेली माँ ही शान्त थी।

माँ का जीवन विभिन्न परिस्थितियों में से गुजरा था। फिर भी उनके मन का सन्तुलन विचित्र था। इस सन्तुलन ने अनेक प्रतिकूल प्रसंगों में भी अपना समतोल न खोया था। पुत्री, पत्नी और माँ के रूप में उसने अपने सभी कर्तव्यों

का निष्काम-भाव से पालन किया था। इस बार की बीमारी में भी उनकी शान्ति भंग न हुई थी! मृत्यु की ललकार के लिए, वह सदैव तैयार रही थीं। उनमें, जीवन के घात-प्रतिघातों को सहते हुए, प्रतिपल प्रसन्न रहने का अपार धैर्य था। आज की उनकी यह बीमारी यमराज का प्रत्यक्ष निमंत्रण है, यह वे जान गईं। फिर भी इसलिए कि घर के लोग घबरा न जाएँ, वे सबको धीरज बँधाने के लिए कहती रहीं—"ऐसी तो कई बीमारियाँ आईं। फिक्र न करो, जल्दी ही ठीक हो जाऊँगी।"

माँ ने अब विश्वनाथ पंत को अपने पास बुला लिया। इस समय दूसरा कोई पुरुष उपस्थित न था।

यद्यपि विश्वनाथ पंत विगत कई वर्षों से परोपकार के सार्वजनिक कार्यों में लगे हुए थे, तथापि अपनी पत्नी के लिए उनके मन में अखण्ड प्रेम था। मुकुन्द की माँ के शुद्ध और साधु सम्पर्क में उन्हें सदैव अनन्त सुख और शान्ति मिलती। सो वृद्धावस्था में आने वाली इस विपदा की जानकारी से वे कैसे अजाने रह सकते थे? पत्नी के पास एक कुर्सी पर बैठकर विश्वनाथ पंत मौन रुदन करने लगे। मुकुन्द की माँ हँसते मुँह बोलीं—"आप ज्ञानी और समझदार हैं। यों क्यों रो रहे हैं? जन्म और मृत्यु विधि का विधान है। न तो जन्म से खुश होना चाहिए न मृत्यु पर दुःख मानना चाहिए। हमने आज तक अपने कर्तव्य का परिपालन किया है, यह जानकर सन्तोष मानना चाहिए। ईश्वर हमें बहुत-कुछ देता रहा, और हमने उसे व्यर्थ में विनष्ट नहीं किया है—यह बड़े आनन्द की बात है। रोइए नहीं, हम तो संसार-सागर में सहसा आ मिले काष्ठ-दंडो-जैसे हैं। बाद में तो सबको अपनी-अपनी राह जाना है। इसमें व्यथित होने की क्या जरूरत?"

विश्वनाथ पंत ने रुद्ध स्वर में कहा—"मैं तुम-सा स्थित-प्रज्ञ अब तक न बन सका। सत्यवती, आज तक मैं तुम्हारे प्रकाश में आगे बढ़ा हूँ, लेकिन अब भावी अन्धकारमय प्रतीत होता है। इस पर मेरी वृद्धावस्था।"

"प्रकाश तो परमेश्वर के पास से आता है, प्राणनाथ! और वह भी अनन्त-प्रवाह में प्राप्त होता है, इसमें श्रद्धा रखिए। अपने जीवन को आपने ही

दिशा दी है और आपकी सेवा के लिए सन्तान भी है। दो बच्चे हैं, इनकी मुझे चिन्ता नहीं। यह ईश्वर की माया है और अपनी माया की चिन्ता उसी को होनी चाहिए। व्यर्थ की फिक्र करनेवाली मैं कौन ?"

माँ को अपने पिता और भाई की याद आई। और बालापन की उस विपदा की वेला मे सहायता के लिए दौड़ आए विश्वनाथ पंत के प्रति माँ ने कृतज्ञता प्रकट की। और उनकी आँखों में आँसू आ गए।

मुकुन्द की माँ की श्वेत केश-राशि पर हाथ फिराते हुए, विश्वनाथ पंत के मस्तिष्क में विगत स्मृतियों ने अँगड़ाई ली, और उन्होंने एक दीर्घ उसाँस ली।

इसके बाद दो घंटे बीत गए। माँ ने यशोदा बाई को बुलाया, और उसकी सहायता से स्नान किया। फिर मनोयोग-पूर्वक प्रभु-प्रार्थना की। तत्पश्चात् घर के सब सदस्यों से आग्रह किया कि वे भोजन कर लें। भोजनोपरान्त माँ ने मुकुन्द को अपने पास बुलाया और गीता-पाठ के लिए कहा।

गीता-पाठ होने पर, ज्ञानेश्वरी का बारहवाँ अध्याय पढ़ा गया। वृन्दा ने इससे पूर्व किसी का मरण-दृश्य नहीं देखा था। इसलिए वह इस समय बहुत घबरा रही थी, डर रही थी। उसे मालूम हो चुका था कि माँ की हालत अधिकाधिक बिगड़ती जा रही है। फिर भी माँ के चेहरे पर जो असीम शान्ति व्याप्त है, उसे देखकर वृन्दा को अचरज हो रहा था।

माँ ने वृन्दा को भी अपने पास बुलाया और सिखावन दी—"बेटी, मुझे लग रहा था कि तुझे बहुत-कुछ सिखाऊँ। लेकिन, बीमारी के कारण मैं ऐसा न कर सकी। और आज तो भगवान् ने बुला भेजा है; मैं तुझे आशीर्वाद देती हूँ, सत्य न छोड़ना, मन में किसी प्रकार की भीति न रखना। मुकुन्द तेरा है, और तू उसकी है। एक-दूसरे को न भूलना और वक्त पड़ने पर परस्पर दोष और गलतियाँ भी भूल जाना! बेटा मुकुन्द, तुझे भी मेरा यही कहना है, वृन्दा बिना माँ की लड़की है।.....आज तक मैं तेरी माता थी, अब जगदम्बा तेरी माँ है। संकट के समय उसी का स्मरण करना।"

मुकुन्द की आँखों से आँसू झरने लगे। अब तक गाँववालों को माँ की इस दशा का संवाद मिल गया था इसलिए बड़ी संख्या में भीड़ एकत्र हो गई। सभी लोग दुःखी होकर, शोकग्रस्त-मुद्रा में खड़े थे।

माँ ने इन एकत्र लोगों में से कुछ को नाम पुकारकर, पास में बुलाया और भजन गाने का आदेश दिया। तुरन्त ही भजन की गम्भीर ध्वनि आने लगी।

भजन सुनते-सुनते माँ आँखें बन्द किए ध्यानमग्न हो गई। मुख से प्रभु-नाम उच्चारण चल रहा था। तभी राम-धुन शुरू हुई—

रघुपति राघव राजा राम। पतित पावन सीता राम ॥
जानकी-जीवन राघव राम। सुंदर माधव मेघश्याम ॥

भजन चालू था, तभी माँ का ऊर्ध्व-स्वास शुरू हो गया था। मुकुन्द माँ के पैरों के निकट बैठा था और अपनी छाती से माँ के पैर छुआए, जोर से उन्हें थामे हुए था। इस समय उसकी आँखों से अजस्र अश्रु-प्रवाह चल रहा था।

माँ की पवित्र-आत्मा चिदाकाश में विलीन हो गई।

३१
फिर नैहर में

सुमति ने अपने मामा को पत्र में लिखा—

"मामाजी! वृन्दा की दीवाली बिगड़ गई, इसमें किसी का दोष नहीं। मुझे ज्ञात हुआ कि मामी के भाई स्वस्थ होकर पूना लौट गए। इसीलिए मैं यह खत लिख रही हूँ। मुकुन्द की साध्वी माताजी का स्वर्गवास हुआ। इन दिनों वृन्दा का मन राजापुर में जरा भी नहीं लग रहा है। इसके अतिरिक्त मृत्यु-घटना देखकर वह उदास भी हो चली है। शायद उसने अपने जीवन में ऐसा दृश्य पहली बार देखा है और इसीलिए उसे यह आघात लगा है। इधर मुकुन्द को अपनी नौकरी पर बाहर गाँव जाना है, अतएव अच्छा होगा कि आप वृन्दा को पीहर बुला लें।...."

हाथ में पत्र आते ही मामा दौड़-धूप में लग गए। मुकुन्द की माँ के स्वर्गवास का संवाद जानकर उन्हें दुःख हुआ और वे तत्काल राजापुर रवाना हो गए।

माँ के देहान्तोपरान्त पूरे घर पर शोक और दुःख की काली छाया फैली थी। वहाँ सब गमगीन और उदासीन थे। विश्वनाथ पंत ने अपनी पत्नी के कमरे में ही आसन लगा लिया था। वे वहाँ से बाहर नहीं निकलते थे। यशोदा बाई अपने रसोईघर में लगी रहती थीं और पिछवाड़े दरवाजे में बैठी

रहती थीं। मुकुन्द अपने कमरे में विचारमग्न बैठा रहता और बेचारी वृन्दा अर्द्धविक्षिप्त-सी, स्नेह और आश्वासन के लिए आतुर होकर इधर-उधर भटकती रहती। यशोदा बाई के सिवाय घर के किसी आदमी को उससे बात करने की फ़ुरसत न थी। कभी-कभी पड़ौस की स्त्रियाँ धीरज और शान्ति देने आतीं, परन्तु, ये धीरज की अपेक्षा दुःख की स्मृति को ही अधिक उभार देतीं। इससे वृन्दा तो इस आशा में रहती कि ये कब उठकर चली जाएँ।

चार दिन तक मुकुन्द न वृन्दा से न किसी और से ही बोला। माँ की याद में वह वृन्दा को बिलकुल भूल गया। और वृन्दा के मन में प्रश्न उठा कि अब भविष्य के गर्भ में मेरे लिए क्या छिपा है? मेरा क्या होगा? लेकिन उन प्रश्नों का उत्तर न मिला। मुकुन्द का बम्बई जाना तय हो चुका था। अकेली वृन्दा राजापुर में अपना दिन कैसे बिताएगी। अब तक सास के पवित्र और साधु-सहवास का लाभ उसको मिलता रहा है और उस सहवास-सम्पर्क से उसे सुख मिला है, परन्तु अब उस पर प्रेम की छाया कौन रखेगा? माँ के स्वर्गवास पर मुकुन्द तो वृन्दा को अभी से भूलता जा रहा है और इतने बड़े घर में वृन्दा प्रेत की तरह अकेली रहती थी। उसे कई प्रकार के विचार आते थे और सोच करते-करते उसका सिर दुखने लता था। आज भी यही हुआ और वह पलंग के पाये पर सिर टिकाए सिसकने लगी।

एकान्त कक्ष में वह रो रही थी कि इस समय भाग्य ने उसका साथ दिया कि मुकुन्द उधर जीने से गुजरा और उसने अपनी अर्धाङ्गिनी का रुदन स्वर सुना। एकदम चौंककर वह रुक गया। वह विवाहित है और उसकी नौजवान पत्नी ऐसी करुण-वेला में भी एकाकिनी पड़ी है—इस तथ्य का ध्यान आते ही वह तत्क्षण वृन्दा के कमरे में गया।

कमरे में दीपक न जला था, लेकिन चाँद की मन्द रोशनी में उसने वृन्दा को सिसकते देखा। घबराकर वह वृन्दा के पास बैठ गया। और प्रेम-भरे मधुर शब्दों में उसे सान्त्वना देने लगा।

"वृन्दा, मैं किस मुँह से तुझसे माफी माँगू?"

उसने गद्‌गद स्वर में कहा—"कैसा आदमी हूँ मैं, तुझे एकदम भूल गया।

क्षमा करो वृन्दा और यों रोश्रो नहीं। इस समय हम दोनों क्या समदुःखी नहीं हैं? अब कौन किसे धीरज बँधाए। वृन्दा चुप हो जाओ, तुम्हें रोती देखकर मुझे दुःख होता है।"

मुकुन्द आया है, इस जानकारी के साथ ही वृन्दा को आश्वासन मिल गया था। और मुकुन्द के मुख से निकले मीठे वचनों से उसे अधिक धीरज और सान्त्वना मिली।

वृन्दा ने अपने आँसू-भरे नेत्र आँचल के छोर से पोंछ लिये। लेकिन मुकुन्द ने उसे मौखिक धीरज बँधाने के सिवाय और कोई व्यवहार न किया।

दूसरे दिन उसे अपने भावी कार्यक्रम की बात चलानी पड़ी। विश्वनाथ पंत तो कुछ बोलते न थे। यशोदा बाई भी चुप रहीं। इस दम्पति को किसी प्रकार की सलाह देने की योग्यता उनमें न थी और कुछ भी हो वृन्दा अभी छोकरी ही थी। मुकुन्द के सामने प्रश्न उठा कि अब क्या करे?

आज तक तो उसकी माँ उसके सारे कार्यक्रम का आयोजन करती थी। इसलिए उसे किसी प्रकार की चिन्ता न रही थी। आज वह फिक्र में पड़ गया। उसके बिना वृन्दा राजापुर में अकेली न रह सकेगी, यह तथ्य उसके सामने दिन के उजाले की तरह उजागर था।

वह इसी उधेड़-बुन में पड़ा था कि एक दिन अचानक वृन्दा के पिता वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर मुकुन्द को आश्चर्य हुआ। आश्चर्य का कारण यह था कि मुकुन्द ने माँ की खबर बाहर किसी को न दी थी। सिर्फ इस विषय में सुमति को एक तार भेजा था।

ससुर के यथायोग्य आगत-स्वागत के बाद भोजनादि कार्य सम्पन्न हुए। अब मुकुन्द की समझ में आ गया कि यह सब कारीगरी सुमति की है। इसके हेतु उसने सुमति का आभार माना। ससुर ने शोक और समवेदना प्रदर्शित कर आश्वासन दिया और इस बात पर खेद प्रकट किया कि वे पिछली दीवाली के अवसर पर अपनी पुत्री और जमाई को घर न बुला सके। उन्होंने मुकुन्द से कहा—"अभी तो आपको कालिज जाना है इसलिए मेरा खयाल है कि वृन्दा यहाँ अकेली रहे, इसकी अपेक्षा कुछ दिन नैहर में रहे तो, शायद ठीक

होगा। अब तक इसने किसी की मरण-घटना नहीं देखी थी, और फिर नया-नया घर, अतः इसके मन को आघात लगा है।"

मुकुन्द को उसके पिता का यह खयाल पसन्द आया। वृन्दा की राय ली गई। उसे अपनी सौतेली माँ से स्नेह तो नहीं था, किन्तु वर्तमान दशा में राजापुर छोड़कर बाहर जाना ही उसे अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ। बिना किसी आना-कानी के, वह पूना जाने के लिए तैयार हो गई।

तीनों एक साथ रवाना हुए। मुकुन्द बम्बई चला और वृन्दा तथा उसके पिता पूना की ओर चल दिए।

३३
याचना और तिरस्कार

सुमति का अध्ययन बड़े जोरों से चल रहा था, फिर भी वह अपने दूसरे काम नहीं भूली थी। कभी-कभी वह रमा काकी से मिलने जाती, तो वे उसे विलायत से आए लीलाधर के पत्र पढ़कर सुनातीं। रमा काकी लीलाधर को पत्र न लिखवाती हों, ऐसी बात नहीं थी। लेकिन इसके लिए उन्हें बार-बार हेमलता की खुशामद करनी पड़ती। माधवराव ने रमा काकी को लीलाधर के पते वाले कई लिफाफे दे दिए थे। जब कभी हेमलता के मन में तरंग उठती वह लीलाधर के लिए पत्र लिख देती। इसके बाद रमा काकी बड़ी सावधानी से पत्र को लिफाफे में बन्द करतीं और डाक के लिए भेज देतीं।

लीलाधर के जो उत्तर आते, वे केवल औपचारिक होते। लेकिन सुमति के नाम आने वाले पत्रों में पर्याप्त विवरण होता। रमा कामी को इस प्रकार अपने सुपुत्र के विषय में पूरे समाचार मिल जाते। इन प्रसंगों से रमा काकी को ऐसा प्रतीत होने लगा मानो सुमति उनके अपने ही परिवार की सदस्या है। हेमलता और सरला भी सुमति की सहेलियाँ बन गई थीं। जब-जब सुमति वहाँ आती, तब-तब उसकी ड्यूटी हो गई थी कि दोनों लड़कियों के बाल सँवारे। प्रायः सभी समारोहों में भी वह उन्हें ले जाती। इन सभी कारणों से रमा काकी के मन में उसके प्रति प्रेम-भावना और लगन उत्पन्न हो गई थी। बहुत बार

उनके मन में यह विचार आया था कि वे सुमति को अपनी पुत्रवधू बना लें।

एक-दो बार रमा काकी ने अपनी यह अभिलाषा माधवराव के सामने पेश की थी। परन्तु माधवराव ने इस विषय का निर्णय लीलाधर पर छोड़ दिया था। वे कहते—"अपनी पत्नी वह आप ही ढूँढ़ लेगा, हमें इस झगड़े में पड़ने की जरूरत नहीं।" इस प्रकार माधवराव ने रमा काकी को भली-भाँति समझा दिया, परन्तु काकी को यह उत्तर पसन्द न आया। कहने लगीं—"वह तो अभी बच्चा है, उसे इन बातों का बोध कहाँ? कल वह किसी ऐसी-वैसी छोकरी को उठा लाया तो आपको मालूम हो जाएगा।"

इस भाँति रमा काकी माधवराव को बुझाती रहतीं।

सुमति को इस विषय में तनिक भी शंका न थी कि वह परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाएगी। लेकिन, उत्तीर्ण होने के बाद क्या होगा?—यह सवाल उसे परेशान कर रहा था। सेवा करने की ललक तो उसमें थी ही, किन्तु पेट का सवाल भी उतना ही महत्वपूर्ण था। उसके माता-पिता ने विवाह के विषय में भी जानना चाहा, परन्तु अभी मेरा विचार नहीं है, यही उत्तर मिला। और ब्याह पर वह इसी उत्तर का पर्दा डालती रही। उसकी सहेलियाँ उसके लिए नौकरी खोज रही थीं, परन्तु सरकारी नौकरी न करने का उसका निश्चय बाधा बना हुआ था।

अंत में कालिज के प्रिंसिपल ने उसकी सहायता की। उन्होंने यह पूछा कि अमरावती की राष्ट्रीय शाला में काम करने के लिए क्या वह तैयार है? शाला की एक अध्यापिका, ब्याह के बाद, गरमी की छुट्टियों में त्याग-पत्र देने वाली थी।

वेतन ४० रुपया प्रतिमास था। सुमति ने इस नौकरी के लिए अपनी स्वीकृति दे दी और इस प्रकार एक समस्या हल हुई।

उसे चन्द्रशेखर का एक पत्र मिला। अब कानपुर में उसका काम-काज चल पड़ा है, यह उसमें लिखा था। उसके पत्र से सुमति को यह ध्वनि मिली कि वह काफी पैसा कमा रहा है और सुख-चैन में है। सुमति ने अपने उत्तर

में अपने भावी-कार्यक्रम की रूप-रेखा बतलाई। उसने इस बात का भी लम्बा ब्यौरा दिया कि राष्ट्रीय शाला में पढ़ाते समय वह कौन-कौन-सी सेवाएँ समर्पित करने की इच्छा रखती है।

इसी समय उसकी परीक्षा शुरू हो गई, और वह पूरा सप्ताह बेचैनी में बीता।

सुमति का विचार था कि परीक्षा पूरी होने पर वह अपने घर जाएगी। अब घर लौटने में दो ही दिन बाकी थे कि चन्द्रशेखर का पत्र मिला। उसे पढ़ते ही, वह सोच-विचार में पड़ गई। इस पत्र में चन्द्रशेखर ने अपने एकाकी जीवन और उसमें पथराई शून्यता का जिक्र किया था। और यों सुमति की सहानुभूति पाने की अपेक्षा रखी थी। पत्र बहुत भावुक और अलंकारिक था। अंत में लिखा था—"अब मैं स्वतंत्र हूँ। पैसा कमा रहा हूँ, किसी का बन्धन नहीं। स्वास्थ्य और सम्पदा की कमी नहीं। कमी है केवल गृह-स्वामिनी की—यह कमी पूरी हो जाए, बार-बार यही विचार आता है।"

लेकिन गृह-स्वामिनी का अर्थ 'पत्नी' है, क्या यह समझाने की आवश्यकता है?

"प्रिय सुमति,

"कई वर्षों का हमारा परिचय है। हम दोनों एक ही कालिज के विद्यार्थी हैं: इतना ही नहीं, स्नेही मित्र के रूप में भी हम परस्पर परिचित हैं और एक-दूसरे के गुण-दोष भी जानते हैं। क्या तुम मेरे जीवन की सुख-स्वप्न-सृष्टि को सत्य बनाने में सहायक बनोगी? मेरा मन कहता है, यदि तुम्हें अपनी जीवन-संगिनी बना सका, तो सुखी रहूँगा और मेरा आनन्द निस्सीम हो जाएगा। दूसरी बात यह है कि तुम उस दरिद्री और गँवई गाँव में जाकर, चालीस रुपल्ली से अपने जीवन की गाड़ी को धकेलती रहो—यह मुझे पसन्द नहीं। तुम्हारा जीवन ऐसा बोझ ढोने के लिए नहीं है। मेरी पत्नी बन सको, तो मैं तुम्हें सुखी रखने का पूरा प्रयत्न करूँगा।"

पत्र में और भी कई आश्वासन थे। चन्द्रशेखर ने अपनी भावनाओं का

यथा-शक्य आविष्करण किया था और अंत में, पत्र समाप्त करते हुए, यह आशा व्यक्त की थी कि सुमति का उत्तर 'हाँ' में मिलेगा। और इसके बाद मानो कुछ स्मरण हुआ हो इस प्रकार उसने 'पुनश्च' के अंतर्गत लिखा—

"हमारी जाति एक नहीं है, अभी मुझे यह याद आया, लेकिन इस जमाने में यह प्रश्न नगण्य माना गया है। और इसके अतिरिक्त तुम्हारे खयालात इतने प्रगतिशील हैं कि इस विषय का उल्लेख करना मुझे संगत प्रतीत न हुआ।"

सुमति परेशान हो गई। चन्द्रशेखर से उसे यह आशा न थी और स्वप्न में भी इसका खयाल न था। सचमुच में यह प्रेम है अथवा चन्द्रशेखर की एकाकिनी परिस्थिति का परिणाम है—सुमति इस स्थिति को समझ न सकी। कुछ भी हो, उसे उत्तर तो देना ही होगा।

इस वक्त वह जल्दी में थी, क्योंकि रमा काकी ने उसे भोजन का निमन्त्रण दिया था। सुमति लम्बे अर्से के लिए, शायद सदा के लिए, दूर जा रही थी, तभी न रमा काकी ने निमन्त्रण दिया था। काकी को यह पसन्द न था कि सुमति अमरावती जाए, लेकिन उनमें इतनी शक्ति नहीं थी कि सुमति को रोक लें, अतः वे खामोश रहीं।

दस बज गए। सुमति ने बड़ी जल्दी में कपड़े पहने और रमा काकी के घर पहुँची। कुछ ही देर बाद, सब जन भोजन के लिए बैठे।

भोजनोपरान्त रमा काकी उससे बातें करने लगीं। फिर वाचन-गायन और नृत्य आदि कार्यक्रम हुआ। दो बजे के लगभग, रमा काकी चाय बनाने के लिए रसोईघर में गईं, तब सुमति को चन्द्रशेखर के नाम पत्र लिखने की याद आई। वह लीलाधर के कमरे में गई और मेज पर बैठकर पत्र लिखने लगी।

उसने छोटा-सा पत्र लिखा और अंतिम शब्द लिखे-न-लिखे की रमा काकी ने उसे पुकारा। जल्दी में उसने पत्र पर नोटबुक रख दी और रसोईघर की ओर दौड़ी।

इसी समय शाला से हेमलता लौटी। हाथ-मुँह धोकर, वह लीलाधर के कमरे में गई। लीलाधर के विलायत जाने पर उसका यह कमरा हेमलता और

सरला के बीच झगड़े का कारण बन गया था। दोनों बहनें कमरे पर अपना अधिकार साबित करने के लिए झगड़ती थीं और प्रायः रमा काकी को बीच में पड़कर, दोनों को कमरे से दूर रहने की सजा देनी पड़ती थी।

आज हेमलता शाला से कुछ जल्दी लौट आई थी। अतएव वह कमरे में गई और मेज की दराज से अपनी चीजें लेने लगी। तभी उसकी नजर नोट-बुक पर पड़ी, उसे उठाकर देखा, तो हाल ही में लिखा पत्र सामने आ गया। स्वाभाविक जिज्ञासा से प्रेरित हो वह पूरा पत्र पढ़ने लगी—

"श्री चन्द्रशेखर,

"आपका कृपा-पत्र मिला। पढ़कर आश्चर्य हुआ। आप ऐसी माँग रखेंगे—इस बात की मुझे स्वप्न में भी कल्पना न थी। आपकी भावना और सद्वृति के प्रति मेरे मन में कोई सन्देह नहीं है। जाति-भेद पर मेरा विश्वास नहीं है और आपकी योग्यता से भी मैं अपरिचित नहीं। फिर भी आपकी माँग मुझे मंजूर नहीं और आपका प्रस्ताव अस्वीकार करते हुए दुःख होता है।

"मेरे भविष्य की आप चिन्ता न करें। मुझे कोई कष्ट नहीं होगा और मैंने जो-कुछ किया है, पूरे सोच-विचार के बाद किया है। इसलिए मुझे किसी प्रकार का, शारीरिक या मानसिक, क्लेश न होगा। मुझे आशा है, कि मेरी इस अस्वीकृति से हमारे पारस्परिक स्नेह-भाव में कोई बाधा न पड़ेगी। ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि आपको अपनी योग्यतानुरूप गृह-स्वामिनी मिले।

आपकी शुभाकांक्षिणी,

सुमति।"

यह पत्र पढ़ने में हेमलता को बड़ा मजा आया। उसे ज्यों-का-त्यों रखकर, वह अपनी माँ के पास दौड़ गई। इस बीच सुमति कमरे में आई और पत्र को ज्यों-का-त्यों देखकर, उसे किसी बात की शंका नहीं हुई। पत्र बन्दकर, डाक में भेज दिया। लेकिन हेमलता के पेट में यह बात बेचैनी पैदा करने लगी। उसी साँझ, उसने रमा काकी से कहा—"माँ, तुझे एक मजेदार बात सुनाती हूँ।"

रमा काकी का खयाल था कि पाठशाला की कोई बात होगी, अतएव

बोलीं— "क्या बात है, बता।"

आँखें मटकाते हुए, हेमलता कहने लगी—"माँ ! शेखर भाई हैं न, उन्होंने सुमति बहन के नाम पत्र लिखकर विवाह की माँग की थी। लेकिन सुमति बहन ने साफ इन्कार कर दिया।"

रमा काकी की आँखें फटी रह गईं—"क्या कहती है ? तुझे कैसे मालूम हुआ ?"

हेमलता ने उत्साहपूर्वक कहा—"दोपहर को मैं भैया के कमरे में गई थी, तब मैंने मेज़ पर सुमति बहन का लिखा पत्र देखा। उसे मैंने पढ़ लिया।"

रमा काकी चौंक उठीं और हेमलता का हाथ थामकर, चपत लगाने शुरू कर दिए—"छोकरी, तेरी यह ढीठता ? लोगों के निजी पत्र पढ़ना सीख गई ? तूने यह आदत कहाँ पाई ? आज तो किसी के निजी पत्र पढ़ती है, कल मेरी चाबियाँ चुराकर, तिजोरी तोड़ेगी। बता, तूने यह कहाँ सीखा ? तेरी बड़ी देख-रेख रखनी पड़ेगी। मुँह बन्द करती है या नहीं ? इस प्रकार बकते तुझे शरम नहीं आती ?"

बेचारी हेमलता रोने लगी। रमा काकी ने उसे तभी छोड़ा, जब पीटते-पीटते उनके हाथ थक गए। वास्तव में, हेमलता को यह भान न था कि इस प्रकार पराए पत्र पढ़ना अच्छा नहीं। माँ के लिखाने पर, वह पत्र लिखती और आगत पत्रों को पढ़ती। उसे कल्पना भी न थी कि पत्रों में निजी बातें भी होती हैं। अतएव, यह उसकी समझ में नहीं आया कि माँ व्यर्थ ही उसे क्योंकर पीट रही है। वह रूठ गई और शाम का भोजन किए बिना ही, पलंग पर जाकर पड़ रही।

रात में, जब हेमलता नज़र न आई, तो माधवराव ने उसके लिए पूछा। हेमलता ने भी सो जाने का बहाना किया।

माधवराव ने अपनी पत्नी से पूछा—"क्यों, हेम को क्या हुआ है ?"

"हुआ क्या ? आज मैंने उसे ताड़ना दी है।" रमा काकी ने चिढ़े मुँह से जवाब दिया।

"क्यों भला ?"

रमा काकी ने साँझ की घटना सुनाई। माधवराव ने हेम को इस प्रकार पीटने के लिए, रमा काकी को उलाहना दिया। तत्पश्चात् पत्र का जिक्र आया।

"सुमति ने चन्द्रशेखर को 'ना' कह दी, यह आश्चर्य की बात है!"

"इसमें क्या आश्चर्य! जाति-पाँति नहीं, कितनी दूर पड़ा है, किसी को खबर नहीं। फिर सुमति उससे ब्याह कैसे करे? यों तो सुमति होशियार और समझदार है, हाँ....आँ....!"

"मुझे तुम्हारा कथन जँचता नहीं। आज की यह लड़की—पढ़ी-लिखी और स्वच्छंद, उसके विचार भी स्वतंत्र। शायद, पहले ही किसी से उसका प्रेम हो, कह नहीं सकते।"

"मेरी सुमति ऐसे प्रेम-व्रेम में पड़ने वाली नहीं।" रमा काकी ने साभिमान कहा—"मैं जो कहती हूँ, वही सच है। मेरी तो बड़ी इच्छा है कि उसे अपनी बहू बना लूँ—लीलाधर और सुमति!—सभी प्रकार से यह जोड़ी ठीक है। जब वह यहाँ थी, मेरा समय कट जाता। जब से वह अमरावती गई, तो जाने कब उसका मुँह देखने को मिले।"

"तो, उसका स्कूल जब बंद हो, तब छुट्टियों में बुला लेना उसे?" माधव-राव ने रास्ता बताया।

"लेकिन वह यहाँ क्यों आने लगी? उसके क्या माँ-बाप नहीं? उसे यदि बहू के रूप में बुलाएँ, तो बात अलग है—" कहते-कहते, रमा काकी थोड़ा मुस्कराई।

"लेकिन, इसमें मैं क्या कर सकता हूँ? अपने बेटे से पूछ देखो। पत्र-द्वारा उसका उत्तर प्राप्त कर लो।"

"किन्तु, अभी लिखने से क्या फायदा? उसके लौटने में अभी तो दो वर्ष बाकी हैं। तब तक हमें धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा ही करनी चाहिए।"

हेमलता कान खोलकर, यह बातचीत सुन रही है, इस ओर, दोनों में से, किसी का ध्यान न गया। अब हेमलता के उपजाऊ मस्तिष्क में एक नए बीज का आरोपण हुआ, और दूसरे दिन उसमें अंकुर उग आए। उसने एक निश्चय किया और दूसरे ही दिन उसे अमल में लाने का प्रयत्न किया।

३४

हेमलता का पराक्रम

दूसरे दिन हेमलता ने अपनी माँ का पीछा किया—"माँ, भैया को काग़ज़ लिखना है न ?"

इसके पूर्व तीन-तीन बार खुशामद करने पर भी हेमलता पत्र लिखने से आनाकानी करती थी। वही लड़की आज समझदार बनकर पत्र लिखने के लिए उतावली हो चली है, यह देखकर रमा काकी को कुछ आश्चर्य और हर्ष हुआ। उन्होंने पत्र लिखवाना शुरू किया।

पत्र पूरा होते ही हेमलता बोली—"माँ, मैंने बड़ी उतावली में लिखा है इसलिए अक्षर भी अच्छे नहीं लिखे गए और स्याही के धब्बे भी पड़ गए हैं। यह सब देखकर भैया मेरी मज़ाक उड़ाएँगे। तुम कहो तो फिर से इसकी नकल कर लूँ।"

भोली काकी को यह बहाना सच्चा प्रतीत हुआ और उन्होंने अच्छे अक्षरों में पत्र की नकल करने की अनुमति दे दी। हेमलता तुरन्त अपने कमरे में गई और पहले पत्र की नकल करने लगी। पत्र पूरा होने पर उसने अपनी ओर से इतना और लिख दिया—

"प्रिय भैया,

"आपको एक मजेदार बात बताती हूँ। आपको पसन्द भी आएगी। हमारे

चन्द्रशेखर भाई ने सुमति बहन के सामने ब्याह का प्रस्ताव रखा था, किन्तु सुमति बहन ने तो इस प्रस्ताव का बड़ा कड़ा जवाब दिया और उसे ठुकरा दिया। माँ कहती है, चन्द्रशेखर भाई उसके सजातीय नहीं हैं। पिताजी का खयाल है सुमति का किसी दूसरे से प्रेम है और मुझे तो यह लगता है कि उसका प्रेम आपके प्रति है। इसका प्रमुख कारण यह है कि सुमति बहन जब-जब हमारे घर आती है तब-तब वह आपके कमरे में जाकर आपकी तस्वीर देखती खड़ी रह जाती है। एक बार तो मैंने उसे रोते हुए भी देखा। सुमति का अमरावती जाना माँ को पसन्द नहीं है। उनकी मर्जी है कि उसे बहू बनाकर अपने घर रखा जाए। पिताजी कहते हैं लीलाधर से पूछ देखो। मेरा भी स्वप्न है कि यदि सुमति बहन मेरी भाभी बन जाए तो कितना आनन्द आए ? वह मेरे बाल भी बहुत अच्छे बनाती है और नए-नए फ्राक सीने में भी कुशल है। इसलिए भैया, आप उससे जल्द ब्याह कर लें। मैं उससे बहुत प्रेम रखूँगी। मुझे भी वह बहुत पसन्द है। आपको भी पसन्द आयेगी। यदि आपने मेरा कहा नहीं माना तो आपकी-हमारी कुट्टी। समझ गए न ?

आपकी बहन
हेम।"

इतना लिखकर हेमलता ने पत्र काकी को सौंप दिया। रमा काकी ने उसे तुरन्त डाक में भिजवा दिया।

जब यह पत्र लीलाधर के हाथ में आया, तो उसने पढ़ा और चकित रह गया। वह विचार में पड़ गया कि यह तो अवश्य हेमलता के उपजाऊ मस्तिष्क का पराक्रम है। यदि उसी की करामात है तो क्या माता-पिता को सूचना देकर उसे ताड़ना दिलानी चाहिए ? उसकी समझ में न आया कि क्या करे ? लेकिन जब आवेश ढल गया तो वह हेमलता की बात की सचाई पर विचार करने लगा। इस समय सुमति की शान्त और गम्भीर प्रतिमा उसकी आँखों-आगे खड़ी हो गई। हेमलता की बात सच है क्या ? सचमुच सुमति मुझसे प्रेम करती है ? और क्या इसीलिए उसने चन्द्रशेखर को ना कह दिया है ? अथवा इस

वाचाल लड़की ने मुझे 'अप्रैल-फूल' बनाने की योजना गढ़ी है? लीलाधर इस प्रकार चक्कर में पड़ गया।

उसे यह शंका तो न हुई कि हेमलता उसे ठग रही है। उसने विचार किया कि इस लड़की को जो कुछ ठीक लगा, लिख दिया। इस वक्त सुमति का स्वपरिचित इतिवृत्त उसके सामने चलचित्र की भाँति चलने लगा। सुमति का मधुर, प्रशान्त और सुशील स्वभाव, सेवा की उसकी लगन, गुरुजनों का आदर और सबके प्रति कृतज्ञता, मित्रों की चिन्ता आदि गुण उसे याद आए। और इस स्मृति पर, उसने सोचा कि चाहे वह मुझे प्रेम करती हो या नहीं, किन्तु उसके प्रेम का अधिकारी बनना बड़े गौरव की बात है। विलायत में उसके आसपास सम्मोहन के अनेक साधन थे। स्वभाव से वह आदर्शवादी न था। उसका जीवन रँगीला और अलमस्त था। मौका आने पर खाने-पीने के मामले में और युवतियों के विषय में वह मर्यादा का बहुत-कुछ उल्लंघन कर जाता था। फिर भी मर्यादा से बहुत दूर वह कभी गया नहीं। विलायत की छोटी-छोटी लीलाएँ वह चन्द्रशेखर के पत्र में ही लिखता। परन्तु अब उसे यह महसूस होने लगा था कि यदि मैं इसी प्रकार मर्यादा का उल्लंघन करता रहा तो एक दिन प्रवाह की धारा में बह जाऊँगा। और उबरना मुश्किल हो जाएगा। अतएव, कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो मेरे आचार-विचार पर अंकुश रखे। इससे मेरा अपना ही लाभ होगा। और ऐसा अधिकारी व्यक्ति कौन हो सकता है? उसने अपने परिचित स्नेहियों की ओर दृष्टि डाली, लेकिन ऐसा कोई नजर न आया जो अपना आदर्श, व्यवहार और कर्तव्यपरायणता द्वारा उसे प्रभावित कर सके। आज हेमलता का पत्र पढ़ते हुए उसे प्रतीत हुआ कि यदि इस योग्य कोई व्यक्ति हो सकता है तो वह अकेली सुमति ही है। सहस्रों मील दूर बैठी भी वह मुझपर नजर रख सकती है। लेकिन ऐसी व्यवस्था कैसे हो सकती है? मात्र हेमलता के कथन पर, साहस करके बेवकूफ बन जाना ठीक नहीं। इस हेतु उसने निश्चय किया कि वह पत्र-द्वारा विवरण प्राप्त करेगा।

अमरावती में जम जाने पर, आठवें दिन सुमति ने लीलाधर के पत्र का उत्तर लिखा। अपने कार्यक्षेत्र के संबंध में उचित वर्णन लिखने के बाद अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और आशाओं के विषय में भी उसने सविस्तार लिखा। अन्त में लिखा—"मैंने संन्यासव्रत नहीं लिया है, फिर भी विवाहित जीवन के लिए उतावली नहीं। योग्य समय आने पर, अनुकूल परिस्थिति पर मैं इस जीवन को भी सहर्ष स्वीकार करूँगी। लेकिन इस समय की परिस्थिति देखते हुए मैं अधिक क्या लिख सकती हूँ।"

अब लीलाधर को विश्वास हो गया कि सुमति से अब अपेक्षानुकूल उत्तर पाने की आशा की जा सकती है। तुरन्त ही उसने दूसरा पत्र लिखा। लिखते समय उसे काफी विचार करना पड़ा। नौजवान लड़की की खुशामद करना आसान है, परन्तु यह तो पूरे जीवन का महत्त्वपूर्ण प्रश्न है और इसमें भी सुमति जैसी गम्भीर और विचारशील लड़की। पत्र लिखने के पूर्व उसने पूरी तरह विचार कर लिया। तत्पश्चात् सरल और स्वच्छ लेखन द्वारा उसने अपने अन्तर का उद्घाटन किया—

'तुम यदि मेरी जीवन-नौका की पतवार हाथ में लोगी तो मेरी जीवन-यात्रा सहज सफल ह जाएगी। मुझे सफलता की पूरी आशा है।' इस प्रकार उसने पत्र लिखा और सुमति को वचन दिया कि वह उसके प्रति एकनिष्ठ रहेगा। किन्तु, इस पत्र में उसने हेमलता के खत का कोई उल्लेख न किया।

लीलाधर के इस पत्र का उत्तर भी आशानुकूल मिला। सुमति ने उसकी अभिलाषा स्वीकार की। इस अप्रत्याशित प्रसंग पर सुमति को जो आनन्द हुआ उसका उल्लेख करते हुए उसने विशेष रूप से लिखा—"मुझे लगता है कि मैं इस सम्मान के योग्य नहीं हूँ। आपने मुझे जो सम्मान दिया है उसके लिए ऋणी हूँ। और इसके लिए मैं ईश्वर का आभार मानती हूँ। जो उत्तर-दायित्व आपने मुझ पर छोड़ा है उसे देखकर मैं चिन्तित हूँ। यह मेरे जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रसंग है। फिर भी मुझे आशा है कि ईश्वर की कृपा से मैं अपने उत्तरदायित्व को पूरा कर सकूँगी। अधिक क्या लिखूँ?"

इसके बाद दोनों के बीच का संकोच कम हुआ और दोनों का पत्र-व्यव-

हार अधिक भावनापूर्ण और हार्दिक बना। दोनों परस्पर एक दूसरे को प्रोत्साहन और आश्वासन देने लगे। और यों दिन जल्दी-जल्दी बीतने लगे। अब दोनों इस बात की प्रतीक्षा करने लगे कि मिलन-घड़ी कब आती है!

लेकिन उनका यह भेद कोई तीसरा व्यक्ति न जान सका।

हेमलता अपने इस पराक्रम के परिणाम से सर्वथा अनजान थी और धीरे-धीरे वह इस प्रकरण को भूल गई।

३५

श्वसुर-गृह

माँ का स्वर्गवास होने पर मुकुन्द का मन खिन्न रहने लगा। किसी काम में उसका चित्त न लगता। यद्यपि वह अपना कार्य नियम और ध्यानपूर्वक करता, किन्तु काम के बाद का खाली समय उसे असह्य प्रतीत होता। माँ की छाया के बिना जो संसार सामने था, वह उसे सूना-सूना लगता। अब उसके जीवन की दिशा का क्या होगा, यह भी वह नहीं जान पाता था। कभी-कभी तो उसकी इच्छा होती कि हिमालय चला जाए। कभी दुनिया से दूर कहीं रहने का उसका जी हो आता। लेकिन तभी उसकी मनोभूमि में वृन्दा की प्रतिमा आ खड़ी होती। और उसे यह महसूस होता कि अब वह अकेला नहीं है, उस पर एक गम्भीर उत्तरदायित्व है। वह समझदार और विचारवान था। इसलिए उसने अपनी मनोशिक्षा का श्रीगणेश किया—संसार में जन्म लेकर घूमनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को वीर बनना चाहिए। दुनिया से दूर भाग जाने में कोई पुरुषार्थ नहीं। वृन्दा में शायद माँ जितनी योग्यता न हो, परन्तु उसे उतनी योग्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। स्वर्गीया माता की चाह थी कि वृन्दा मेरे अनुरूप बन जाए। माँ तो देवलोक चली गई परन्तु, मुझे चाहिए कि उस काम को पूरा करूँ, जो उसने हाथ में लिया था। धर्म, अर्थ और काम तीनों की सफलता पुरुष स्त्री की सहायता के बिना प्राप्त नहीं कर सकता। और

इतना ही नहीं चौथी प्राप्ति मोक्ष के लिए भी उसका सहयोग आवश्यक है।

उसने और सोचा—'यदि मुझे वृन्दा को अपने योग्य बनाना है तो मुझे चाहिए कि उसकी ओर किसी स्वार्थमय और विकारपूर्ण दृष्टि से न देखूँ। वृन्दा के पतन में मेरा सर्वनाश निहित है। मुझे चाहिए कि उसके सद्गुणों का विकास करूँ। यदि ऐसा हुआ तो मेरा आदर्श वृन्दा के सहयोग से अधिक निर्मल और सरल बनता जाएगा। मेरा अनुमान है वृन्दा कुछ आग्रही, कुछ हठी है। उसका स्वभाव बदल जाने पर, बाद का मेरा काम बहुत ही सरल हो जाएगा। तत्पश्चात् वह स्वयं ही अपने विकास की साधना कर लेगी और मेरे लिए सहायक शक्ति बन जाएगी। लेकिन उसके मन में मेरे प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो, इसके लिए मुझे उसकी पर्याप्त सेवा करनी चाहिए। आरम्भ में उसे उद्वेलित करना ठीक नहीं। अब तक तो वही सेवा करती आई है और मैं सेवा लेता रहा हूँ, परन्तु अब मेरी बारी है। उसके धैर्य का अन्त नहीं। माँ की मृत्यु से उसके मन में जो अवसाद और निराशा उत्पन्न हुई है उन्हें दूर करने के लिए उसके पिता उसे पूना ले गए हैं। लेकिन इस बीच वृन्दा की सौतेली माँ का गर्भपात हो जाने से पेट में पीड़ा रहने लगी है। बेचारी वृन्दा के नसीब में तो चारों तरफ कष्ट और काम ही लिखा है। लेकिन भविष्य में देर-अबेर उसे सुख मिलेगा ही, इस आशा में वह सब-कुछ सहन करती हुई अपने दिन बिता रही है। और यह सब देखकर मुझे अपनी दशा पर शर्म आती है। कई बार विचार आते हैं कि एम० ए० कर लेने पर राजापुर जाकर रहूँ और गरीबों की सेवा करूँ। किन्तु वृन्दा की मनोवृत्ति शहर में रहने की है। लेकिन ग्राम-वास वृन्दा को पसन्द आएगा? खैर इस समय तो मुझे उसकी इच्छा के विरुद्ध तो नहीं जाना चाहिए। पहले उसकी अभिलाषा पूर्ण करके धीमे-धीमे उसे सेवा-मार्ग पर लाना चाहिए।

इस प्रकार मुकुन्द के मस्तिष्क में विचार आते-जाते रहे। इन दिनों वृन्दा अपने नैहर में थी और मुकुन्द की मंशा थी कि जब तक उसका काम न लग जाए, वह उसे वहीं रहने देगा। इसके अतिरिक्त उसके माता-पिता को उसकी अधिक जरूरत थी। और हाल की बीमारी के कारण उसकी माँ को दिल की

बीमारी हो गई थी और शरीर एकदम निर्बल पड़ गया था। इस हेतु वृन्दा पीहर ही रहे यह उसके माता-पिता की इच्छा थी। माँ की देख-रेख में वृन्दा ने सेवा-कार्य में पर्याप्त प्रगति की थी और अबोला स्वभाव भी कुछ-कुछ सुधर गया था। इससे उसके माता-पिता भी इन दिनों उससे खुश रहते थे।

दीवाली की छुट्टियों में श्वसुर-गृह आने का मुकुन्द को आमन्त्रण मिला। वहाँ जाने पर मुकुन्द के साथ काफी हँसी-मज़ाक होने लगी। और वृन्दा की सहेलियाँ झुंड-के-झुंड बनाकर उसे देखने आने लगीं। इससे मुकुन्द को बड़ा संकोच होने लगा। मुकुन्द अपनी माँ की देख-रेख में एक भिन्न वातावरण में पला था। अतएव ससुराल जाने पर लोक-व्यवहार के अनुसरण में किस प्रकार बर्ताव करना चाहिए, हँसी-विनोद कैसे करना चाहिए, और चोरी-छिपे अपनी पत्नी से शृङ्गार-चेष्टा कैसे करनी चाहिए—इन सब बातों से मुकुन्द अनजान था। सिर्फ इतना ही अपवाद था कि शाम को वह वृन्दा के साथ घूमने जाता, परन्तु क्या वृन्दा को इतने से ही सन्तोष हो जाता?

मुकुन्द की अव्यावहारिकता देखकर वृन्दा को दुःख हुआ। इस बारे में वह कई बार संकेतों में मुकुन्द को समझाती थी। लेकिन इससे मुकुन्द के मन-मस्तिष्क को कोई मार्ग न मिला अथवा उसकी समझ में आ जाने पर भी, उसने अपने आदर्श और स्वभाव के अनुसरण में, इस ओर ध्यान न दिया।

एक दिन साँझ के साढ़े पाँच बजे मुकुन्द और वृन्दा एक पुल से पार हो रहे थे कि मुकुन्द के मुँह से आश्चर्योद्‌गार निकले। सामने ही चन्द्रशेखर आ रहा था। बहुत दिनों बाद उससे मिलकर मुकुन्द को हर्ष हुआ। चन्द्रशेखर भी इसे देखकर खुश हुआ। दोनों परस्पर स्नेहपूर्वक मिले।

"तुम यहाँ कैसे?"

दोनों ने एक ही वक्त, एक दूसरे से पूछा।

मुकुन्द ने तुरन्त ही यहाँ आने का कारण बतलाया। तब चन्द्रशेखर कहने लगा—"मैं अपने सेठजी के कार्य के लिए कल ही यहाँ आया हूँ।"

इस समय वृन्दा मुकुन्द के पास खड़ी थी, उसे देखकर चन्द्रशेखर ने पूरी तरह सिर झुकाकर नमस्कार किया और मुकुन्द की ओर अर्थसूचक दृष्टि से देखा।

"हाँ !"—मुकुन्द बोला। इसके बाद वह वृन्दा की ओर मुड़ा और उसे चन्द्रशेखर का परिचय दिया। वृन्दा ने अब तक मुकुन्द के किसी मित्र को न देखा था। विलायती पोशाक में सुसज्जित चन्द्रशेखर को देखकर, वृन्दा को मुकुन्द की सादगी पर लज्जा आई। लेकिन ऊपर-ऊपर हँसकर उसने चन्द्रशेखर को नमस्कार किया। चन्द्रशेखर अपने मृदुल और स्वच्छ वाणी और तरीके से उससे बातें करने लगा। वह बड़ा चालाक और खुशामदी था और खासकर जवान लड़कियों की खुशामद करने में कोई उसे नहीं पा सकता था। वृन्दा की सुन्दरता और उसके मुख के भाव पढ़कर उसने जान लिया कि इस स्त्री को अपने सौन्दर्य का भान है और उसका गुमान भी। इसलिए वह उससे मीठी-मीठी बातें करने लगा। और वृन्दा भी कुछ-कुछ हँसकर, कुछ-कुछ मटककर उत्तर देती थी, कि मुकुन्द बोला—"हम लोग बीच सड़क में खड़े होकर बातें कर रहे हैं, यह ठीक नहीं। चलो आगे बढ़ें। चन्द्रशेखर, तुम क्या हमारे साथ आ रहे हो ?"

"कहाँ ? घूमने के लिए। अरे, आज घूमना रहने दो। यहाँ आने के बाद तुमने वृन्दाजी को एक फिल्म भी दिखाई है ?"

"मुझे सिनेमा पसन्द नहीं और वृन्दा भी नहीं देखती। फिर देखने का प्रश्न ही नहीं उठता।"

"तुम्हें पसन्द नहीं, यह बात ठीक है। लेकिन वृन्दा भाभी फिल्म नहीं देखतीं, यह बात मैं नहीं मानता। तुम अपना मत इन पर क्यों लादते हो !"

"नहीं, ऐसी बात है तो इसी से पूछ देखो।"

"क्यों वृन्दा भाभी, आपको इस संबंध में क्या कहना है ?"

चन्द्रशेखर ने वृन्दा की ओर मुड़कर पूछा।

"क्यों भला, मुझे तो पसन्द है सिनेमा। कौन कहता है पसन्द नहीं ?" मुकुन्द की ओर तिर्यक दृष्टि से देखती वृन्दा बोली।

चन्द्रशेखर यह सुनकर जोर से हँस पड़ा। वृन्दा की बात सुनकर मुकुन्द को आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"क्यों ? सुमति कहती थी कि तुम्हें नाटक-सिनेमा पसन्द नहीं। तुम्हीं ने उसे यह बताया था, ठीक है न।"

सुमति का नाम सुनते ही चन्द्रशेखर का मुँह उतर गया। लेकिन उस पर किसी की नजर न पड़ी। रुकते-रुकते वृन्दा ने उत्तर दिया—"पहले की बात पहले गई। आदमी के विचार क्या कभी बदलते नहीं?"

अब तो चन्द्रशेखर बीच में ही बोल उठा—"अब रहने दो मुकुन्द, अपनी चतुराई। चलो, आज हम 'रोमियो और जूलिएट' चित्र देखें।"

मुकुन्द की इच्छा न थी परन्तु वृन्दा की उत्कण्ठा देखकर वह चुप रहा और उसके साथ, चन्द्रशेखर द्वारा बुलाई गई गाड़ी में बैठ गया।

सिनेमा-हाल में वृन्दा दोनों के बीच में ही बैठी। मुकुन्द चुप-चुप फिल्म देख रहा था। सिर्फ चन्द्रशेखर ही वृन्दा से फिल्म के बारे में बातें कर रहा था। वह फिल्मों का निष्णात था इसलिए इस फिल्म के संबंध में रसभरा वर्णन कर रहा था। चन्द्रशेखर के मुँह से यह बहुत-कुछ सुनने पर भी वृन्दा की तृप्ति न हुई और उसे अधिकाधिक सुनने की लालसा लगी रही।

यह देखकर कि वृन्दा को फिल्म में मजा आ रहा है, मुकुन्द खुश हुआ। फिल्म पूरी होने पर विदाई के समय मुकुन्द ने चन्द्रशेखर को हृदय से धन्यवाद दिया। वृन्दा ने भी उससे घर आने का आग्रह किया।

घर आने पर भी वृन्दा रसविभोर रही। उस रात उसने मुकुन्द से हँस-हँसकर बातें कीं। मुकुन्द को याद आया कि जब राजापुर में वह वृन्दा के कमरे में गया था तब वह जितनी आनन्दिता और हर्षिता नजर आ रही थी, आज भी उतनी ही प्रसन्न है। उसने एक निःश्वास छोड़ा और मन-ही-मन कहा—"वृन्दा अभी भी बालिका है।"

मुकुन्द के सास-श्वसुर को इस बात का आश्चर्य हुआ कि मुकुन्द वृन्दा के साथ कभी एकान्त में रहने का प्रयत्न नहीं करता। रात होते ही वह खुली छत पर सोने के लिए चला जाता। और यह भी सच था कि मुकुन्द या वृन्दा में से किसी एक को भी एकान्त में बैठकर बातचीत करने का मौका नहीं मिलता।

जिन दिनों चन्द्रशेखर पूना में था वह वृन्दा के घर आकर दो-एक बार दोनों दम्पत्ति से मिल गया। उसका रंगीला और वाचाल स्वभाव घर के छोटे-बड़ों को पसन्द आ गया था। ऐसे समय मुकुन्द और वृन्दा का स्वाभाविक

अन्तर उसकी दृष्टि में आ गया था। इस हेतु उसने एक दिन मुकुन्द को लम्बा भाषण दिया—

"तुम एक बार अपनी दार्शनिकता और त्याग की बातें गोलकरके रख दो। मेरा खयाल तो यह रहा कि एक सुन्दर तरुणी तुम्हारे पल्ले बँध गई है तो तुम्हारे जीवन में परिवर्तन आना चाहिए। लेकिन तुम तो वही रहे ढाक के तीन पात। शुक्रदेव के नए अवतार हो! भाभी को कभी-कभी सिनेमा ले जाओ, स्त्रियों को और क्या चाहिए—अलंकार-आभूषण, वस्त्र, काव्य-विनोद और खुशामद। ये चीजें इन्हें मिलीं कि बस समझो कि स्वर्ग मिल गया। और जब इन्हें सन्तोष हो जाता है तो ये भी पुरुष को सन्तुष्ट किए बिना नहीं रहतीं। मुझे आश्चर्य है कि तुम ऐसी सीधी और सरल बात भी नहीं समझते। व्यर्थ ही इसे असन्तोष दे रहे हो और इस प्रकार तुम खुद भी खिन्न रहते हो।"

चन्द्रशेखर से तर्क-वितर्क करना व्यर्थ है, यह सोचकर मुकुन्द चुप रहा। लेकिन इससे भी चन्द्रशेखर चुप नहीं होने का था। उसने अपना पुराण प्रारम्भ रखा—"अच्छा यह बात छोड़ो। एम० ए० होने के बाद क्या करने का विचार है?"

"तुम्हारे ही रास्ते पर चलनेवाला हूँ। कोई नौकरी ढूँढ़ दोगे?"

चन्द्रशेखर उत्साह में आकर बोला—"सचमुच तुम नौकरी करोगे? तुमने मेरे मन की बात कही। यह काम मेरा है। निश्चिन्त होकर मुझ पर छोड़ दो, फिर देखना कि कैसी नौकरी ढूँढ़ देता हूँ।"

यह जानकर कि चन्द्रशेखर ने उसके विनोद को सच मान लिया है मुकुन्द कुछ दुःखी हुआ और उसने तुरन्त ही स्पष्टीकरण किया—"मैंने तो मजाक किया था और तुमने तो सच मान लिया।"

लेकिन चन्द्रशेखर अधिक सुनने को तैयार न था—"अब चुप भी रहो, मैं सब जानता हूँ। मुझे नहीं सुनना तुम्हारा भाषण! 'मन में भावे मूँड़ हिलावे!' तुम ऐसा क्यों करते हो? मैं तुम्हारे लिए सारी खटपट करूँगा। एक बार तुम ठीक से जम जाओ तो मुझे शान्ति मिले। एक बार तुम्हारा यह काल्पनिक आदर्शवाद धराशायी करना पड़ेगा।" ऐसा कहते-कहते चन्द्रशेखर ने मुकुन्द से विदा ली।

३६

अपना घर-बार

चन्द्रशेखर ने अपने वचन का पालन किया। कई सूत्र खींचकर उसने एक प्रतिष्ठित, गुजराती सज्जन के परिचय-द्वारा मुकुन्द को बड़ौदा के शिक्षा-विभाग में ढाई सौ प्रतिमास के वेतन की नौकरी दिलादी। यह कहने की जरूरत नहीं कि मुकुन्द एम० ए० में बहुत ऊँचे अंकों से उत्तीर्ण हुआ था।

वृन्दा को इससे अतिशय आनन्द हुआ। उसने सोचा कि अब उसका सुख-स्वप्न साकार होने आया है। अब वह मुकुन्द के साथ शहर में स्वतंत्र रूप से रह सकेगी। कमी क्या रही? अर्थ-विषयक कोई चिन्ता नहीं। अब तो वह स्वर्गलोक में सुखोपभोग करेगी—ऐसी-ऐसी अनेक कल्पनाएँ वह करने लग '.

पहले उसे एक भय बना रहता था, एम० ए० पास कर लेने पर मुकुन्द उसे राजापुर तो नहीं खींच ले जाएगा। लेकिन ईश्वर ने वृन्दा की सहायता के लिए चन्द्रशेखर को भेज दिया और अपनी कृपा का वर्षण किया। यों, वृन्दा अन्तःकरणपूर्वक चन्द्रशेखर का आभार मानने लगी। किन्तु मुकुन्द को यह नया जीवन अनुकूल न आया। इसमें उसे रुचि न थी। उसे बार-बार अपने गाँव की याद आती। अपने स्वर्गवासी मामा और नाना की याद आती। उसे लगता कि विक्रान्त मामा उसके सामने खड़े होकर उसे उलाहना दे रहे हैं—"तो तुमने हमारे कुल में जन्म लेकर और ऐसी उच्च शिक्षा ग्रहणकर अन्त

में नौकरी स्वीकार की ?" उसके मन में दारुण द्वन्द्व चल रहा था, फिर भी बाहर उसकी परछाईं वह झलकने न देता और इसके अतिरिक्त वृन्दा अपने जिस नवीन लोक में आनन्द-विहार कर रही थी, उसमें विक्षेप डालना उसे उचित प्रतीत न हुआ। अतएव, मुकुन्द मन-ही-मन सब कुछ सहन करता रहा।

बड़ौदा के सयाजीगंज में मुकुन्द ने हवा और रोशनीवाला एक मकान किराए पर लिया। इस घर की सजावट का काम वृन्दा ने अपने कन्धों पर लिया। और अपनी समझ के अनुसार उसने घर का सामान ढंग से सजा दिया। मुकुन्द में कला के प्रति रस और रुचि न हो, ऐसी बात नहीं थीं। वह कला-प्रेमी था, तभी न उसे वृन्दा की रचना-कला, सजावट की चतुराई आदि देखकर आनन्द हुआ। परन्तु उसके मन में इन बातों का विशेष महत्त्व न था। अतएव मुक्त रूप से वह अपने आनन्द को अभिव्यक्त न कर सका। प्रतिमास वह अपना वेतन वृन्दा के हाथ में दे देता और रोज की उसकी आज्ञाओं का यथावत् पालन करता। तत्पश्चात् खाली समय वह अपने कमरे में अथवा छत पर जाकर अध्ययन में व्यतीत करता। अब उसके जीवन में से स्वप्नावधि अथवा तरंगी जमाना चला गया था, वास्तविक जीवन की शुरूआत हो गई थी।

भोजन के मामले में पति-पत्नी के बीच अन्तर पड़ने लगा। वृन्दा को चाय का व्यसन तो था ही, इसके अलावा वह जीभ की बहुत चटोरी भी थी। अब स्वतंत्र होने पर उसकी स्वच्छन्दता शुरू हुई। मुकुन्द की रुचि एकदम अलग और सादी थी, इसलिए उसके लिए अलग भोजन बनने लगा। मुकुन्द को इसमें कोई उज्र न था, परन्तु वृन्दा को अपने अनुरूप बनाने का ध्येय अभी ओझल न हुआ था। फलतः कई बार अवसर देखकर वह वृन्दा को उपदेश देता। लेकिन इससे वृन्दा उलटे चिढ़ जाती।

हर रविवार नाटक या सिनेमा जाने के लिए वृन्दा हठ करती। मुकुन्द को दो कारणों से यह हठ अनुचित प्रतीत होता। एक तो पैसे की हानि, दूसरे नाटक आदि देखने से मनुष्य की किसी प्रकार की उन्नति नहीं होती। अतः वह बार-बार वृन्दा से कहता—"क्या मैं चाहे ज्यों खर्च करने के लिए रुपया कमा रहा हूँ ? जिन कारणों से हमारी प्रगति नहीं होती और उलटा हमारा मन

उत्तेजित होकर कुमार्गगामी होता है, ऐसे विषयो में पैसा बरबाद करने की हठ तुम क्यों करती हो ? इससे तो अच्छा है कि तुम कुछ उत्कृष्ट साहित्य खरीद कर पढ़ो ।"

यह जब सुनती, तो वृन्दा तूफ़ान बन जाती ।

वृन्दा ने घरेलू कामों के लिए एक नौकर रख लिया था । रसोई तो वह स्वयं बनाती और कई बार मुकुन्द भी उसे मदद देता । वृन्दा को यह पसन्द न था लेकिन वह कहता—'सारा काम स्त्री पर ही क्यों डाल देना चाहिए ?' उसे चक्की का आटा अच्छा न लगता इससे व्यायाम के निमित्त वह खुद ही आटा पीस लेता । वृन्दा के खयाल से यह काम जंगली था । परिचय बढ़ जाने पर, वृन्दा में हिम्मत भी आ गई थी और इससे वह मुकुन्द के सामने मन-माने ढंग से बोलती, संकोच न रखती । अब प्रायः वह मुकुन्द की अवगणना भी करने लगी । लेकिन मुकुन्द को इस कारण उस पर क्रोध नहीं आता, वह प्रेम और शान्ति से उसे समझाने का प्रयत्न करता, परन्तु सब व्यर्थ जाता । अब मुकुन्द ने अपनी रुचि के विषय वृन्दा को सिखलाने शुरू किए । लेकिन ज्योंही मुकुन्द अपना लेक्चर शुरू करता, त्योंही वृन्दा ऊँघ आने और जँभाई लेने का बहाना करने लगती । मुकुन्द को अपनी माँ से, बचपन से ही स्वाव-लम्बन का पाठ मिला था । उसने वृन्दा को सूत कातने और खादी पहनने का आग्रह किया, परन्तु उसने किसी प्रकार यह स्वीकार न किया—"मुझे नहीं चाहिए जूट और पटसन के ये टुकड़े । ये मेरी देह में चुभते हैं ।" एक झटके में उसने मुकुन्द को सुना दिया ।

"यदि मैं पतली खादी ला दूँ तो ? और तुम्हारी जो उँगलियाँ सीने-पिरोने में चतुर हैं, क्या वे बारीक सूत नहीं कात सकतीं ? देखो, मैं कितना महीन सूत कातता हूँ । यदि मैं अपनी खादी में से तुम्हारे लिए कुछ कपड़े बनवा दूँ ?"

खादी पहनने से वृन्दा घबराती न थी । लेकिन उसे ईसप की नीतिकथाओं में से पढ़ी एक कथा याद रह गई थी । वह कथा यों है—"एक छोटा लड़का शाला में नया-नया आया । उसके शिक्षक ने उसे 'अ' रटाना शुरू किया । लेकिन लड़का मुँह से कुछ न बोलता था । शिक्षक ने प्रयत्न किया कि वह मुँह

खोले और कुछ बोले। लेकिन लड़का चुप ही रहा और शिक्षक ने 'अ' रटाना छोड़ दिया। एक दिन दोपहर की छुट्टी में दूसरे लड़के उसके पास जमा हो गए और उससे पूछा—'हमें तो 'अ', 'आ' रटने में कोई कठिनाई नहीं होती, तुम क्यों नहीं पढ़ते ?' उस लड़के ने जवाब दिया—'अ' कहने में मेरा कुछ नहीं जाता, लेकिन एक बार 'अ' कह देने पर फिर तो, 'आ', 'ई', 'उ' और यों लम्बी पाँति लग जाएगी और शिक्षक महोदय की रोक-टोक भी बढ़ती जाएगी। इसलिए यदि मैं 'अ' ही न कहूँ तो अधिक सिरपच्ची का मौका ही नहीं आएगा।' "

वृन्दा का यही हाल था। उसने ईसप की अपनी इसी कथा के अनुसार व्यवहार शुरू किया। वह जानती थी कि मुकुन्द को शहरी जीवन पसन्द नहीं और ग्रामीण जीवन की ओर उसका आकर्षण है और वह चाहता है कि अपनी शिक्षाओं-द्वारा मुझे अपने आदर्श की ओर घसीट ले जाए !

इसीलिए वृन्दा ने, आरम्भ में ही, खादी पहनने का पहला 'पाठ' पढ़ने के पहले ही इन्कार कर दिया था। उसे शहरी जीवन से ममत्व था और वह जानती थी कि वह सुन्दर है। शहर के सिवाय उसकी पसन्द की चीजें कहाँ मिल सकती थीं ? सुन्दर कपड़े और वस्त्र पहनकर, कारों में घूमना, बड़े घरों की स्त्रियों के साथ रहना और मौजमजा करना—उसकी महत्वाकांक्षाएँ थीं। फिर भला उसका और मुकुन्द का मेल क्योंकर मिलता !

यह तो सब हुई बाहर की बातें। इसके अलावा भी एक नई बात उसने सीखी थी। स्वतंत्र होने पर भी मुकुन्द वृन्दा से पति-जैसा व्यवहार न करता था। वह अभी भी ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा था। वृन्दा को बचपन से ही घर और बाहर से जो कुसंस्कार मिले थे, अब उनका प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा था। जब वह कुछ समझने लगी तब तक उसने अपने मनोविकारों की परवाह न की, लेकिन वह नहीं जानती थी कि आज का वातावरण तारक नहीं; मारक है। उसे यह भान न था कि यह वातावरण सर्वथा दोष-युक्त और अकल्याणकारक है। फिर भला मुकुन्द उसका शिक्षण आवश्यक समझे, तो क्या बड़ी बात है ?

३७

असन्तोष

कुछ मास वृन्दा ने प्रतीक्षा की कि मुकुन्द की वृत्ति और आदत में अन्तर आए। बड़े गौर से वह स्थिति का अध्ययन करती रही। यद्यपि उसका मन मुकुन्द से अप्रसन्न था, परन्तु मुकुन्द के प्रति अनादर नहीं था। यदि यह भावना न होती, तो कब से दोनों मे विच्छेद हो गया होता। लेकिन वृन्दा का स्वभाव बचपन से ही भीरु था। अतएव वह खुले-मुँह, बेधड़क होकर कुछ कह न सकती थी। वह चार महीनों तक मुकुन्द से मेल बढ़ाने और उसे अपने स्वभाव का परिचय देने का प्रयत्न करती रही, लेकिन यह सब अधिक दिन चले ऐसी स्थिति न थी। बड़ौदा में वृन्दा का परिचय बाहर की स्त्रियों से होने लगा था। मनुष्य का जैसा स्वभाव होता है वैसी ही उसकी मित्रता होती है, इस नियम के अनुसार वृन्दा की धनवान, रँगीली और विलासिनी लड़कियों से मैत्री होने लगी। ये स्त्रियाँ आम सभाओं में अपने पति के साथ भाग लेतीं, अधनंगी पोशाकें पहनतीं और श्रृंगारिक चेष्टाएँ करतीं। इस परिचय की छाया में अब तो वृन्दा का मन भी ऐसी बातों की ओर आकर्षित हुआ। इन स्त्रियों की गोष्ठियाँ और उनकी चर्चाएँ भी इसी प्रकार की थीं। जब वे मिलतीं तो, आभूषण, वेश-भूषा, पतियों के प्रेम, लड़कों की तारीफें, नाटक सिनेमा की अश्लील श्रृंगारिक कथाएँ और पर-निन्दा का चक्र चलता। अब तो वृन्दा को

भी इन बातों में मज़ा आने लगा था, इसलिए उसका मन भी बहकने लगा था। लेकिन मनोविज्ञान की दृष्टि से देखने पर इसमें उसका कोई कसूर न था। अब तक उसकी मनोभूमि जिस प्रकार तैयार हुई थी, उसके अनुरूप परिणाम ही प्रकट हो रहे थे। उसे तो यह ध्यान था कि खिलते हुए यौवन की वेला में ऐसा होना स्वाभाविक ही है। ईश्वर ने संसार और उसकी सुन्दर वस्तुओं की रचना व्यर्थ ही नहीं की है। विवाह के पूर्व, जितनी शारीरिक और बौद्धिक उन्नति कर ली, उतनीकाफ़ी है। गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने पर, तड़कते हुए यौवन और फटती हुई जवानी की वेला में भी यदि विषय-सुख का उपभोग न किया जाए तो, दूसरे किस अर्थ हेतु किया जाएगा? वृद्धा-वस्था तो वैराग्य लेने के लिए ही है और उस अवस्था में मनुष्य की शक्ति भी क्षीण हो जाती है। फिर जवानी में विषय-सुख का भोग न किया जाए, तो फिर कब किया जाए?

मुकुन्द वृन्दा से गुप्त विषयों की चर्चा कभी भी न करता था, इसका कारण यह था कि उसके मन में सुप्त विकार जागृत करने की इच्छा न थी। वृन्दा अभी इन बातों से अनजान थी। इसलिए समय-समय पर वह वृन्दा को ब्रह्मचर्य और संयमी जीवन की महत्ता सुनाता। ऐसे वक्त वह वृन्दा को लक्ष्य बनाकर कुछ भी न कहता, वरन् सत्साहित्य अथवा महापुरुषों के जीवन-चरित्रों के किसी सुन्दर कथा-भाग पर आवश्यक विवेचन करता। उसका उद्देश्य था कि किसी प्रकार वृन्दा को मनोरंजक ढंग से शिक्षा दे सके और उसके मन पर अच्छे संस्कार पड़ें। किन्तु इस ओर वृन्दा की तनिक भी अभिरुचि नहीं थी और यह मानकर कि उसे ही लक्ष्य बनाकर यह सारा उपदेश दिया जा रहा है वह झगड़ने को तैयार हो जाती।

एक दिन मुकुन्द वृन्दा को श्री रामकृष्ण परमहंस का चरित्र सुना रहा था। उसमें पूज्य माता सारदा देवी का उल्लेख आया। मुकुन्द यह पढ़ते-पढ़ते भाव-विभोर हो गया कि श्री रामकृष्ण परमहंस अपनी पत्नी को भी कितनी उच्च एवं निर्मल दृष्टि से देखते थे। उसे माता कहकर पुकारते और उसे सुसंस्कार देकर उन्होंने किस प्रकार उसका उद्धार किया! वृन्दा कुछ देर तो चुपचाप सुनती

रही। परन्तु बाद में जब अपने को बाँधकर न रख सकी तो बोली—"मुझे इस प्रसंग में कोई भी प्रशंसनीय बात नहीं लगी। पत्नी को बाहर से तो अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणों से सजाना और भीतर-भीतर भूखों मारना—इसमें मुझे यही बात नज़र आई।"

"तुम्हारी बात ठीक नहीं है।"—मुकुन्द बोला।

"नहीं है तो क्या हुआ? हमारे यहाँ बाल-विधवाओं को संन्यास दिलाया जाता है। लेकिन ऊपर से संन्यास ले लेने पर भी भीतर-भीतर क्या सुलग रहा है, यह पराए आदमी कैसे जान पाएँ। शारदा देवी को पति के जीवित रहते वैधव्य भोगना पड़ा और किसे मालूम उनके जीवन में, उनके मन में क्या-क्या चल रहा हो। हमारी स्त्रियों की दशा सदा ऐसी ही रहती आई है। पति यदि कहे कि मुझे संन्यास लेना है तो पत्नी की हिम्मत नहीं कि अस्वीकार करे। पति यदि कहे कि तू भी भक्तिन बन जा, तो बेचारी पत्नी के पास हाँ के सिवाय दूसरा कोई चारा ही नहीं। उठना हो या गिरना हो, एकमात्र पति ही उसका मार्ग-दर्शक है। वह खुद भी कुछ कर सकती है क्या? वह अपना ही भविष्य नहीं गढ़ सकती, तो पति का भावी क्योंकर बना सकती है? यह सब कुछ होने पर भी पुरुषों को नरक में ले जाने वाली यदि कोई है तो वह स्त्री ही है।"

वृन्दा की बात सुनकर मुकुन्द चकित रह गया। फिर भी वह खुश हुआ कि वृन्दा ने पहली बार इस प्रकार मुक्त रूप से अपने विचार व्यक्त किए हैं। वह बोला—"तुमने जिस स्थिति की ओर इंगित किया, वह वर्तमान में दृष्टि-गोचर अवश्य होती है, तथापि व्यक्तिगत-रूप में मुझे नारी में निहित शक्ति के प्रति अनन्त श्रद्धा है। यद्यपि आज वह अपना तेज समेटकर बैठी है किन्तु, ज्यों-ज्यों उसमें जागृति और चेतना आएगी, त्यों-त्यों उसका उत्साह बढ़ता जाएगा। और उसका तेज प्रकाशित हुए बिना न रहेगा। और तब यह नारी साहसपूर्वक कहेगी—'मैं स्वतंत्र हूँ, किसी की दासी नहीं।' और तब किसी पुरुष की हिम्मत न होगी कि बलात् उस पर अपनी इच्छा का भार लाद दे या उससे जबरदस्ती करे।"

"जबरदस्ती की बात जाने दीजिए। स्त्री की अनिच्छा होने पर भी पुरुष उससे जबरदस्ती करते हैं। तो, उसका प्रतिकार करने की शक्ति स्त्रियों में आनी चाहिए, यह बात सच है, किन्तु इसके विपरीत यदि पति पत्नी की इच्छाओं की पूर्ति न करता हो, उससे विमुख रहता हो तो क्या करना चाहिए?"

"जब स्त्री-पुरुष विवाह के पवित्र-संबंध द्वारा सहयोगी बनते हैं, तब इस संबंध का अर्थ यह हुआ कि धर्म, अर्थ और काम तीनों सिद्धियाँ पारस्परिक प्रसन्नता और सहयोग से सिद्ध करें। इस कार्य में यदि एक पक्ष का भी विरोध हो तो दूसरे को उस पर किसी प्रकार की ज़बरदस्ती न करनी चाहिए। दोनों को परस्पर मन का परिचय पाना चाहिए और अवसर की राह देखनी चाहिए।"

सुनकर वृन्दा मन में कुछ बड़बड़ाई। मुकुन्द ने सोचा कि वह क्या करे? वार्ता का मूल विषय छोड़कर व्यक्तिगत चर्चा चलाए अथवा विषयान्तर करे, अथवा इसी विषय को चालू रखे? या उठकर यहाँ से चला जाए? यों वह अपने-आपमें उलझ रहा था कि इतने में वृन्दा ही वहाँ से चली गई, जोर से पैर पटकती और भारी मुँह फुलाए।

अब तो ऐसी घटनाएँ हफ्ते में दो-तीन बार होने लगीं। मुकुन्द बड़ी तत्परता और धैर्यपूर्वक अपना काम कर रहा था, परन्तु वृन्दा के अन्तर में जो ज्वालामुखी धधक रहा था उसकी वास्तविक कल्पना मुकुन्द को न हो सकी। वृन्दा के मन में यह देख-देखकर अत्यन्त आक्रोश, वेदना और ग्लानि उत्पन्न होती थी कि दूसरे तरुण पति अपनी पत्नी की जिस प्रकार प्रशंसा करते हैं, उस प्रकार मुकुन्द उसकी प्रशंसा नहीं करता, उसकी अभिलाषाओं को परखता नहीं। उसका सौन्दर्य और आकर्षक शृंगार पत्थर पर बहते पानी के रेले की तरह क्या व्यर्थ चला जाएगा? पश्चाताप की इस ज्वाला में मुकुन्द के संयमी वैराग्य ने घृत का काम किया। इसलिए पूछना क्या?

वृन्दा का अन्तरतम हुताशन की भाँति धकधक कर जलने लगा।

३८
चाँदनी रात

नीचे की मंज़िल और सामने के मकान में जो स्त्रियाँ रहती थीं, उनमें से कई तरुण विधवाएँ थीं और कुछ कालिज की लड़कियाँ थीं। ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, उनसे वृन्दा की जान-पहचान बढ़ती गई और उनका आवागमन भी शुरू हो गया। उनका आगमन वृन्दा को अच्छा लगता। अब तक उसकी कोई सहेली न थी, परन्तु कुछ दिनों बाद ही वह नई सहेलियों से पीछा छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी। उन स्त्रियों में उसे कई बुरी बातें नज़र आई। वह सोचती, यह स्त्रियाँ मेरे पति के विषय में ही बार-बार प्रश्न क्यों किया करती हैं? और जब वे घर होते हैं तभी क्यों ये छबीलियाँ चक्कर काटती हैं? और उन्हें सुनाई दे, ऐसी आवाज़ में, मीठा-मीठा बोलना; उन्हें आकर्षित करने के लिए अंग-भंगी और भाव-भंगिमा के नखरे करना, यह सब क्यों? और उसे मालूम हो गया कि मुकुन्द का स्वरूप नौजवान लड़कियों और स्त्रियों में सम्मोहन पैदा कर रहा है। वैसे स्वयं मुकुन्द इस विषय में एकदम अनजान था, यह भी वह जानती थी। मुकुन्द तो इस बात को जानने का प्रयत्न भी न करता था कि उसके घर कौन आता और कौन जाता है? लेकिन वृन्दा का नारी-हृदय अपनी इन सहेलियों की हरकतों से चिढ़ गया और अब वह उन्हें दूर रखने का प्रयास करने लगी। उसने प्रत्येक संभव युक्ति द्वारा आगंतुकाओं

में विष का बीज बोया और यों उनका आना-जाना बन्द कर दिया।

जब वृन्दा अपने पति को परायी स्त्रियों से दूर रखने का प्रयत्न कर रही थी, तब वह इस रहस्य से अनजान थी कि उसको फँसाने के लिए एक माया-जाल तैयार किया जा रहा है। सामने की खिड़की में एक युवा, जो अधिक संभव है कि किसी कालिज का विद्यार्थी था, निरन्तर खड़ा रहता और उसकी ओर ताकता रहता। जब कभी अनजाने वृन्दा की दृष्टि उसकी ओर चली जाती तो वह मुस्करा देता और भाँति-भाँति से अपने बालों में कंघी करता और गहरे निःश्वास छोड़ता। वृन्दा सुन सके, ऐसे स्वर में 'सहज कशी खेल-विते ललना' की कड़ी और ऐसे ही दूसरे गीत गाता। पहले तो यह सब वृन्दा के ध्यान में नहीं आया, परन्तु जब उस तरुण के लटके अपनी सीमा लाँघने लगे और उसकी अभिलाषा नग्न हो गई तो वृन्दा को उस पर अत्यधिक क्रोध आया—'मुए को शहर में कोई दूसरी जोरू नहीं मिल रही है शायद!'-यों बड़बड़ाकर उसने ज़ोर से किवाड़ बन्द कर दिए।

अब वृन्दा नई-नई साड़ियाँ पहन कर झरोखे में खड़ी रहकर, मधुर गाकर, बोलकर और ऐसे ही कई आकर्षणों का प्रयोग मुकुन्द पर करने लगी। लेकिन ये प्रयोग मुकुन्द को सम्मोहित करने में सफल न हुए और उलटे दूसरे लोगों को आकर्षित करने लगे। वृन्दा को अपनी इस स्थिति की गंध न आई। सामने वाले तरुण की बात छोड़ दें तो भी उस पर मोहित होने वाले लोगों की संख्या कम न थी।

एक ओर वैराग्यवान पति और दूसरी ओर अपने सुगंधित सौन्दर्य और गहगहे यौवन का प्रभाव दूसरों पर पड़ता देख, वृन्दा के मन में अत्यन्त व्यथा होने लगी। लेकिन उसे कोई मार्ग न मिला।

बड़ौदा का दशहरा और इस वर्ष की शानदार सवारी वृन्दा ने आज पहली बार देखी। यह दृश्य देखकर वह चकित रह गई। इसमें उसे वैभव के प्रत्यक्ष दर्शन हुए और कल्पनालोक में वह विचरने लगी कि मानों स्वयं भी कीमती पोशाक पहने रत्नालंकारों से आभूषित सोने के हौदे में बैठी, जुलूस में जा रही है।

उस दिन उसकी धर्मान्ध और विलासिनी सहेलियाँ बढ़िया परिवेश पहने अपने-अपने पतियों के साथ सुन्दर सवारियों में बैठकर जुलूस में जा रही थीं। उसे आश्चर्य था कि यद्यपि वह सुन्दर और आकर्षक है और उसका पति भी उसे शोभा दे, ऐसा है, तथापि उसे सच्चे सुख का अनुभव नहीं होता! फिर भी वह अपने हृदय का भेद किसी से कहती न थी, क्योंकि उसका विश्वास था कि स्त्रियाँ बड़ी चालाक होती हैं। कल्पना के घोड़े दौड़ाने में कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता।

वृन्दा की एक सहेली ने उससे कहा—"वृन्दा, तेरा यौवन और सौन्दर्य ओझल होता जा रहा है। तू इतनी सुस्त क्यों? तेरे पतिदेव कुछ नहीं करते? यदि तुझे सांसारिक सुख से वंचित रखना था, तो फिर ब्याह ही क्यों किया? एक बार उनसे पूछ तो सही।"

और ऐसी ही एक दूसरी कहने लगी—"आज 'गरबा-रास' का अन्तिम दिन है गरबा पूरा होने पर वे मेरे साथ शहर के बाहर एक बगीचे में जाने वाले हैं तुझे कैसे बताऊँ चाँदनी रात में बगीचे में कैसा मज़ा आता है।" इस प्रकार कोई कुछ, कोई कुछ कहकर वृन्दा की मनोवृत्ति को विलास की ओर भड़काने में योग देने लगी। वृन्दा अस्वस्थ हो गई।

वृन्दा ने रात में शृंगार किया। गले में फूलों की माला पहनी, हाथों में कलियों के गजरे बाँधे और दर्पण के सामने खड़ी हो गई। कितनी सुन्दर! अपना रूप देख-देखकर उसे अपूर्व आनन्द हुआ, फिर कुछ निश्चय करके वह छत पर गई।

छत पर मनोहारिणी ज्योत्सना नृत्य कर रही थी। आकाश निरभ्र था और शशि अपनी सोलह कलाओं में खिला था। दूसरों की अपेक्षा वृन्दा का मक़ान कुछ ऊँचा था, इसलिए छत पर शान्त, एकान्त का साम्राज्य था। दूर-दूर से गायन-वादन की मधुर ध्वनियाँ आ रही थीं। मुकुन्द एक ओर ध्यानस्थ बैठा था। उसने भी दशहरे की सवारी देखी थी, लेकिन सवारी की शान से उसके मन पर कोई प्रभाव न पड़ा था, उलटे उसकी दृष्टि में एक दूसरा

आस्था सराहनीय है, लेकिन मैं तो तुम्हें सदा की अपनी सादी वेश-भूषा में देखने का इच्छुक हूँ। जाओ, पहले जैसी थी, वैसी ही बनकर वापस आओ।"

लेकिन, वृन्दा तो आज वापस लौटने के लिए नहीं आई थी। मुकुन्द कुर्सी पर बैठा है, यह देखते ही वह उसके पास घुटनों के बल बैठ गई। इसके बाद उसने मुकुन्द के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये।

अधिक वह कुछ न बोली। लेकिन उसके हृदयस्थ भावों को उसके नेत्र उजागर कर रहे थे। उसकी यह दशा देखकर मुकुन्द को दया आई। सो, वृन्दा के सुन्दर केशों पर अपना हाथ स्नेहपूर्वक फिराते हुए मुकुन्द ने कहा—"जाओ, प्रिये, जाओ! व्यर्थ मन को पीड़ा न दो। इस भाँति तुम पर मेरा प्रेम बढ़नेवाला नहीं।"

यह सुनकर वृन्दा ने मुकुन्द के घुटनों पर अपना सिर टिका दिया और सिसकने लगी। "कौन जाने मुझ पर आपका प्रेम है या नहीं?" गद्गद कंठ से उसने कहा।

"लेकिन यह जानने के लिए, तुमने यह कुमार्ग अपनाया है, यह तो मैं कहूँगा ही।"

वृन्दा ने सिर ऊँचा किया और उसकी ओर तीव्र दृष्टि डालकर पूछा—"क्या मैं तुम्हारी पत्नी नहीं?"

"कौन कहता है, नहीं? यह क्या मैं नहीं जानता? हाँ तुम मेरी पत्नी हो।"

"तो फिर क्यों कहते हो, कि मैंने यह कुमार्ग अपनाया है?"

"तुम ऐसा श्रृङ्गार सजाकर यहाँ क्यों आई?"

"लेकिन तुम्हारे ही पास तो आई हूँ?" क्या पत्नी अपने पति के सामने श्रृङ्गार नहीं कर सकती?"

"नहीं, कदापि नहीं।" मुकुन्द ने दृढ़ता से कहा—"स्त्री पुरुष की पत्नी है, तो इसका यह अर्थ नहीं कि वह उसकी भोग्या है। पत्नी को अपनी देह की बिक्री नहीं करना है। तो फिर इस प्रकार का श्रृङ्गार सजाकर मोह उपजाने की क्या जरूरत?"

"तुम प्रेम को मोह समझते हो?" वृन्दा क्रुद्ध होकर बोली।

"तुम व्यर्थ ही क्रुद्ध हो रही हो। जरा शान्त हो जाओगी तो मेरा कहा समझ में आ जाएगा।"

"मुझे नहीं सुनना और समझना। जब देखो तब लम्बे-लम्बे भाषण बघारते हो। मेरी प्यास बुझाते नहीं और तत्वज्ञान के रूखे पकवान पकाते हो। यह मैं कैसे बर्दाश्त कर सकती हूँ? सचमुच मेरे मन की सभी खुशियाँ मर गई हैं। यदि मैं तुमसे भी सुख की आशा न रखूँ तो फिर किससे रखूँ?"

"लेकिन सुख किसे कहते हैं, बताओगी?"

"इसमें बताने जैसा क्या है? अपने मन को जिस चीज से सुख मिलता है, वही सुख। इस दुनिया में इतने दम्पति घूमते हैं, किसी को किसी दिन ऐसा प्रश्न नहीं सूझा, केवल तुम्हीं को क्यों सूझता है?"

"ठीक तो है, लेकिन तुम कह सकती हो कि हम दोनों को एक ही वस्तु से सुख मिलता है?"

"हाँ।"

"तो तुम हमारे संबंध में इतना जान लो कि जिन बातों से, चीजों से, तुम्हें सुख मिलता है, उनसे मुझे नहीं मिलता।"

"फिर आपने मुझसे ब्याह क्यों किया?"—वृन्दा ने चिढ़कर कहा।

"उस समय मेरी यह कल्पना न थी और आज भी नहीं है कि मेरी पत्नी शृङ्गार की दासी बनेगी। मेरे लिए तो अपनी पत्नी यानी देवी, सखी, परामर्शदात्री और गुरु—यही मेरा स्वप्न था। ऐसी ही पत्नी की मुझे आवश्यकता थी और आज भी मैं उसकी ओर इसी दृष्टि से देख रहा हूँ और इसीलिए ऐसी इच्छा रखता हूँ कि वह अपने पतन के मार्ग पर न जाए। आज भी मैं उसे चेतावनी के रूप में यही सूचना देना चाहता हूँ। जब तुम स्वेच्छा से अपना यौवन और सौन्दर्य मुझे अर्पण करती हो, तब उसमें तुम्हारा और मेरा पतन निहित है—यही जानकर मैं भयग्रस्त हूँ और इसलिए मैं तुमसे विनती करता हूँ कि यह लटके छोड़ दो और अपनी वास्तविक स्थिति में आ जाओ।"

वृन्दा की आँखों में से आँसू बहने लगे—"आप जब-तब पतन-पतन

क्यों बकते रहते हैं ? क्या मैं आपको व्रत-भ्रष्ट कर रही हूँ ? क्या मैं वेश्या हूँ ?"

वृन्दा की पीठ पर प्रेमपूर्वक हाथ फेरकर मुकुन्द ने कहा—"यों टेढ़ी-टेढ़ी क्यों जाती हो ? वृन्दा, अपने धर्म से च्युत होना ही पतन कहलाता है। मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि तुम विकारों के वशीभूत न हो। आज तक लोगों की यह धारणा रही है कि पति-पत्नी परस्पर विकारों का सेवन और पोषण करें, किन्तु यह धारणा भ्रमपूर्ण है। दम्पति का पारस्परिक विकार भी अनुचित है। विकृत भावना ही पतन का कारण है।"

"यानी, जिनके बच्चे हो गए हैं, वे सब दम्पति पतित हुए हैं और नरक में जाएँगे, क्या आप यही कहना चाहते हैं ?"

"यदि ऐसे बालक, विकार के प्रतिफल हैं, तो मैं तो अवश्य पतन ही मानूँगा। रूढ़ि के अनुसार दम्पति पति-पत्नी भले हों। तथापि विकृत संबंध ईश्वर की दृष्टि में एक प्रकार का पाप और अपराध है।"

"तो क्या पत्नी को बच्चों की कामना न रखनी चाहिए ?"—वृन्दा ने करुण स्वर में पूछा।

मुकुन्द ने उसकी आँखों से आँखें मिलाकर, उसकी ओर देखा और धीमे स्वर में कहा—"वृन्दा, सच बता दो, क्या तुम्हें सन्तान की इच्छा होती है ?"

वृन्दा ने मुँह नीचा कर लिया। फिर धीमे-धीमे जवाब दिया—"नऽऽहीं।"

मुक्ति की साँस लेकर मुकुन्द बोला—"सचमुच तुमने मेरे सिर का भार हल्का कर दिया। जिस प्रकार तुम्हें सन्तान की चाह नहीं उस प्रकार मुझे भी नहीं। अब महत्वपूर्ण बात यही है कि यदि सन्तति की इच्छा न होते हुए भी हम विषय-सेवन करते हैं तो ऐसा विषय-समागम पाप-पूर्ण एवं विकार-जन्य होता है, और ऐसे विकृत समागम को मैं अधःपतन का मूल कारण मानता हूँ। कुछ समझीं ? जब हम दोनों के मन में सन्तान की कामना उत्पन्न होगी, तब हम ब्रह्मचर्य की मर्यादा से परे जाएँगे, लेकिन तब तक तो हमें इस मर्यादा का पालन करना ही चाहिए, अन्यथा हमारा काम पाप बन जाएगा।"

वृन्दा ने कुछ न कहा, लेकिन उसका हृदय निदारुण निराशा से भर गया। उसका सिर चकराने लगा और गला सूख गया।

प्रशान्त अम्बर में चाँद मुस्करा रहा था। वृन्दा के अन्तर में असह्य वेदना-ज्वार उठ रहा था। मुकुन्द पाषाण स्तंभवत् स्थिर बैठा था और शापहत रंभा-सी वृन्दा उसकी कुर्सी से कुछ दूर अचल बैठी थी।

कुछ देर बाद वृन्दा का सिर घूमने और चक्कर खाने लगा, मानो अखिल जगत उसके आसपास गोल-गोल घूम रहा है, उसे यह प्रतीत होने लगा। उसने चाहा कि कसकर अपना सिर थाम ले, परन्तु उसके हाथ इतने निर्बल प्रतीत हुए कि उठ न सके।

उसे 'फिट' आ रहा था। और उसके लिए यह एक नया अनुभव था। छाती में आग का गोला उठ रहा था। 'पानी' उसकी इच्छा हुई कि पुकार कर कहे, परन्तु जीभ तलवे से चिपक गई थी। उसे इस स्थिति में उठाकर मुकुन्द कब उसे नीचे लाया, और कब उसे पलंग पर सुला दिया, उसे कुछ भान न था।

एक घंटे तक मुकुन्द उसका उपचार करता रहा, तब उसने आँखें खोलीं, देखा कि माथे से पसीने की बूँदें चू रही हैं और मुकुन्द अपना कोमल हाथ उसकी देह पर, बड़े प्रेम से फेर रहा है।

३९

सुमति का आगमन

उस रात की विचित्र घटना के बाद वृन्दा कई दिन तक शान्त-मौन रही। उसके मन में प्रसन्नता का प्रवेश ही न होता था। उसकी उदासीनता का प्रभाव उसकी देह पर और समग्र रूप में उसके सारे व्यवहार और वर्तन पर नजर आने लगा।

और इसके बाद मुकुन्द ने उस रात्रि की कभी चर्चा न की। उलटे वह वृन्दा का अधिक ध्यान रखने लगा। जिस प्रकार कोई वात्सल्यमयी माता अपने प्राणों की अपेक्षा अपने शिशु को अधिक सुरक्षित रखती है, उसी प्रकार मुकुन्द वृन्दा का ध्यान रखता था। परन्तु वृन्दा को माँ की जरूरत न थी, उसे मुकुन्द का यह व्यवहार और भी अधिक खलने लगा।

इन्हीं दिनों दीवाली की छुट्टियों में सुमति हैदराबाद जा रही थी कि मुकुन्द के आग्रह को स्वीकारकर वह बड़ौदा उतर गई। उसके आगमन से मुकुन्द को अतिशय आनन्द हुआ और वृन्दा के एकान्तप्रिय जीवन में तीन दिनों के लिए चेतना आ गई। सुमति ठीक वक्त पर आई, जब कि उसकी बड़ी जरूरत थी। मुकुन्द ने ईश्वर का आभार माना।

आते ही सुमति अपने स्वभावानुसार दोनों से हिलमिल गई। उसने अमरावती के अपने विविध अनुभवों का दिलचस्प वर्णन किया। मध्य-प्रान्त

की राजनीतिक अवस्था की चर्चा की। राष्ट्रीय शिक्षा, सामयिक साहित्य, सहेलियों के साथ सैर-सपाटे, और ऐसे ही मनोरंजक वर्णन सुनाकर उसने वृन्दा और मुकुन्द के उस उदासीन मठ को खुशी से भर दिया। लेकिन, यह खुशी सिर्फ मुकुन्द के अनुभव में ही आई। वृन्दा अभी भी अपनी मानसिक मूर्च्छना में पड़ी थी।

लेकिन सुमति चतुर थी और उसने जल्दी ही जान लिया कि वृन्दा पहले की अपेक्षा अधिक दुबली है, और अब अधिक उदासीन है। पहले तो वह गम्भीर ही थी, परन्तु अब तो उसके सुन्दर चेहरे पर विषाद की छाया पड़ गई है, और आँखों की चमक मर गई है।

इसे क्या हो गया है—सुमति मन-ही-मन विचार करने लगी—शादी की इसे चाह थी, शादी हुई। स्वच्छंदता की भूख थी, वह मिटी। पैसा भी खूब है, फिर यह अवसन्नता और उदासी क्यों? और मौन तो मानो इसका जीवन-सहचर बन गया है। इसके बाद सुमति ने वृन्दा के मन का भेद और उसका दुःख जान लेने का प्रयत्न किया, लेकिन वृन्दा तो पहले की बनिस्बत अब अधिक आड़ी-तिरछी जाने लगी। उसका दुराव बढ़ गया। सुमति को उसका यह भेदभाव कुछ समझ में न आया। और यों ही दो दिन हाथ से निकल गए। सो, मुकुन्द से पूछ लेने का सुमति ने निश्चय किया।

तीसरे दिन रविवार था। मुकुन्द की छुट्टी थी। दोपहर में भोजन के उपरान्त वृन्दा जब विराम लेने के लिए लेट गई तो अवसर देख, सुमति मुकुन्द के पास गई और उसने सीधा सवाल किया—"यह सब क्या है? वृन्दा इतनी उदास और अनमनी क्यों दीखती है?"

"उसी से पूछ लो।"

"पूछ देखा है। लेकिन उसके मनोसागर की थाह नहीं मिलती। सचमुच मुझे तो उसके उदास और अनमनी रहने का कोई कारण दृष्टिगोचर नहीं होता।"

"बाहर से सबको ऐसा ही लगता है, परन्तु ऐसी बात नहीं है। आन्तरिक कारण मैं भली-भाँति जानता हूँ और तुम्हें बताए देता हूँ।"

यों कहकर मुकुन्द ने सारी रामायण सुना दी, जिसे सुनकर सुमित के विस्मय का पार न रहा और उसने पूछा—"तुम यह सब सच-सच कह रहे हो।"

"हाँ, क्या तुम्हें इसमें आश्चर्य है ?"

"अब मैं तुम्हें क्या कहूँ ? तुम्हें तो एक प्रकार का हठ लग गया है, दूसरा कुछ नहीं।" सुमति मानों उलहना दे रही है—"यह तुम्हारा आदर्शवाद कैसा विचित्र है, कुछ तो व्यावहारिक बनो।"

"तुम भी यों कहोगी, ऐसा मेरा अनुमान न था। तुम ही बताओ, एक बार तथ्यातथ्य का विवेक और मर्यादा छोड़ देने पर मनुष्य में मनुष्यत्व कैसे रह जाएगा ?"

"पत्नी को समान अधिकार मिलने चाहिए, तुम्हारी इस हिमायत को मैं समझ सकती हूँ, लेकिन गृहस्थाश्रम में रहकर ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करने की तुम्हारी बात मेरे गले नहीं उतरती। और यदि एक बार मान भी लें तो यह व्यवहार सिर्फ उच्च विचारों के चन्द दम्पतियों में सम्भव है। फिर भी आदर्श और व्यवहार का कोई मेल तो बैठाना चाहिए। अब कोई दिन अवधि और समय निश्चित करो और तुम दोनों किसी समझौते पर आ जाओ।"

"सत्य में किसी प्रकार का समझौता नहीं होता सुमति बहन ! समझौता हुआ कि समझो पतन हुआ।"

"और सिद्धान्त का पालन ठीक-ठीक न होने पर भी, व्यक्ति का पतन नहीं होता है, क्या आप इस बात को लिखकर दे सकते हैं ?"

"तत्व की खोज करनेवाले श्रद्धालु का, अपनी निर्बलता के कारण संभव है पतन हो जाए, फिर भी मैं तो उसे पतन न कहूँगा। तत्व ही अन्त में उसका उद्धार करेगा। अन्त में उसे अन्धकार में से प्रकाश में ले आएगा।"

"अब आप ऐसा दर्शन परे फेंक दीजिए। आप अपनी बात करते हैं, लेकिन वृन्दा की स्थिति एकदम अलग है। उसके संस्कार जुदी जात के हैं। उसे यह सब कैसे पसन्द आ सकता है ?"

"मैं अपने सहयोग से उसे इस दिशा में ले जाऊँगा।"

"तुम जो सहयोग दोगे, वह अनावश्यक और निरर्थक सहयोग होगा और उसके मन ने विद्रोह किया तो? आप खुद ही तो कहते थे उसे 'फिट' आते हैं, अब उसे 'हिस्टीरिया' होने में अधिक देर नहीं लगेगी।"

"ईश्वर करे, ऐसा न हो, लेकिन ऐसा हो भी गया तो मैं उसे भी सहन कर लूँगा। वृन्दा की सेवा-सुश्रूषा करने और उसकी शारीरिक और मानसिक व्याधि के उपचार में उसकी मदद के लिए मैं सदैव तैयार रहूँगा।"

"कहना आसान है, लेकिन प्रत्यक्ष परिस्थिति पर व्यक्ति का वर्चस्व नहीं रहता। यदि स्त्री पर अतिशय मानसिक भार पड़ता है तो वह पागल हो जाती है। मैंने ऐसी कई घटनाएँ देखी हैं।"

"सुमति बहन, भविष्य में क्या होगा, और क्या न होगा यह तर्क अभी से करने से क्या लाभ? मैंने यह जान लिया है कि मेरा कर्तव्य क्या है सो अब कैसी भी प्रतिकूल परिस्थिति क्यों न आए मैं अपने कर्तव्य-धर्म का त्याग न करूँगा। फल की ओर मैं ध्यान क्यों दूँ? लेकिन इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि मैं वृन्दा के प्रति कठोर हूँ अथवा उसकी ओर दुर्लक्ष रखता हूँ। मैं तो अपने प्रेम को निरन्तर शुद्ध रखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। इस समय उसका मन विकारों से भरा है, किन्तु ज्यों-ज्यों मेरी शुद्धि होगी त्यों-त्यों उसका हृदय-परिवर्तन भी होता जाएगा। मुझे इस विश्वास के विरुद्ध तनिक भी शंका नहीं कि वृन्दा का हृदय परिवर्तन होगा और अन्त में वह खुद मेरी साधना में सहयोगिनी होगी।"

यद्यपि सुमति को मुकुन्द की सिद्धान्त-प्रियता और उसके पक्ष में उसके तर्कों के विषय में उसे कोई शंका न थी, परन्तु उसने महसूस किया कि इस बारे में मुकुन्द में व्यावहारिकता का अभाव है। दूसरा आश्चर्य उसके लिए यह था कि वृन्दा-जैसी सुन्दर और तरुणी ललना एकान्त में पास रहते हुए भी, ऐसे सुखी समय में मुकुन्द का मन तनिक भी विचलित नहीं होता है! तब सुमति ने सोचा कि इस बारे में मुकुन्द से तर्क-वितर्क करके प्रस्तुत समस्या का निदान नहीं पाया जा सकता, क्योंकि मुकुन्द किसी सिद्धान्त को छोड़कर तनिक भी छूट देने को तैयार न था। लेकिन, ऐसी हालत में वृन्दा का क्या होगा, यह प्रश्न सुमति के मन में बार-बार उठने लगा।

सुमति से मुकुन्द ने नई बात सुनी। रमा काकी के पुत्र हुआ था और उसका नाम अविनाश रखा गया। विलायत से लीलाधर के पत्र उसके नाम आ रहे थे। लीलाधर अप्रैल महीने में स्वदेश लौट रहा है।

और मुकुन्द ने भी सुमति को एक नई बात बताई—चन्द्रशेखर के सेठ ने उसकी नियुक्ति बड़ौदा विभाग में कर दी थी। ये सेठ जिस बीमा कम्पनी के डायरेक्टर थे, उस कम्पनी के आर्गेनाइजर के रूप में चन्द्रशेखर बड़ौदा रहने वाला था, अतएव आगामी जनवरी में चन्द्रशेखर बड़ौदा रहने के लिए आने वाला था। किन्तु सुमति को यह सूचना पसन्द न आई। चन्द्रशेखर ने उसे यह सूचना नहीं दी थी। विवाह के प्रस्ताव को जब सुमति ने ठुकरा दिया तो चन्द्रशेखर से उसका पत्र-व्यवहार बिल्कुल बन्द हो गया था, लेकिन इसमें सुमति का क्या कसूर ?

४०

वृन्दा की अस्थिरता

मुकुन्द ने तय किया कि वह उदास और मौन रहनेवाली वृन्दा को खुशी के लिए छुट्टी के पिछले दिनों यात्रार्थ कहीं ले जाएगा।

इसके बाद वह उसे लेकर निकल पड़ा और दोनों ने आबू तथा गिरनार की यात्रा की। पर्वतमाला के सुरम्य वातावरण और स्थान-परिवर्तन के कारण वृन्दा का जी कुछ हल्का हुआ। उसका हृदय आनन्दित हुआ और मुकुन्द ने इन दिनों उसकी सेवा भी कुछ कम न की।

मुकुन्द की लगन और ममता देखकर वृन्दा को अपने विचित्र व्यवहार पर लज्जा आने लगी। और अब वह सदैव प्रसन्न और खुश-खुश रहने की कोशिश करने लगी। प्रवास में मुकुन्द वृन्दा के जलपान और चाय की स्वयं फिक्र रखता। वृन्दा ने भी चाय छोड़ दी और कम-से-कम पीने का निश्चय किया।

अब वृन्दा मुकुन्द से हँसने-बोलने लगी और उसके आदेशों का यथावत् पालन करने का प्रयत्न करने लगी। और ऐसे वातावरण में बीच-बीच में वह मुकुन्द के मनोनुरूप मीठी और प्रेमल बातें करने लगी। जब वह भोजन बनाती तो इस बात का ध्यान रखती कि कौन से व्यंजन मुकुन्द को किस रूप में पसन्द हैं। वृन्दा का यह परिवर्तन देखकर मुकुन्द बहुत खुश हुआ। परन्तु साथ ही उसे शंका हुई कि वृन्दा मात्र भावनावश अथवा मेरे संतोष के लिए यह सब

कर रही है, जो उसे न करना चाहिए। और इस प्रतीति के साथ वह इस प्रयत्न में रहता कि वृन्दा के भावावेश को सीमित एवं नियन्त्रित रखा जाए।

यात्रा पूरी होने पर दोनों बड़ौदा आए और पहले की तरह रहने लगे। लेकिन यहाँ आकर वृन्दा उसी विषमय वातावरण में पड़ गई और उसका मन क्षुब्ध रहने लगा। उसमें फिर अस्थिरता आ गई। उसकी सहेलियाँ प्रतिदिन आतीं और उसे टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर ले जातीं। यदि वृन्दा ने साहसपूर्वक उनसे संबंध तोड लिया होता तो उसके मन को इतना कष्ट न होता और उसकी सहेलियों को उसे बहकाने का मौका भी न मिलता; लेकिन वृन्दा ने यह न किया और न उसे ऐसी युक्ति ही सूझी। दूसरे, वह बाहर की बातें मुकुन्द को न बताती थी, इसलिए उसे मुकुन्द की सलाह का लाभ भी न मिल सका। ज्यों-ज्यों उसका ऋतुकाल निकट आता वह विक्षिप्त-सी हो जाती। उसका मन चंचल और भ्रमित होता। रजोदर्शन से पहले और बाद के चार-चार दिन उसे अतिशय मानसिक पीड़ा होती। फिर भी जाने क्यों उसने यह बात मुकुन्द को न बताई, लेकिन मुकुन्द ने अपनी तर्क-बुद्धि से वृन्दा का यह सन्ताप पहचान लिया। और इसमें से निकलने के लिए उसे कुछ प्राकृतिक उपचार बताए। किन्तु वृन्दा उन उपचारों और उपायों का प्रयोग करे, तब न!

नतीजा यह निकला कि उसे फिर से 'फिट' आने लगे और इस बार 'फिट' का दौर बड़ी देर तक रहा। मुकुन्द ने उसकी बड़ी सेवा की और ज्यों-त्यों कर इस विपदा से पार पाया। लेकिन उसने यह जान लिया कि वृन्दा को वायु-परिवर्तनार्थ बाहर ले जाना जरूरी है। यहाँ रहने से ही उसका मन भ्रमित होता है। बड़े दिन की छुट्टियाँ समीप आ गई थीं और इन्हीं दिनों बेलगाँव काँग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। इस अधिवेशन के सभापति महात्मा गाँधी बनने वाले थे। मुकुन्द को लगा कि यही उचित अवसर है। वृन्दा का वायु परिवर्तन भी होगा और संभवतः काँग्रेस के राष्ट्रीय वातावरण में उसके हृदय में देश-भक्ति के भाव भी उदित होंगे। उसने वृन्दा के सामने अपना प्रस्ताव रखा। उसने तत्काल बेलगाँव जाना स्वीकार किया। यों उसे सभा, सोसायटी में जाना पसन्द न था, परन्तु काँग्रेस का यह अधिवेशन उसे आकर्षक प्रतीत हुआ।

दोनों बेलगाँव पहुँचे। काँग्रेस का शानदार प्रदर्शन, महापुरुषों के दर्शन और बेलगाँव के समग्र राष्ट्रीय वातावरण का वृन्दा के मन पर अनुकूल असर पड़ा। उसने प्रदर्शनी में से खादी के कुछ कपड़े और एक चरखा खरीदा। तनिक परिश्रम कर उसने कातना सीख लिया और अब तो वह स्वयं ही चरखा चलाने लगी। मुकुन्द इन परिवर्तनों को गौर से देख रहा था। वृन्दा के प्रत्येक प्रयत्न के प्रति उसके मन में सहानुभूति थी। वह स्वयं भी यथाशक्य सहयोग दे रहा था। उसने अधिवेशन के भाषण, प्रस्ताव और चर्चाओं के विषय में वृन्दा को बहुत-कुछ समझाया। यों इस महान अधिवेशन में उपस्थित रहकर दोनों दम्पति बड़ौदा लौट आए।

बड़ौदा लौटने के दूसरे ही दिन शाम के वक्त उनके दरवाजे के सामने एक सुन्दर मोटरकार आकर खड़ी हुई। उसमें से अप-टु-डेट सूटवाला एक नौजवान नीचे उतरा और जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ चढ़कर वह ऊपर आ पहुँचा। ज्योंही वह कमरे में प्रविष्ट हुआ कि तुरन्त ही सर्वत्र पेरिसियन सेंट की तेज खुशबू फैल गई। उसने हाथ फैलाकर मुकुन्द को गले लगाया और बोला—"हलो मुकुन्द, ओल्ड बॉय, क्या हालचाल हैं?"

मुकुन्द ने मुस्कराकर कहा—"सब ठीक है। मुझे देखने पर यह सवाल तुम्हें करना ही न चाहिए, चन्द्रशेखर!"

इसके बाद चन्द्रशेखर ने अपने सीने तक सिर झुकाकर वृन्दा को नमस्कार किया और पूछा—"क्यों वृन्दा बहन! इस गरीब को भूल तो नहीं गई?"

वृन्दा चन्द्रशेखर का ऐसा रौबदार प्रदर्शन और शानदार सूट देखकर विस्मित खड़ी थी और बारम्बार उसे देख रही थी। पूना में चन्द्रशेखर से पहचान होने पर वृन्दा पर उसकी पूरी छाप पड़ी थी। फिर तो मुकुन्द को नौकरी दिलाई थी चन्द्रशेखर ने। इसलिए प्रत्येक प्रकार से वृन्दा के मन में इस नौजवान के प्रति आदर-भाव भरा था।

अतएव उसने चन्द्रशेखर के प्रश्न का उत्तर जरा लजाकर दिया—"पहचानती क्यों नहीं?"

इसके बाद इधर-उधर की गप्पें शुरू हुई। चन्द्रशेखर कई फालतू बातों को नमक-मिर्च लगाकर भली-भाँति पेश करने में सिद्धहस्त था। इसके उपरान्त उसकी वेशभूषा और ठाठबाट भी विशेष रूप से आकर्षक था। वृन्दा कछ देर मुकुन्द को, कछ देर चन्द्रशेखर को ताकती रहती। उसे लगा कि मुकुन्द चाहे जितना सुन्दर हो परन्तु चन्द्रशेखर के सामने एकदम फीका लगता है।

वृन्दा चाय ले आई। चन्द्रशेखर ने उसकी व्यवहार-कुशलता की प्रशंसा की। घर की सजावट और व्यवस्था-विषयक वृन्दा की चतुराई का उसने बखान किया। इसके बाद उसने कई सुन्दर चीजें उपहार में दीं, जिन्हें उसने उत्तर की अपनी यात्रा में खरीदा था। उपहार पाकर वृन्दा के नेत्र खुशी से फैल गए। उसका हृदय हर्ष से भर आया। लेकिन मुकुन्द यह सब देखकर मुस्करा रहा था। पर वह चुप रहा।

चाय पी लेने पर चन्द्रशेखर ने आग्रहपूर्वक कहा—"मैं रावपुरे में रहता हूँ। आज तुम दोनों मेरी कुटिया में चलो। मैं तुम्हें बुलाने के लिए ही आया हूँ; नीचे मोटर तैयार खड़ी है।"

वृन्दा तो वहाँ जाने के लिए रजामन्द थी ही। चन्द्रशेखर के आग्रह पर मुकुन्द भी अन्ततया राज़ी हो गया।

चन्द्रशेखर की सुन्दर कार में बैठकर जाते वक्त वृन्दा का मन विचलित होकर कल्पना के झूले पर झूलने लगा—"ऐसी मोटर यदि प्रतिदिन मिले, तो कैसा मजा आए!"

विश्वामित्री नदी का पुल पारकर कुछ ही देर में चन्द्रशेखर की कार उसके बँगले के सामने आकर खड़ी हो गई। बँगले के आसपास सुन्दर बगीचा था जिसमें कई प्रकार के फूल खिल रहे थे। बँगले का भीतरी भाग विलायती ढंग से सजा हुआ था। इस आवास के बाहर-भीतर का वैभव देखकर वृन्दा का मन अधिक विचलित हुआ और लालसाओं के झटके खाने लगा—"इन दोनों मित्रों में कितना अन्तर है।" और वह मन-ही-मन दोनों की तुलना करने लगी।

चन्द्रशेखर ने दोनों की बड़ी आवभगत की। लेकिन मुकुन्द पर इसका

कोई प्रभाव न पड़ा। उसने चन्द्रशेखर से दफ्तर के बारे में कुछ बातें कीं और बेलगाँव काँग्रेस के अपने अनुभव बतलाए। देश की वर्तमान परिस्थिति पर भी उसने अपने विचार व्यक्त किए। बीच-बीच में वह वृन्दा को भी बोलने का अवसर देता था।

तत्पश्चात् चन्द्रशेखर ने वृन्दा की ओर देखकर व्यंग्यपूर्वक कहा—"अब तो आप भी खादीधारी बन गई हैं।"

वृन्दा कुछ शरमा गई और संकोचपूर्वक बोली—"हम प्रदर्शनी में गए थे, तब कुछ खादी खरीद लाए।" उसे यह जानकर बड़ी लज्जा आई और अपने प्रति ग्लानि का पार न रहा कि चन्द्रशेखर उसके खादी पहनने पर उसका उपहास कर रहा है और वह पछताने लगी—'यह खादी पहनने की दुर्बुद्धि मुझे कहाँ से सूझी?'

चन्द्रशेखर ने दूसरा प्रश्न किया—"और अब तक चाय का बहिष्कार तो नहीं किया?"

वृन्दा ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं!" परन्तु यह कहते हुए उसने मुकुन्द की तरफ देखा। अब तक जब-जब उसके बोलने का मौका आता, वह स्वभावतया मुकुन्द की ओर देखती। मुकुन्द ने वृन्दा की यह अस्थिर मनोदशा और विचलित स्थिति परख ली। लेकिन वह इसलिए चुप रहा कि कहीं वृन्दा को संकोच न हो। इस प्रकार उसने वृन्दा को वाणी, विचार और व्यवहार की पूरी-पूरी आजादी दे दी और चन्द्रशेखर से पूछा—"अन्त में तुमने अपनी मर्जी पूरी की।"

"कौन-सी मर्जी?"

"पैसा कमाने की। यही तो तुम्हारा ध्येय था।"

"ठीक है, पैसा कमाते हुए मुझे किसी बात का अफसोस नहीं, क्योंकि तुम बड़े-बड़े आदर्श सामने रखनेवाले लोग ही पक्के धोखेबाज़ हो। यह मैं अपने अनुभव से कहता हूँ। ऐसे आदमी खुद भी अपने ध्येय तक नहीं पहुँच सकते और अपने साथियों को भी भँवर में फँसा देते हैं। महात्माजी का ही उदाहरण लें। एक साल में स्वराज्य ले लेने की उनकी बात हवा हो गई और उन्होंने

व्यर्थ ही सारे देश को परेशान कर दिया। इसकी अपेक्षा तो हमारा व्यापार अच्छा। और हम अच्छे। किसी के बन्धन में तो नहीं। यदि सुख भोगना होता है तो हम भोग लेते हैं और दुःख भोगने का अवसर आने पर किसी दूसरे व्यक्ति को उसमें भागी बनाकर घसीटते नहीं। क्यों वृन्दा बहन, ठीक कह रहा हूँ न ?"

वृन्दा को उसका कथन अक्षरशः रुचिकर प्रतीत हो रहा था और अब चन्द्रशेखर भी अपने इस प्रभाव को पहचान रहा था। इतने में चन्द्रशेखर का बटलर चाय, बिस्कुट, केक वगैरह लेकर आया। मुकुन्द ने फल के सिवाव दूसरी कोई चीज न ली और चन्द्रशेखर की वक्रोक्तियों को चुपचुप सह लिया। इस प्रकार उनकी प्रथम भेंट सम्पन्न हुई।

इस घटना के बाद मुकुन्द के एकान्तप्रिय-जीवन में धीरे-धीरे अन्तर आने लगा। बड़ौदा में उसके प्रेमीजन कुछ कम न थे, तथापि उसके घर आने-जाने वाले तो बहुत ही कम थे। कोई आता तो बाहर से ही बात करके चला जाता। परन्तु इधर घर के चारो कोनों में चन्द्रशेखर का प्रवेश हो गया था। और वह इसका फायदा उठा रहा था। यों तो वह सिर्फ छुट्टी के ही दिन आता था, परन्तु जब भी आता अपने अस्तित्व और प्रभाव की झलक दिखाए बिना न रहता—यह बात सच थी।

४१
विलास और सेवा

और कई सप्ताह बीत गए। अब वृन्दा के चेहरे पर लालिमा नजर आने लगी। उसके कपोलों पर कुंकुम और गुलाब की आभाएँ झलकने लगीं। मुकुन्द को नाटक-सिनेमा का शौक बिल्कुल न था, इसलिए वृन्दा को अपनी इच्छा दबाकर रखनी पड़ती थी। लेकिन बड़ौदा आने के बाद चन्द्रशेखर उन्हें कई बार सिनेमा ले गया था, जहाँ मुकुन्द चुपचुप बैठा फिल्म देखा करता और वाचाल चन्द्रशेखर की बकझक चलती रहती। बात सिर्फ इतनी ही थी कि वृन्दा को उसकी बोलचाल पसन्द थी।

और अब तो चन्द्रशेखर की कार भी उसकी सेवा में हाजिर रहने लगी। मुकुन्द ने उसका कभी उपयोग न किया। लेकिन जब-जब जरूरत पड़ती वृन्दा तो उसका बराबर उपयोग करती। उसकी विलास-प्रियता बड़े जोरों से बढ़ रही थी। मुकुन्द को यह पसन्द न था। मुकुन्द को यह प्रतीत हुआ कि वृन्दा मेरे ध्येय के विपरीत—दूर और दूर जा रही है। और उसे यह सूझ नहीं पड़ता था कि किस प्रकार वह विलास की असारता जताकर वृन्दा को ऊँचे विचारों की ओर ले आए?

बड़ौदा में चन्द्रशेखर का धन्धा बहुत अच्छा चल रहा था और वह काफी पैसा कमा रहा था। इस पैसे को वह खुले हाथों खर्च करता। वृन्दा की लालसा

और कामना निरख-परखकर वह उसके लिए सुगंधित तेल, कई प्रकार के इत्र और स्नो-सेंट की शीशियाँ लाता, उपहार में देता। यह सब मुकुन्द को नापसन्द था। इसलिए उसने चन्द्रशेखर को बड़े शान्त एवं सौम्य भाव से समझाया—"चन्द्रशेखर, तुम इस प्रकार वृन्दा को फैशनेबल बना दोगे।"

"तुम्हारी बुद्धि को सन्मार्ग पर लाने के लिए दूसरा कोई उपाय नहीं।"—चन्द्रशेखर ने हँसकर कहा—"तुम अकेले वैरागी की मूर्ति बन बैठे हो तो क्या तुम्हारे सभी साथी भी तुम-से बन जाएँ?"

"इसका अर्थ यह हुआ कि तुम वृन्दा को विलासिनी के रूप में देखना चाहते हो? लेकिन तुमने यह नहीं सोचा कि हमें अपना सारा जीवन साथ में बिताना है। यदि पति-पत्नी विपरीत दिशाओं में जाने लगें तो पारस्परिक तन्मयता की सिद्धि कैसे हो?"

सुनकर चन्द्रशेखर चिढ़ गया और धीरे से बोला—"लेकिन उसे वैरागिन बना देना कहाँ का न्याय है? यह तो तुम्हारी जबरदस्ती है।"

"उस पर मेरी कोई जबरदस्ती नहीं है। मैंने उसे पूरी स्वतंत्रता दी है। लेकिन स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता नहीं है। छोटी आयु के कारण अभी उसके विचार अपरिपक्व कहे जा सकते हैं और इसलिए यदि उसने श्रेय और प्रेय का अन्तर न जान लिया है तो उसका बोध करा देना, हितचिन्तक के रूप में तुम्हारा कर्तव्य है। मगर मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारे ये उपहार उसे विलास-पथ पर ले जायेंगे। तुम्हारी समझ में यह क्यों नहीं आता?"

इस पर चन्द्रशेखर ने क्षमा माँग ली और अपने घर की ओर चल पड़ा। और कई दिन तक मुकुन्द के घर न आया। आखिरी दिनों में तो चन्द्रशेखर लगभग नित्य ही मुकुन्द के यहाँ आता था, या यों कहें कि उसे आए बिना चैन नहीं मिलता था। अब जो उसने आना बन्द कर दिया तो वृन्दा को आश्चर्य हुआ और उसने एक दिन मुकुन्द से पूछा—"आजकल चन्द्रशेखर भाई इधर क्यों नहीं आते? जब-जब वे आते हैं, मुझे बड़ा आनन्द मिलता है और उस खुशी में वक्त किस तरह गुजर जाता है, इसकी खबर ही नहीं रहती है। इस हिसाब से तो शायद दो-तीन हफ्ते हो गए, वे नहीं आए। अब तो

मेरा जी ऊब गया है।"

तब मुकुन्द को लगा कि संभवतः चन्द्रशेखर को उस दिन की बात खल गई है। अपने सीधे और शान्त वचन से भी किसी को बुरा लग गया है, यह आभास होते ही मुकुन्द को बड़ा दुःख हुआ। उसी शाम वह उसके घर गया। चन्द्रशेखर बगीचे में टहल रहा था। मुकुन्द को देखकर उसने तपाक से हाथ मिलाया—"अरे मुकुन्द, बड़े दिनों में मिले?"

"क्यों आजकल उधर नहीं आते? नाराज हो गए क्या?"—मुकुन्द ने पूछा।

"तुम पर नाराजगी? तुम तो मेरे सच्चे मित्र हो! सच बात तो यह है कि मैं एक चिन्ता में पड़ा हूँ।"

"क्यों, क्या बात है?"

"बम्बई से पिताजी की बीमारी की खबर मिली है।"

"उन्हें क्या हुआ है?"

"डायबिटीज।"

"तब तो जल्दी इलाज करवाना चाहिए। भोलानाथ और बाई साहब के क्या समाचार हैं? उनकी खबर पूछना तो मैं भूल ही गया।"

"भोलानाथ पाँचवीं में पढ़ रहा है और बाई साहब तो जहाँ थीं, वहीं हैं। बम्बई छोड़ने के बाद मैं वापस नहीं गया हूँ, इसलिए इस बीमारी के बारे में विशेष मुझे मालूम नहीं। अब सारा हालचाल मालूम करने के लिए मैंने पत्र लिखा है।"

फिर इधर-उधर की बातों के उपरान्त मुकुन्द आग्रहपूर्वक चन्द्रशेखर को अपने यहाँ ले आया। वृन्दा को खुशी हुई।

चन्द्रशेखर के लौट जाने पर दरवाज़े की घंटी बजी तो मुकुन्द बाहर आया। आकर देखा कि आफिस का चपरासी खड़ा है।

"क्यों गणेशजी, क्या बात है?"

"साहब, मेरी घरवाली बहुत बीमार है। छोटे-छोटे बच्चे हैं। आपको ज़रा फ़ुरसत हो तो चलकर देख लीजिए। बड़ी कृपा होगी।" गणेश रुकता

रुकता कह रहा था। उसकी आँखें भीग रही थीं।

आफिस के दूसरे अधिकारियों की अपेक्षा मुकुन्द का बरताव, अपने चपरासियों से और ही प्रकार का था। वह सब से घुल-मिल जाता और गरीबों के प्रति उसकी बड़ी सहानुभूति रहती। ज़रूरतमंद और मुसीबत में पड़े लोगों को वह सब प्रकार की सहायता देता। उनके घर जाता और सेवा करता। इससे वह उन लोगों में प्रिय हो गया था।

गणेश की घरवाली बहुत बीमार थी। पैसा खर्चकर डाक्टर को बुलाने जितनी सामर्थ्य न थी। इसके अलावा घर में जो छोटे-छोटे बच्चे थे उनकी देख-रेख करनेवाला कोई न था। मुसीबत आ पड़ने पर अभी वह मुकुन्द के पास आया—मुकुन्द ने तुरन्त ही माथे पर टोपी रखी और वृन्दा से बोला—"मैं ज़रा बाहर जा रहा हूँ, शायद लौटने में देर हो जाए तो राह न देखना।" यों कहकर वह निकल पड़ा।

मुकुन्द जब-तब ही बाहर निकलता था और ग्यारह के पहले लौट आता था। लेकिन आज बारह बज गए। वृन्दा राह देखते-देखते ऊब गई। और उसे नींद आ गई। बड़ी रात बीतने पर लगभग दो बजे मुकुन्द ने दरवाजा खटखटाया, वृन्दा नींद से उठी और द्वार खोला।

"आज बड़ी देर हो गई।" वृन्दा ने पूछा।

"हाँ, आज मेरे हाथों एक बड़ी सेवा हुई।" मुकुन्द ने शान्ति से कहा—"मरने-जैसी हो रही थी लेकिन वक्त पर डाक्टरी सहायता मिल गई और वह बच गई।"

मुकुन्द वृन्दा को सारा हाल सुनाने को इच्छुक था लेकिन वृन्दा उनींदी हो रही थी, सो बिछौने पर पड़ गई।

मुकुन्द के मस्तिष्क में इस वक्त भी रोगी का करुणाजनक चित्र उसी दशा में घूम रहा था—इतने बड़े शहर में ऐसे कई प्राणियों को मदद की आशा और आवश्यकता है। लेकिन उनके पास समय पर पहुँचें, ऐसे कितने लोग हैं।

काफी देर विचार कर लेने पर उसने निश्चय किया कि आगामी कल से वह फ़ुरसत का अपना वक्त ऐसे ही दीन-दरिद्र नारायण की सेवा में बिताएगा।

गली-गली जाकर दरिद्र और अनाथ व्यक्तियों को खोजकर यथा-शक्ति उनकी सेवा करने का उसने निश्चय किया।

इस संकल्प के पश्चात् उसे नींद आ गई।

दूसरे ही दिन उसने सेवा-कार्य का आरंभ कर दिया। उसकी इच्छा थी कि वृन्दा इस काम में उसकी मदद करे। लेकिन वृन्दा थी कि वह गरीबों की बस्ती में कदम तक रखने को तैयार न थी, इसलिए अकेला मुकुन्द ही उस ओर जाने लगा।

चार दिन बाद उसे एक विचित्र संवाद मिला, विलायत से लीलाधर का खत आया, जिसमें लिखा था कि वह अमुक दिन बम्बई के बन्दरगाह पर आ पहुँचेगा, सो उसने आग्रह किया कि वह वृन्दा को लेकर बम्बई आए। आगे उसने यह भी लिखा था—"तुम दोनों कुछ दिन मेरे यहाँ मेहमान बनकर रहना। बम्बई आते ही मेरे चार हाथ होने वाले हैं। सुमति से ब्याह की बातचीत हुई है। आशा है कि हमारा जीवन सुखी और आनन्दमय होगा। सुमति-जैसी सद्गुणी और कुशल पत्नी खोजने पर भी कहीं न मिलती....आदि।"

मुकुन्द को यह खबर न थी कि लीलाधर और सुमति के बीच ऐसा निर्णय हो चुका है। तथापि यह सूचना पढ़कर उसे अपार आनन्द हुआ और उसने वृन्दा और चन्द्रशेखर को भी सूचित किया।

सुनकर वृन्दा बहुत खुश हुई लेकिन यह बताना कठिन है कि चन्द्रशेखर की क्या दशा हुई।

"तुम्हें भी लीलाधर ने ऐसा ही आमंत्रण भेजा होगा, तुम ठहरे उसके जिगरी दोस्त।" मुकुन्द ने हँसते-हँसते कहा।

"घर पहुँचा होगा आमन्त्रण-पत्र। मैं तो सुबह से अब तक उधर नहीं गया।" चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया।

वृन्दा ने बम्बई शहर सिर्फ नजर भर देखा था। अब वहाँ जाने का मौका मिला है, बड़ा मजा आएगा। और विलायत से आता जहाज देखने और शादी-ब्याह में घूमने का मौका मिलेगा—यह सोचकर खुश हुई और चन्द्र-

शेखर से बोली—"हम तीनों साथ ही चलें तो कैसा रहे ?"

"अभी तो बहुत दिन बाकी हैं। अभी से निर्णय करने से कैसे काम चलेगा ?"

चन्द्रशेखर ने जल्दी-जल्दी जवाब दिया और टोपी उठाकर चल दिया।

४२

शुभागमन और विवाह

मुकुन्द और वृन्दा के बम्बई जाने का वक्त आ गया। लेकिन इसी समय चन्द्रशेखर को अपने व्यवसाय के विषय में प्रवास पर जाना पड़ा। यह उसन जानकर किया क्योंकि वह बम्बई जाना टालना चाहता था। भोला मुकुन्द यह कारवाई कैसे समझ सकता था। चन्द्रशेखर के साथ न देने पर खेद प्रकट कर, दोनों पति-पत्नी बम्बई रवाना हो गए।

इस बीच सुमति बम्बई आ गई थी। वह अपनी नौकरी से इस्तिफा दे चुकी थी। उसके माता-पिता को अपनी लाड़ली बेटी के इस इस्तीफे से बड़ी खुशी हुई थी। लीलाधर ने माधवराव और रमा काकी को पत्र द्वारा सुमति से ब्याह का निश्चय जता दिया था।

मुकुन्द ने इससे पूर्व सुमति को पत्र लिखा था और चुपचाप ब्याह का निश्चय कर लेने पर मधुर उलहना दिया था। सुमति ने इसी प्रकार मधुर शब्दों में क्षमा माँग ली थी।

बम्बई आने पर मुकुन्द और वृन्दा लीलाधर के यहीं ठहरे। बन्दरगाह पर लीलाधर का स्वागत करने के लिए उसके कई सम्बन्धी जन, स्नेही मित्र आदि एकत्र हुए थे। लीलाधर के सकुशल लौटने और विवाह कर लेने पर उसके हाथों सत्यनारायण की पूजा करवाने का संकल्प रमा काकी ने किया था।

वृन्दा ने इससे पूर्व लीलाधर को न देखा था। उसके ब्याह के समय लीलाधर विलायत में था और चन्द्रशेखर बाहर था। विलायती जहाज़ देखने की उसकी उत्कट अभिलाषा लीलाधर के आने पर पूरी हुई। लीलाधर पहले से अधिक स्वस्थ और भरापूरा नज़र आ रहा था। उसके बोलने-चलने के तरीके में विलायती किस्म का एक रौब था, फिर भी उसका मनमौजी और सीधा स्वभाव वैसा ही था। बन्दरगाह पर उतरने पर माँ-बाप को तुरन्त प्रणाम करने से वह न चूका। इस बीच रमा काकी ने अपना संकल्प उसे धीरे से बता दिया। सुनकर वह हँस पड़ा।

मुकुन्द और लीलाधर बड़े स्नेह से मिले। वृन्दा से भी परिचय हुआ और उससे स्नेहपूर्वक दो-चार बातें भी हुई। लेकिन, वृन्दा की कल्पना में यह न आया था कि लीलाधर इस प्रकार का है। तीन-तीन साल विलायत में रहने पर भी वह कितना सीधा और सरल है! उसे लीलाधर में चन्द्रशेखर-जैसी कृत्रिमता नज़र न आई। हेमलता भाई को देखते ही उससे चिपट गई और जब आसपास के लोग गड़बड़ी में थे हेमलता ने, लीलाधर के कान में प्रश्न किया—"भैया, मेरा वह पत्र मिला था?" हेम का यह प्रश्न पूछने का तरीका देखकर लीलाधर को पत्र की याद आई और उसने हँसकर धीमे से कहा—"हाँ!"

सुनकर हेम को बड़ी खुशी हुई—"मुझे विश्वास था, मैं तुम्हारी प्यारी बहन हूँ न?"

दोनों भाई-बहन की ओर किसी का ध्यान न गया कि उनमें क्या काना-फूसी हो रही है। लीलाधर ने हेम के पत्र की बात सुमति को बताई न थी।

अब सुमति की बारी आई, सब की बारी निकल जाने पर। सचमुच वह एक विलक्षण और संयमी लड़की थी। सब लोग लीलाधर का जो बखान कर रहे थे, वह सुनकर प्रसन्न थी। अन्ततया लीलाधर उसकी ओर देखकर मुस्कराया। और समय देखकर सुमति भी इतने से ही सन्तुष्ट हुई।

तीन वर्षों तक प्रेम और लगन के जिस पौधे को सींचा था, वह अब बड़ा

हो गया था। और ब्याह की बात बनी थी। वर-वधू को विवाह का बड़ा समारोह पसन्द न था, लेकिन समधियों को इसके लिए उत्साह था। फिर भी वर-वधू का आग्रह स्वीकार किया गया। और माता-पिता की कतिपय बातों को वर-वधू ने स्वीकार किया। इस प्रकार मध्यम मार्ग निकाल लिया गया।

एक सार्वजनिक स्थल पर विवाह समारोह मनाया गया ? माधवराव बम्बई के प्रसिद्ध वकील थे और इस पर उनका पुत्र विलायत से नाम कमाकर आया था इसलिए इस विवाहोत्सव में प्रत्येक जाति के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने भाग लिया था। वृन्दा ने बम्बई की यह शान पहले कभी देखी न थी, इसलिए वह यह ठाठबाट देखकर चकित रह गई ! ऐसी रोशनी! ऐसी आतिशबाजी। कैसे वर्णन किया जाए !

सुमति बड़ी सादी लड़की थी, लेकिन बड़ों के आगे उसकी एक न चली और कई श्रृङ्गार सजाने पड़े। खादी पहनने का अपना हठ उसने न छोड़ा। लेकिन उसके लिए खादी-भंडार द्वारा विशेष प्रकार की साड़ी तैयार करवाई गई जो नाम-मात्र में खादी की थी। उस पर जरी का काम किया गया था। इसे देखकर किसी को अनुमान भी न होता कि यह खादी की साड़ी है। सुमति को हीरे-मोती के आभूषण भी पहनने पड़े। दीपकों के जगमग प्रकाश में उसका यह ऐश्वर्य देखकर वृन्दा को ईर्ष्या हुई। जान-बूझकर वह बार-बार उसे देखती थी। लेकिन वृन्दा अधिक रूपवान थी और सुमति की शारीरिक गठन साधारण थी। रंग भी सामान्य था, लेकिन दो चीज़ें थीं जो सहज ही दर्शक को आकर्षित करती थीं—एक तो उसका सीधा नोकदार नाक, दूसरा उसकी रेशमी, स्निग्ध केशराशि। उसके चेहरे में एक प्रकार की खुमारी थी और आँखों में प्रशान्त तेज था। यह सब देखकर देखनेवालों के मन में उसके लिए सम्मान की भावना जाग्रत होती। रात्रि के अपने श्रृङ्गार और आसपास के अनुकूल वातावरण से सुमति खिल उठी थी। लेकिन वृन्दा के मन में तो यही भाव था कि सुमति की अपेक्षा यह वैभव और श्रृङ्गार मुझे ही अधिक शोभा देता। यह सोचते-सोचते उसने लीलाधर की तरफ देखा। नाक और आँखों की दृष्टि से वह सुमति की अपेक्षा अधिक आकर्षक था लेकिन कुछ मोटा था।

लीलाधर ने सुन्दर पोशाक पहनी थी और हाथ में रोजबरी का प्याला लिये वह अपने मित्रों से हँसी-मजाक कर रहा था। बीच-बीच में वह अपनी नववधू की ओर तिरछी नजर डालकर मुस्करा देता था। ऐसे वक्त सुमति अधिक गंभीर नजर आती।

विवाह-विधि सम्पन्न हो जाने पर कई सज्जनों ने वर-वधू की प्रशंसा में भाषण दिए और उनका अभिनन्दन किया। दोनों को कई उपहार भी मिले। इस समय वृन्दा बम्बई की यह तड़क-भड़क देखकर चकित थी—"कैसे सुन्दर आभूषण, कितनी सुन्दर वस्तुएँ!"

यद्यपि चन्द्रशेखर इस विवाह में सम्मिलित न हुआ—फिर भी उसने बधाई का तार भेजा और मूल्यवान उपहार डाक से भेजे।

एक दिन मुकुन्द बोला—"मुझे आश्चर्य है कि तुम लोगों ने भीतर-ही-भीतर विवाह की तैयारी कर ली और हमें दो वर्ष तक पता न चलने दिया। जब तुम विलायत गए तब चन्द्रशेखर ने मुझे अपने मन की बात बताई थी।"

सुनकर दम्पति विस्मय में पड़ गए। दोनों ने सोचा यदि चन्द्रशेखर जानता था कि सुमति के मन में लीलाधर के प्रति प्रेम है तो क्योंकर उसने सुमति के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा। परन्तु उस समय यह बात जहाँ थी वहीं रह गई और चार-छः दिन नवदम्पति के साथ बिताकर मुकुन्द और वृन्दा बड़ौदा लौट आए। लौटती वक्त वृन्दा नवदम्पति को बड़ौदा आने का निमन्त्रण देना न भूली।

४३

विचित्र उपाय

बड़ौदा लौटने पर वृन्दा को कई दिन तक स्वप्नों में भी यही विवाहोत्सव नजर आता रहा। लेकिन मुकुन्द था कि यह सब भूलकर अपने काम में लग गया। दीन-दुःखियों की सेवा में वह प्रतिदिन अधिक तल्लीन होता गया। यहाँ तक कि वह अपने सुखी जीवन से भी ऊब उठा।

इधर वृन्दा का हृदयरोग बढ़ता गया। चन्द्रशेखर का आना-जाना बराबर हो रहा था और चन्द्रशेखर की उपस्थिति तक वह चैन से रहती। मुकुन्द को फ़ुरसत नहीं थी कि वह इन दोनों के साथ बैठकर गप्पे लगाए। वह तो अपना समय दरिद्रनारायण की सेवा में बिताता। चन्द्रशेखर पर मुकुन्द का पूरा-पूरा विश्वास था और उसकी अनुपस्थिति में वृन्दा और चन्द्रशेखर बैठकर बातचीत करें, इससे मुकुन्द के मन में किसी प्रकार की शंका को स्थान नहीं मिलता था।

लेकिन चाहे मुकुन्द के मन में शंका न आए, पर दुनिया के मुँह पर ताला नहीं लगाया जा सकता। पास-पड़ौस के लोग तरह-तरह की बातें करने लगे। जब चन्द्रशेखर सीढ़ियाँ चढ़ता तो पड़ौसियों को खाँसी चलने लगती। उसकी कार का हार्न सुनते ही पड़ौसिनें बाहर निकल आतीं और जब मुकुन्द भी अकेला निकलता तो आस-पास से गहरे निःश्वास उसके कान में आते। फिर

भी उसे वृन्दा पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं था।

और वृन्दा भली-भाँति जान गई थी कि चन्द्रशेखर के साथ उसका यह मेल-जोल लोगों की चर्चा और निन्दा का विषय बन बैठा है। उसने इस स्थिति के लिए अपने मन में मुकुन्द को दोष दिया। चन्द्रशेखर के लिए उसका प्रेम प्रबल था। और वह अपनी दुःखमय स्थिति उसके सामने रखने को उत्सुक थी। फिर भी वह चाहती थी कि एक बार निश्चयपूर्वक मुकुन्द से सारी बातों का स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए।

रात्रि के आठ बजे मुकुन्द वृन्दा के पास बैठता और दिन-भर का अपना अनुभव उसे सुनाता। उस रात हमेशा की तरह मुकुन्द वृन्दा की राह में बैठा था। वृन्दा आई और उसके पास बैठ गई। मुकुन्द कुछ कहने जा रहा था कि वृन्दा बीच में ही कहने लगी—"बहुत चला रोज का तुम्हारा यह चरखा। चाहे जितनी सिरपच्ची करो, तुम्हारी बातें मेरी समझ में आनेवाली नहीं। तुम्हें मेरी चिन्ता नहीं। दरिद्र लोगों के बीच घूमना तुम्हें अच्छा लगता है। मेरा मन जल रहा है, इसकी तुम्हें चिन्ता नहीं।"

"तेरा और मेरा मन क्या अलग-अलग है?"

वृन्दा चुप रही। फिर बोली—"बोलने में तुम कम नहीं हो। सच कहती हूँ मेरा मन नहीं लगता कहीं।"

"क्यों भला?" मुकुन्द ने सहज ही पूछा—"क्या चन्द्रशेखर ने आना बन्द कर दिया?"

वृन्दा चिढ़कर बोली—"वह क्या पूरे जन्म मेरे साथ रहेगा?"

मुकुन्द चुप रहा। लेकिन वृन्दा की बड़बड़ाहट जारी रही—"तुम निष्ठुर हो, क्रूर हो। तुम्हारा दिल पत्थर का है। तुमने व्यर्थ ही मुझसे विवाह किया।" यों ही वह कहती रही और उसकी आँखों से आँसू बहते रहे। मुकुन्द को इस अवस्था से बड़ा दुःख हुआ। उसे अपनी माँ की याद आई। उसे यह समझ में न आया कि इस अशान्त स्त्री के हृदय को शान्ति कैसे दे? माँ होती तो

उसकी सलाह लेता। फिर उसे खयाल आया—'मेरा हृदय पूर्णतया शुद्ध नहीं है। मैंने अभी उसपर शुद्ध भावना से विजय नहीं पाई है। मेरी सेवा में स्वार्थ की गन्ध है। इस क्रोधमूर्ति को किस प्रकार शान्त किया जाय'—इतना विचार आते ही मुकुन्द ने वृन्दा के पैरों पर अपना सिर रख दिया—"तेरे सभी आरोप मुझे स्वीकार हैं। मेरी हिम्मत नहीं कि तुझसे क्षमा भी माँग लूँ। शान्त हो।"

वृन्दा को स्वप्न में भी यह कल्पना न थी कि मुकुन्द ऐसा व्यवहार कर सकता है। उसने अपने पैर खींच लिये और चुप बैठी रही। मुकुन्द कहने लगा—"मेरी बातें तेरी समझ में क्यों नहीं आतीं, इस पर मुझे आश्चर्य है। फिर भी जहाँ तक तेरे प्रति मेरा मन शुद्ध है वहाँ तक मैं निश्चिन्त हूँ। तूने मेरे जीवन-ध्येय के अनुरूप अपने-आपको ढालने का प्रयत्न किया है, यह मैं जानता हूँ। और यदि हम ईश्वर-कृपा की कामना करेंगे तो हमारी शेष कमजोरियाँ भी दूर हो जाएँगी। लेकिन तेरे मन में पर्याप्त श्रद्धा न हो तो मैं तनिक भी जोर देना नहीं चाहता।"

मुकुन्द इतना कहकर रुक गया। वृन्दा अब भी चुपचाप बैठी रही। मुकुन्द कहता रहा—"मैं जो कुछ कहता हूँ उससे तुझे कोई आघात नहीं लगना चाहिए। लम्बे अध्ययन और मनन द्वारा मेरा यह विश्वास है कि विवाह वासना-तृप्ति के लिए नहीं है। विषय-वासना के सिवाय कई उच्च आकांक्षाएँ स्त्री-पुरुष में हो सकती हैं। सन्तानोत्पत्ति की कामना पर ही पति-पत्नी ब्रह्मचर्य को भंग कर सकते हैं। विवाह इस निमित्त एक समझौता है कि पति-पत्नी को जब संतति की इच्छा होगी वे परस्पर के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति के साथ समागम-संबंध नहीं रखेंगे। लेकिन वृन्दा, मैं देखता हूँ कि वर्तमान दशा में तेरा मन मेरे इस मत को पसन्द या स्वीकार नहीं कर रहा है। अथवा प्रयत्न करते हुए भी तू अपने मन पर काबू नहीं पा रही है। फिर भी कोई चिन्ता नहीं। मेरी ओर से तू अभय रह! मुझसे विवाह करने के लिए तेरे मन में पछतावा नहीं होना चाहिए। यदि तुझे अपनी पसन्द का कोई दूसरा जीवन-साथी सुलभ हो तो तू मुझे छोड़कर उसका साथ ग्रहण कर सकती है। हमारे हिन्दू समाज का नियम चाहे जो हो, मैं यह कदम उठाने से तुझे रोकूँगा नहीं।"

यह सुनकर वृन्दा इस प्रकार तमककर उठ खड़ी हुई मानों बिजली का झटका लगा हो। मुकुन्द की ओर नजरें फैलाए वह बोल उठी—"तुम्हारा दिमाग तो ठीक है?"

उग्र क्रोध के कारण, वृन्दा इससे अधिक कुछ न कह सकी। दौड़कर नीचे आई और बिस्तर पर पड़ गई।

४४

दो चित्र

मुकुन्द के पत्र की दो पंक्तियाँ पढ़कर सुमति बेचैन हो गई। मुकुन्द ने वृन्दा और चन्द्रशेखर के संबंध का उल्लेख किया था। सुमति ने चन्द्रशेखर को लगभग ढाई साल से नहीं देखा था। इतना होने पर भी सुमति उसका पूर्व का जीवन पूरी तरह जानती थी। इसलिए वृन्दा जैसी सुन्दरी और नव-यौवना के साथ चन्द्रशेखर का सम्पर्क रहे यह उसे पसन्द न था। उसने अपना विचार लीलाधर को बतलाया, लेकिन लीलाधर के विचार इस प्रकार आगे बढ़े थे कि उसे सुमति की राय पसन्द न आई।

वृन्दा और चन्द्रशेखर का सम्पर्क बढ़कर किस दशा में पहुँच जाएगा इसकी कल्पना सुमति के लिए अशक्य थी। उसके मन में चिन्ताजनक विचार आने लगे, किन्तु यह सोचकर चुप रही कि उतावली करने में समझदारी नहीं।

मुकुन्द ने वृन्दा को अभय वचन दिया था—यह ठीक था। मगर वृन्दा का स्वभाव भावनाशील नहीं था, वह सहज ही विकार-प्रवृत्त था। जब जैसा भाव उसके मन या मस्तिष्क में उठता वह वैसी ही दृष्टि से दुनिया को देखती। इसी वजह मुकुन्द की विचार-माला और आदर्शवादिता वह न समझ सकी। अब तो उसे भ्रम का दौर आने लगा कि, 'मुकुन्द नपुंसक तो नहीं?'

फिर एक बार चन्द्रशेखर मिलने आया। वृन्दा का उदास मुख देख कर उसने पूछा—"तुम कल रो रही थी क्या?"

इस पर जब वृन्दा प्रश्न को टालने लगी तो चन्द्रशेखर ने सदा का अपना बान कमान पर चढ़ाया—"चलो आज सिनेमा देखें, इससे तुम्हारा मन बहल जाएगा। 'सिंहगढ़' फिल्म आई है।

तब चन्द्रशेखर ने उस फिल्म का ऐसी रसिकता से वर्णन किया कि वृन्दा का मन ललचा उठा—"मुझे कुछ उज्र नहीं, उन्हें पूछ देखो।"

"पूछ लेंगे, लेकिन यह तो बताओ तुम्हें ऐसा क्या दुःख है? क्या अब भी मैं तुम्हें पराया लगता हूँ। ऐसा मानती हो तो मेरा दुर्भाग्य है।"—यों कहकर चन्द्रशेखर दीन-मुद्रा बनाकर बैठा रहा। उसकी यह मुद्रा देखकर वृन्दा के मन में कुछ-कुछ होने लगा। सोचा, 'बता दूँ इन्हें'। लेकिन चुप रही—"नहीं-नहीं।"

वृन्दा की यह दशा देखकर चन्द्रशेखर बोला—"तुम दोनों के बीच कौन-सी गाँठ पड़ गई है, समझ में नहीं आता। तुम तो हमेशा दुःखी नजर आती हो।"

अब वृन्दा से न रहा गया—"गुत्थी-गुत्थी क्या, ईश्वर ने जाने कैसी जोड़ी मिलाई है।"

चन्द्रशेखर ने उसकी ओर कुतूहल-भरी दृष्टि से देखा और बोला—"क्या मुकुन्द तुम्हें भी 'भगत' बना देना चाहता है?"

"उनकी ओर से कोई जोर तो नहीं, लेकिन उनके सिद्धान्त और तरीके मेरे लिए अनुकूल नहीं। यदि अकेले उनको ही ऐसा सिद्धान्त और व्रत अपनाना हो तो अलग बात है, लेकिन जहाँ दोनों का सवाल आता है वहाँ...." इतना कहकर वृन्दा रुकी—"ऊपर हैं वे, जाओ मिल लो।"

चन्द्रशेखर छत पर आया और मुकुन्द की अनिच्छा होते हुए भी उसे नीचे घसीट लाया।

तीनों सिनेमाघर आए। वृन्दा बीच की सीट पर बैठी। फिल्म शुरू हुई। आसपास की कुर्सियाँ खाली थीं, इसलिए चन्द्रशेखर खुश था। उसकी जबान

मुक्त रूप से चल रही थीं। वह चित्र के प्रत्येक दृश्य का रसिक वर्णन कर रहा था। वृन्दा भी देखने में तल्लीन थी।

इस वक्त अवसर देखकर चन्द्रशेखर ने वृन्दा के हाथ अपने हाथों में ले लिये और उससे मधुर छेड़छाड़ शुरू कर दी। वृन्दा फिल्म का हृदयद्रावक दृश्य देखकर सिसकने लगी। मुकुन्द ने कहा—"अरे, यह तो सब नाटक है। इतनी कमजोर न बनो।"

ठीक उसी वक्त चन्द्रशेखर ने वृन्दा के गाल तक अपना होठ लाकर उसके आँसू पोंछ लेने का प्रयत्न किया। इस अंगारे जैसे स्पर्श से वृन्दा के शरीर में विद्युत दौड़ गई। वह एकदम खड़ी हो गई। उसका सिर चकरा रहा था और गला सूख रहा था। मुकुन्द ने सोचा कि फिल्म का हृदयद्रावक दृश्य देखकर वृन्दा वेदनावेग में उठ खड़ी हुई है। अतएव उसका हाथ थामकर बोला—"बैठो, अब तो पिक्चर पूरी होने ही वाली है।"

वृन्दा बैठी लेकिन उसकी शक्तियाँ शिथिल हो गई थीं। पिक्चर पूरी होने पर तीनों बाहर आए। उसने चन्द्रशेखर की ओर नजर तक न उठाई। घर आकर अपने कमरे में गई और धम्म-से बिछौने पर पड़ गई।

मनुष्य कई बार अपने मन में बुरे विचार लाता है, परन्तु जब वाणी के माध्यम से उन्हें प्रकट करता है तब, तुरन्त ही उसे भीति होने लगती है। और जब इन बुरे विचारों को अपने व्यवहार में उतारता है तब तो वह पूरा-पूरा भीरु बन जाता है। इसके बाद वह खुद से ही डरने लगता है।

वृन्दा का यही हाल हुआ। कई बार उसके मन में मुकुन्द के सिंवाय दूसरे पुरुषों के विषय में विकारपूर्ण विचार आए, लेकिन जब तक यह विकार मन में रहा, उसे उसका भीषण स्वरूप समझ में न आया, आज उसका प्रत्यक्ष परिणाम देखा तो वह घबरा गई। उसके मन पर परम्परागत संस्कार का प्रभाव अधिक न था, फिर भी प्रचलित रूढ़ि के बन्धनानुसार उसकी देह रूढ़िगत नियमों का पालन करने का प्रयास तो करती ही थी। किन्तु मन की बात अलग थी। मन को धर्म, कानून या रूढ़ि के बंन्धन नहीं छूते। इसीलिए शायद, मन चाहे जैसे

विकृत विचारों पर सोचने में सकुचाता नहीं। लेकिन देह की बात जुदी है। वह जितनी स्थूल उतनी ही जड़। मन सूक्ष्म होने से सदैव सुरक्षित, जब कि देह सदैव-भय संकट में रहती है। इसीलिए तो मनुष्य को सदैव मृत्यु से भय लगता है।

देह तो मुकुन्द से जोड़ दी गई। सो दूसरा उपाय क्या हो सकता है? दूसरे की अभिलाषा भी कैसे रखी जा सकती है और ऐसी अभिलाषा रखें तो भी क्या पूरी थोड़े ही हो सकती है?

विद्रोह करने का साहस वृन्दा में नहीं था। चोरों की तरह लुकती-छुपती वह छत पर गई। मुकुन्द खाट पर सोया था। सुरम्य चाँदनी में उसका शान्त सुन्दर चेहरा खिल रहा था। वृन्दा एकटक उसे देखती रही। उसे अपने क्षुद्र विचारों पर शर्म आई। मन में बोली—"ऐसी निर्दोष निद्रा मैंने कभी नहीं देखी।" मुकुन्द की पवित्र छाया में उसके मन को चैन मिला। वह उसके पैरों के निकट बैठ गई। पहले कभी न उठा, ऐसा एक आवेग आया। मुकुन्द के पैरों पर हाथ रखकर मन में कहने लगी—"मेरी सच्ची शरण यही है।"

वृन्दा के हस्त-स्पर्श से मुकुन्द जाग उठा। देखा, वृन्दा के नयनों से झर-झर आँसू बह रहे हैं—"कब आई?"

वृन्दा चुप रही।

"उस फिल्म की याद में तुम रोती हो। तुम्हारी भावुकता देखकर ही मैं तुम्हें नाटक-सिनेमा देखने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता। अब भी रोती हो? पागल हो गई क्या? जाओ, नीचे जाकर सो जाओ। बड़ी रात हो गई।"

लेकिन वृन्दा वहाँ से तिल-भर न हटी। उसे मुकुन्द की स्नेहशीलता आश्वासनदायिनि प्रतीत हुई। वृन्दा बैठी रही तो मुकुन्द के मन में शंका उठी और पूछा—"तुम मुझ पर नाराज़ हो?"

वृन्दा ने नकारात्मक सिर हिलाया। फिर बोली—"मुझे नींद नहीं आती। इच्छा होती है, यहीं बैठी रहूँ। सचमुच मेरा नाम पापी है।"

सुनकर मुकुन्द को दया आई, बोला—"इस समय तुम्हारे हृदय में जो द्वन्द्व चल रहा है, वह न समझ सकूँ, ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। घबराओ नहीं, ईश्वर

मंगलमय है। वह तुम्हें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाएगा।"

वृन्दा जिस आशय से बोल रही थी, मुकुन्द उसके विपरीत, दूसरा ही प्रत्युत्तर दे रहा था। वृन्दा इस स्थिति को समझ रही थी। परन्तु इसके स्पष्टीकरण के लिए उसका मुँह न खुला। फिर भी अपनी मानसिक शान्ति के लिए मुकुन्द के शब्द सुनते रहने के मोह का वह संवरण न कर सकी।

और वह वहीं बैठी रही। युक्तिपूर्वक मुकुन्द के मुख से आश्वासन पाने लगी। फिर वह यह भूल गई कि वह मुकुन्द को फँसा रही है या खुद फँस रही है। इस बात का उसे ध्यान न रहा।

वृन्दा जब नीचे आई तब रात का आखिरी पहर शुरू हो गया था।

४५
विपथगामिनी

चन्द्रशेखर ने कई दिन तक अपना मुँह न दिखाया। वृन्दा को उसका न आना, शुरू-शुरू में तो अच्छा लगा, लेकिन तीसरे ही दिन वह बेचैन हो गई। लेकिन चन्द्रशेखर को किस प्रकार बुलवाए—अभिमान एक ओर खींच रहा था, चन्द्रशेखर दूसरी ओर।

बीच में उसने मुकुन्द के निकट रहने का प्रयत्न किया, परन्तु मुकुन्द का स्थित-स्वभाव देखकर उसका मन उचाट हो गया और कुछ घृणा भी हो आई।

अब तो वृन्दा अतिशय बावली बन गई। चन्द्रशेखर की कार का हार्न उसके कानों में गूँजने लगा। किन्तु दर्शन का मनोरथ सफल न हुआ। उसकी इस दशा के कारण, उसका मन भ्रमित रहने लगा और स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया। उधर मुकुन्द अपने सेवा-कार्य में लीन था। उसकी लगन और तत्परता देखकर कई सहायक सामने आए और धीरे-धीरे उसने गरीबों की बस्ती में एक सेवा-मंडल स्थापित कर दिया। कभी वह सोचता, ऐसे सत्कार्य में यदि वृन्दा का सहयोग मिले तो कैसा रहे? तब तो गरीबों की झोपड़ियों में प्रवेश अधिक सहल हो जाए। सो, एक दिन मुकुन्द ने वृन्दा को राजी कर लिया कि वह सेवा-मंडल देखने आएगी। वृन्दा ने जब जाना स्वीकार किया तो मुकुन्द की खुशी का पार न रहा। इस खुशी में उसे चन्द्रशेखर की याद

आई, अरे वह तो बहुत दिनों से नहीं आया। यदि सेवा के इस आयोजन में उसकी सम्पत्ति का सहयोग मिले तो फिर क्या कहना! उसने वृन्दा की राय माँगी, वह सहमत हुई और मुकुन्द चन्द्रशेखर के घर गया।

मुकुन्द के चेहरे के भाव देखकर चन्द्रशेखर को विश्वास हो गया कि वृन्दा ने सिनेमाघर की घटना गुप्त रखी है। अतएव, इधर-उधर की बातों पर चन्द्र-शेखर ने मुकुन्द की प्रत्येक योजना में सहयोग देने का आश्वासन दिया।

जिस दिन वृन्दा गरीबों की बस्ती में गई उस दिन 'नारियल पूर्णिमा' का पर्व था। वृन्दा का परिचय पाकर सबको प्रसन्नता हुई। दिन-भर के कार्य-क्रम के बाद मुकुन्द, वृन्दा और चन्द्रशेखर लौट पड़े। चन्द्रशेखर गाड़ी चला रहा था।

तभी मुकुन्द को याद आया—"गणपतराव जाधव के पास आफिस के कागजात हैं। उनकी जाँच के लिए उसने मेरी मदद माँगी है। तुम मुझे वहीं छोड़ दो। मैं दो घण्टे बाद लौटूँगा। वृन्दा, तुम घर जाकर अपना भोजन कर लेना।"

चन्द्रशेखर ने मुकुन्द को पाँच ही मिनट में जाधव के घर पहुँचा दिया। फिर कार अपनी पूरी गति से चलने लगी। कार में वृन्दा मौन बैठी थी। वह चाहती थी कि चन्द्रशेखर पहले बोले और चन्द्रशेखर वृन्दा के बोलने की राह देख रहा था। अन्त में वही कहने लगा—"मैं अब कुछ ही दिनों में बड़ौदा छोड़ रहा हूँ।"

सुनकर वृन्दा को आघात लगा—"क्यों भला?"

"इच्छा है कि किसी निर्जन में चला जाऊँ। लगता है मेरा जीवन ही जाने कैसा है कि न तो खुद सुखी रहता हूँ और न दूसरे को ही सुख दे सकता हूँ।"

सुनकर वृन्दा का दुःख बढ़ गया और चन्द्रशेखर की पीड़ा से उसके मन में भी कुछ-कुछ हो जाता है। उसने मान लिया कि चन्द्रशेखर के दुःख का कारण वह स्वयं है।

रात्रि रमणीय थी। ऐसी रात में किसी के मन में बाहर घूमने की ललक

न जगे तो वह मनुष्य नहीं। चन्द्रशेखर ने वृन्दा की आँखों में आँखें डालकर पूछा—"जरा हम शहर के बाहर घूम आएँ? तुम्हें घर जाने की जल्दी तो नहीं?"

वृन्दा तुरन्त बोली—"नहीं-नहीं, जल्दी कैसी? मुझे तो बाहर घूमना अच्छा लगता है। उस बस्ती के कोलाहल से तो मेरा सिर भिन्ना गया है।"

चन्द्रशेखर ने मन-ही-मन कहा—"हाँ, ये शब्द तो मुकुन्द को सुनने चाहिए।" तदुपरान्त उसने कार की गति बढ़ा दी। दूर, राजमार्ग के एक ओर गाड़ी रोककर कहा—"पीछे से तुम कुछ कहती हो, सुनाई नहीं देता। फ्रंट सीट पर आ जाओ।"

वृन्दा तुरन्त उसके पास आकर बैठ गई।

कार धीरे-धीरे चलने लगी। हवा धीरे-धीरे बहने लगी। बातें धीरे-धीरे बढ़ने लगीं। यों जाने कितना समय बीत गया। अचानक चन्द्रशेखर ने कहा—"ऐसा प्रतीत होता है, तुम मुझसे नाराज हो।"

"तुम पर नाराज? तुमसे नाराज होना अपने आपसे नाराज होना है।" वृन्दा अपनी भावुकता में कह गई।

और तभी पल भर में चन्द्रशेखर ने उसके दोनों हाथ थाम लिये और अपनी ओर खींच लिया....

उस रात मुकुन्द जब घर आया, तब नौ बज रहे थे। घर में अँधेरा था। सारे घर में विचित्र शान्ति छाई थी। उसने कोना-कोना देखा। लेकिन वृन्दा न मिली। जब उसके कमरे में गया तो देखा—वह आँखें बन्द किए अस्त-व्यस्त पड़ी है। वह उसके पास जाकर खड़ा हो गया, लेकिन वृन्दा ने आखें नहीं खोलीं, नहीं खोलीं।

मुकुन्द ने सोचा, आज के कार्यक्रम से थककर सो गई है। वह भी छत पर चला गया। लेकिन वृन्दा तो जग रही थी। उसका हृदय धड़क रहा था। मुकुन्द की ओर देख लेने की हिम्मत उसमें न रही थी। क्योंकि आज उसने समाज के नीति-नियमों का उल्लंघन किया था। अपने पति से विश्वासघात किया था। और एक पराये पुरुष को अपना सर्वस्व सौंप दिया था।

की इजाजत दी थी।....हे ईश्वर! तू जानता है, मेरे इस दुःख का कारण मात्र इतना ही है कि वृन्दा ने अपनी बात मुझसे छिपा कर क्यों रखी। उसे अवश्य मेरा भय है। यदि उसके प्रति सचमुच मेरा विशुद्ध प्रेम है तो उसे मेरा भय नहीं होना चाहिए। खैर, जो हो एक बार उसे अपनी पत्नी मान लिया तो सारा उत्तरदायित्व मेरा है। क्यों न जाकर उसे दिलासा दूँ। बेचारी फिक्र में घुल रही होगी।'....फिर से अन्तःकरणपूर्वक प्रार्थना करके वह नीचे आया।

वृन्दा इस समय भी बिछौने पर पड़ी थी। अब क्या होगा....मुकुन्द कौन-सा कदम लेगा....जब बड़ी देर तक मुकुन्द नहीं आया तो वह व्याकुल हो गई और मन में आशंकाएँ उठने लगीं। घबराहट का पार न रहा—'देखना है, दर्शन-शास्त्र का दंभ बघारने वाला मेरा पति इस वास्तविक कटु सत्य को कैसे स्वीकार करता है। उसकी उदरता का पता अब लग जायगा। मुझसे वह बहुत नाराज़ हो गया क्या? जो होगा, देखा जाएगा। बहुत हुआ तो उलाहना दे लेगा, अपमान करेगा, मारेगा, पीटेगा और घर से निकाल देगा। इससे अधिक क्या कर सकता है।' उसके मस्तिष्क में ये तरंगे चल रही थीं कि पद-चाप सुनाई दी। उसने अपनी हथेलियों में मुँह छिपा लिया। मुकुन्द आकर पलंग के पास खड़ा रह गया। वृन्दा का दिल धड़क रहा था कि उसे महसूस हुआ, उसके केशों में कोमल उँगलियाँ फिर रहा हैं और एक मीठा-सा स्वर सुनाई दिया—"वृन्दा घबराओ नहीं। मुझे किसी पर क्रोध नहीं है। मैं तुमसे कुछ पूछनेवाला नहीं। तुम अब भी मेरी पत्नी हो। ईश्वर-कृपा का प्रसाद पाकर मैं सारी स्थिति से निस्तार पाऊँगा। मुझे दुःख सिर्फ इतना ही है कि मैं अब भी तुम्हें निर्भय न बना सका। तुम्हारे भय का कारण यही है कि तुम मुझे पराया जन मानती हो। लेकिन इसमें भी मेरा ही दोष है। भविष्य में मैं तुम्हारा विश्वासपात्र बनने का प्रयत्न करूँगा।"

वृन्दा मुकुन्द का चेहरा देख न सकी। मुकुन्द शान्ति से बोल रहा था। परन्तु इस शान्ति-प्राप्ति ने लिए उसे कितना मनोमंथन करना पड़ा था! मन पर विजय पाने के लिए कैसा भीषण प्रयास करना पड़ा था। वृन्दा इसका अनु-

मान कैसे लगा पाती ?

वृन्दा को अपने कृत्य पर शर्म आई। काश, मुकुन्द ने उसे जूते से पीटा होता, तो कितना अच्छा होता—उसके मन ने मोह दरसाया !

इसके बाद मुकुन्द वहाँ से कब चला गया, उसे अज्ञात रहा।

४७

मित्रों का महत्व

शरद वृन्दा की सहेली थी। पूना की उसके बचपन की यह सहेली, विवाह के बाद इन्दौर रहने लगी थी। शरद ने कई बार वृन्दा को अपने घर आने का आमंत्रण दिया था। इधर शरद के पति का तबादला नासिक हो जाने पर उसी की बारी पहले मेहमान बनने की आई और वह बड़ौदा आई।

सच बात तो यह थी कि वृन्दा नहीं चाहती थी कि इस वक्त कोई उसके यहाँ आए! एक कारण तो यह था कि उसकी तबीयत ठीक नहीं रहती थी; दूसरा, मुकुन्द निरन्तर उसकी सेवा कर रहा था, इससे वृन्दा का मन और भी व्यग्र हो गया था।

उस रात के बाद चन्द्रशेखर ने मुकुन्द के यहाँ कदम भी न रखा। ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, वह वृन्दा से यदा-कदा ही मिलने लगा। वृन्दा ने शरद का स्नेहमय स्वागत किया, परन्तु शरद की चकोर दृष्टि से वृन्दा का परिवर्तन छिपा न रहा। मन-ही-मन वह प्रसन्न हुई परन्तु यह न जान सकी कि वृन्दा का गर्भ अनैतिकता की कहानी है।

दो-चार दिन रहकर शरद नासिक लौट गई।

और इसके बाद वृन्दा के गर्भ का नया समाचार वायुवेग से सर्वत्र फैल

गया। शरद ने अपनी बड़ी बहन प्रभावती को सब से पहले यह खबर सुनाई। इधर प्रभावती समय-समय पर सुमति को पत्र लिखती थी, अतएव वृन्दा के गर्भ की सूचना उसने सुमति को दी।

प्रभावती का पत्र पढ़ते ही, सुमति को जैसे एक धक्का लगा। बड़ी देर तक विचार में बैठी रही। मन में प्रश्न उठा—'तो आखिर मुकुन्द ने अपनी धुन छोड़ दी? अच्छा हुआ, अब आदमी बन जाएगा?' तत्काल उसने एक पत्र लिखकर मुकुन्द को बधाई दी और आशा व्यक्त की कि पुत्र-जन्मोपरान्त पति-पत्नी अधिकाधिक निकट आ जाएँगे।

लेकिन उल्टा नतीजा निकला। लौटती डाक से सुमति को मुकुन्द का यह पत्र मिला—

"प्रिय सुमति बहन,

आज तक मैंने तुमसे कोई बात नहीं छिपाई। यह अलग बात है कि मैं दूसरों से इतना घुलमिल न सका। लेकिन मैंने तुम्हें आज तक सब कुछ बताया है, इसलिए यह रहस्य भी गुप्त रखना नहीं चाहता।"

"तुम्हें बताना चाहता हूँ कि मैंने अब तक संयम-नियम की अपनी प्रतिज्ञा का भंग नहीं किया है। मेरी ब्रह्मचर्य-धारा पूर्ववत बह रही है, अतएव वृन्दा के गर्भ का संबंध मुझसे नहीं जोड़ा जा सकता। मैं उसके भावी शिशु का पिता नहीं। तुम्हें यह बात विचित्र प्रतीत होगी, लेकिन मैं जो कुछ कह रहा हूँ, सच-सच कहता हूँ।"

"मैं वृन्दा को दोष नहीं देता। उसने मेरे अनुकूल बनने का प्रयत्न किया, परन्तु वह ऐसा न कर सकी और मानसिक कमजोरियों के कारण उसने यह कदम उठाया। वह पापिनी नहीं। जो हुआ, सो हुआ। अब भी मैं वृन्दा का पति हूँ और प्रत्येक परिस्थिति में उसका सहयोगी हूँ। उसका सतत रक्षण करूँगा। यदि वह मुझे छोड़ जाती तो बात अलग थी, लेकिन वह अब भी मेरे साथ रहती है, इसलिए उसे अभय रखना मेरा कर्तव्य है। उसी प्रकार उसे आश्रय देना भी मैं प्रथम कर्तव्य मानता हूँ...." इत्यादि।

यह पढ़कर सुमति सन्न रह गई। मुकुन्द पर क्रोध किया जाए या उस पर

दया रखी जाए ? अन्त में उसने अपने पति लीलाधर को यह पत्र पढ़ाया ! लीलाधर तो गुस्से से उबल पड़ा—"यह काला काम उस बदमाश चन्द्रशेखर का है। वह इसीलिए बड़ौदा गया था। यदि वह नीच इस वक्त मेरे सामने होता तो मैं उसका गला घोंट देता।"

"लेकिन उस अकेले को दोष देना बेकार है।"—सुमति बोली—"वृन्दा की हिम्मत भी देखिए! वह लड़की काबू से बाहर चली गई है। एकदम उच्छृङ्खल और आवारा हो गई है।"

"परन्तु वह बेचारी दुनिया की बुराइयों को क्या जाने ? चन्द्रशेखर के दिखाये लोभ-लालच का वह शिकार बनी होगी। यह साँप बाहर-बाहर इतना आकर्षक प्रतीत होता है।"

दम्पति ने बड़ी देर तक इस विषय पर चर्चा की और अन्ततया यह निर्णय किया कि दोनों को बड़ौदा जाना चाहिए।

मुकुन्द उन्हें लिवाने स्टेशन आया। उसे देखते ही सुमति का हृदय क्रोध से भर गया। हुतात्मा-सा लगता था मुकुन्द। सुमति को उसके एकपक्षीय विचार नापसन्द थे। इतना होने पर भी एक साधु पुरुष की भलाई और भोले-पन का लाभ एक दुष्ट चरित्र व्यक्ति अपनी दुष्टतापूर्ण वासना की पूर्ति के रूप में उठाए, यह सुमति जैसी संघर्षशील लड़की कैसे सहन कर सकती थी !

तीनों घर आए। वृन्दा ने देखा कि उन लोगों के सामने उसका रहस्य सुरक्षित है, अतः वह संकोच छोड़कर मिली। लीलाधर ने बड़ी शान्ति से उससे बातचीत की, परन्तु सुमति के मन में तो उसके लिए पर्याप्त क्रोध था। इसका कारण यह था कि सुमति के मन में मुकुन्द के लिए बड़ा स्नेह था। दूसरे, वृन्दा ने मुकुन्द के साथ विश्वासघात किया था। अतएव वह सारा दोष वृन्दा के सिर पर रखती थी। लेकिन बाहर उसने अपना रोष व्यक्त न होने दिया।

फिर मुकुन्द और सुमति की बातें हुईं एकान्त में। सुमति ने मुकुन्द को बड़ा उलाहना दिया। वह निरन्तर चन्द्रशेखर को बुरा-भला कहती रही और बताया कि उस लम्पट ने उसके साथ भी खेल खेलने का प्रयत्न किया था, परन्तु

निष्फल रहा।

सुनकर, मुकुन्द ने उत्तर दिया—"वह तुम्हें अपनी पत्नी बनाना चाहता होगा और इसी में अपना सुख देखा होगा। फिर मैं उसकी बुराइयाँ जानता हूँ। माँ से उसे सुसंस्कार न मिले और पिता दुर्व्यसनी!"

"मैं भी तो यही कहती हूँ। जैसी खदान, वैसी मिट्टी।"

"मेरा आशय यह नहीं। उसे घर में किसी प्रकार का सुख नहीं है, इसलिए योग्य पत्नी की उसकी अभिलाषा स्वाभाविक है।"

"तो क्या उसके पास, दूसरों की औरतें फँसाने के सिवाय, और कोई रास्ता नहीं।" लीलाधर क्रोधपूर्वक बीच में ही बोल उठा।

फिर सुमति बोली —"अब यह सब जाने दो। बताओ आगे क्या करें?"

"करना क्या? मैं यथाशक्ति वृन्दा की सेवा करूँगा।"

वृन्दा की प्रसूति की कल्पना पर सुमति को खयाल आया कि यह बालक तो चन्द्रशेखर का होगा। इस पर वह चिढ़ गई, पूछा - "बालक से तुम्हारा कैसा व्यवहार रहेगा?"

"क्यों? एक पिता-जैसा...."

"अरे राम!" सुमति के मुँह से निकल गया।

लीलाधर ने मुकुन्द से कहा—"वृन्दा की प्रसूति का यह पहला अवसर है, अतएव उसे अपने पीहर भेज दो अथवा हमारे यहाँ भेज दो, सुमति उसकी पूरी देख-रेख रखेगी।"

सुमति ने भी आग्रह किया। इस पर मुकुन्द ने बताया कि यह सब वृन्दा पर निर्भर है। वृन्दा ने साफ-साफ कुछ न कहा कि वह जाना चाहती है या नहीं। वह मात्र मौन रही।

सुमति का मन खिन्न हो गया। वृन्दा को साथ ले जाने का विचार उसने छोड़ दिया। उसे यह कल्पना करते हुए भी कष्ट होता था कि अब मुकुन्द का क्या होगा।

४८

गृहत्याग

दिन-पर-दिन बीतने लगे। सुमति और लीलाधर चिन्ता और आशंका लिये बड़ौदा पर दृष्टि लगाए रहे। सुमति के मन में मुकुन्द के प्रति क्रोध भी था और करुणा भी। वृन्दा से, ब्याह के पूर्व, सुमति के मन में स्नेह था, परन्तु अब वह ओझल हो गया था। माना कि वृन्दा की स्थिति दयनीय रही थी बचपन में, परन्तु वह इतनी पतित एवं, उच्छृङ्खल कैसे हो गई। दुनिया में असंख्य बालविधवाएँ हैं, वे क्या संयमपूर्वक नहीं रहतीं? और वृन्दा को आजीवन ब्रह्मचर्य थोड़े ही पालना था। कुछ धीरज रखती तो सब ठीक हो जाता—यों सुमति के मन में तिरस्कार के विचार आते।

सुमति ने वृन्दा को कई पत्र लिखे पर वह बम्बई आने को तैयार न हुई। मुकुन्द से भी वह यदा-कदा ही बोलती। उनके पीहर से भी प्रसूति के लिए बुलावा आया, पर उसने वहाँ जाना स्वीकार न किया। उसके मन में क्या था, इसका पता मुकुन्द तक को न मिला।

सर्दियाँ समाप्त होकर गर्मियाँ आ गई थीं। लेकिन वृन्दा सैर के लिए बाहर जाने की बात भी मुँह से नहीं निकालती थी। अन्त में प्रसूतिगृह में अपना नाम लिखवा देने पर तीसरे दिन उसके एक बालक उत्पन्न हुआ। वृन्दा का शरीर गल गया था, परन्तु बालक तन्दुरुस्त था। उसका गोल-मोल चेहरा और

स्वस्थ शरीर देखकर नर्सों को भी आश्चर्य हो रहा था। जब मुकुन्द ने उसे पहले-पहल देखा तो उसके मन ने कहा, कुछ भी हो, यह वृन्दा का पिंड है, इसलिए स्नेहपात्र है।

दस दिन बाद वृन्दा घर आई। उसने किसी प्रकार की रस्म अदा न की। न इस विषय में एक शब्द ही कहा। जब मुकुन्द के मित्र और उसकी सहेलियाँ बालक को देखने आतीं, उसे भेंट देतीं, तब वृन्दा यों चुप बैठी रहती, मानो वह चोर है, उसने चोरी की है।

मुकुन्द ने बालक का नाम रखा—सत्यकाम। अब उसकी सेवा और स्नेह का घेरा दुगुना हो गया। वह तत्परतापूर्वक दोनों की सेवा करने लगा। लेकिन, वृन्दा को यह अच्छा न लगता था कि मुकुन्द बच्चे को प्यार करे और उसे 'सत्यकाम' कहकर बुलाए।

इधर सुमति को मुकुन्द से बराबर सभी समाचार मिलते रहे थे। सारा काम निर्विघ्न समाप्त होने का उसे सन्तोष था। परन्तु मन का प्रश्न न मिटा था कि अब क्या होगा?

सत्यकाम के जन्मोपरान्त तीन महीने बीत गए। एक दिन मुकुन्द अपने दफ्तर से जल्द लौट आया। देखा, घर के नीचे, सीढ़ियों के सामने चन्द्रशेखर की कार खड़ी है। उसने सोचा कि लौट जाए परन्तु पैर जीना चढ़ने लगे। सामने विदेशी पोशाक में सजा हुआ, लौटता हुआ चन्द्रशेखर मिला। मुकुन्द को देखकर उसका चेहरा उतर गया और लम्बे डग बढ़ाता वह लौट गया।

मुकुन्द ने भीतर जाकर देखा, वृन्दा ढीली-पीली कोच पर पड़ी है। उसका मुख और नाक की नोक लाल-सुर्ख हो गई है। लगता था, वह बहुत रोई है। मुकुन्द को देखकर वह एक झटके से उठ खड़ी हुई। फिर दौड़कर अपने कमरे में चली गई और दरवाज़ा भीतर से बन्द कर लिया।

मुकुन्द खिसिया गया। उसे कुछ न सूझा। उसकी कौनसी ग़लती है? वह अपने कमरे में गया और ज्ञानेश्वरी-गीता का पाठ करने लगा।

सारा दिन यों ही चला गया। दूसरी साँझ मुकुन्द ज़रा देर से घर लौटा। ज़रा ढकेलने पर किवाड़ खुल गए—और मुकुन्द भीतर प्रविष्ट हुआ।

अँधेरा हो गया था। पर घर में अब तक दीया न जला था। फिर भी किसी अमंगल की कल्पना किए बिना, मुकुन्द हमेशा की तरह सत्यकाम को देखने के लिए वृन्दा के कमरे में गया, लेकिन यह क्या, वहाँ कोई न था। सारा घर खाली था। सारी चीजें जैसी की तैसी रखी थीं। मुँह पर उँगली रखे मुकुन्द विचार करने लगा, बच्चे को लेकर वह कहाँ चली गयी है?

अन्यमनस्क वह अपने कमरे में गया तो देखा कि मेज़ पर एक पत्र है—

"अब यहाँ रहने के लिए मेरा मन तैयार नहीं। यद्यपि दुनिया के सामने मेरा सिर ऊँचा रखने में आपने मेरी पूरी सहायता की (इस उपकार को भूलूँगी नहीं) फिर भी मेरे मन में जो व्यथा है, उसका पार नहीं। यह मानकर कि मैं आपके जीवनपंथ की बाधा हूँ, दूर जा रही हूँ और साहस कर रही हूँ अतएव मेरी तलाश न करना। राज़ी-खुशी से गृह त्याग कर रही हूँ।"—वृन्दा।

मुकुन्द को इससे बहुत दुःख हुआ। उसे लगने लगा कि वह वृन्दा को अभय वचन देने में सफल नहीं हुआ। लेकिन वह क्या चन्द्रशेखर के साथ गई है? इस प्रश्न का उसे उत्तर न मिला तो वह चन्द्रशेखर के बँगले तक जाकर देख आया। दरवाजा बन्द था और बाहर 'मकान किराए पर देना है, का पटिया लगा था।

अब मुकुन्द की निराशा और ग्लानि का पार न रहा। वह कुर्सी पर बैठा, विचारों में उलझ गया। शायद दोनों के साथ जाने का निश्चय किया है। फिर भी उसके मन ने यह स्वीकार न किया, क्योंकि जिस दिन चन्द्रशेखर घर आया था उस दिन वृन्दा रो रही थी। उसके रोने का क्या कारण था?

लेकिन यों विचार करने से क्या फायदा? अब क्या उसे पूर्ववत जीवन-निर्वाह करना चाहिए?—उसने संसार सुख की कल्पना आज तक न की थी। पत्नी उसकी जीवन-ज्योति बने, इसलिए तो उसने विवाह किया था। अब वृन्दा चली गई, तो इस घर में किसके लिए रहे? खैर, ईश्वर ने जो

किया, भले के लिए किया है। अब मेरे सारे पाश टूट गए हैं।

वह गद्गद् होकर अपनी माँ का स्मरण करने लगा और बल तथा सामर्थ्य पाने के लिए प्रार्थना करने लगा। उसकी आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगे। फिर कुछ याद आया तो आँखें पोंछकर एक पत्र लिखने लगा।

"प्रिय सुमति बहन,

"मंगलमय परमात्मा ने मेरे लिए एक नए वरदान की रचना की है। पूर्ण विनम्रतापूर्वक उसे स्वीकार किए बिना छुटकारा नहीं। वह कृपालु जिस स्थिति में मुझे रखता है, उसी में मैं सदैव आनन्द मानता हूँ।"

"आज वृन्दा अपने शिशु-सहित यहाँ से चली गई। जब दफ्तर से लौटा तो उसका खत मुझे मेज़ पर मिला जो इस पत्र के साथ भेज रहा हूँ।"

"माया के सभी बन्धन टूट जाने पर और कर्म का कोई बन्धन शेष न रहने से मैं घर को नमस्कार कर एकान्त सेवन के लिए जा रहा हूँ। तुम मेरी खोज न करना, यही प्रार्थना है।

"सन्तप्त हृदय को सान्त्वना देने के लिए मैं प्रभु-चरणों का आश्रय ले रहा हूँ। जब शान्ति मिल जाएगी, जब ईश्वर की इच्छा होगी, तो हम फिर मिलेंगे।

"घर की चाभी पड़ौसी को दी है। तुम यहाँ आकर सारी चीजें सँभाल लेना। वृन्दा जो चाहे, ले सकती है। चेक-बुक भी वह यहीं रखती गई है। यह भी उसी की है, यह मैं मानता हूँ।"

"अधिक क्या लिखूँ? तुम और लीलाधर मुझे प्रिय हो। दोनों ने मुझपर सतत प्रेम-वर्षण किया है। इसके लिए मैं दोनों का अन्तःकरणपूर्वक आभार मानता हूँ।

आपका विनम्र भाई

मुकुन्द"

उस उदास रात्रि में वह शून्य हृदय, दीन प्रवासी अपनी मंजिल काट रहा था। संसार का होने पर भी वह संसार के लिए पराया हो गया था।

४१

बहनें

"सुनते हो ?" काँपते हुए स्वर में सुमति ने पुकारा। लीलाधर के आने पर उसने मुकुन्द का पत्र दिखाया। लीलाधर भी दुःखी हो गया। सुमति ने लीलाधर के उल्टे सिद्धान्तों को बुरा-भला बताया। लीलाधर चुपचाप सुनता रहा। अन्त में बोला—"मैं आज ही बड़ौदा जाता हूँ।"

"वहाँ जाकर क्या करोगे ?"

"प्रयत्न तो करना चाहिए। खोज करूँगा।"

"और वृन्दा की ?"

"मुझे लगता है सबसे पहले उस शैतान चन्द्रशेखर का पता लगाना चाहिए।"

अन्त में लीलाधर बड़ौदा गया। उसने पता लगाने का पूरा प्रयत्न किया परन्तु किसी का पता न चला। चन्द्रशेखर के दफ्तर में पूछताछ करने पर बताया गया कि उसने अपना तबादला बम्बई करवा लिया है।

मुकुन्द का पता न लगने पर लीलाधर उसके घर-बार की व्यवस्था करके बम्बई लौट आया। वह ज़ीना चढ़ रहा था कि सुमति दौड़ती हुई सामने आई—"वृन्दा का पता मिल गया। वह शरद के यहाँ नासिक में है।"

लीलाधर ने सन्तोष की साँस ली। उसने बताया कि चन्द्रशेखर बम्बई आ

गया है। तदुपरान्त दम्पति बड़ी देर तक चर्चा करते रहे और यह तय रहा कि सुमति नासिक जाकर वृन्दा को ले आए।

सुमति को अचानक आई देख शरद विस्मय में पड़ गई। उसने वृन्दा को एकान्त में मुकुन्द का कागज पढ़ाया। कागज पढ़कर वृन्दा सिर झुकाकर चुपचाप बैठी रही। सुमति ने उसे स्नेह, अनुताप और शिक्षा-विधि से समझाया। वृन्दा ने स्वीकार किया कि वह उस चिन्तामणि का मूल्य समझने मे असमर्थ रही है और यह सोचकर कि वह उसके जीवन के महान ध्येय में बाधा है, वह दूर हुई है। सुमति ने चन्द्रशेखर को बुरा-भला कहा तो वृन्दा ने विरोध किया। फिर भी उसने स्वीकार किया कि मतलब निकल जाने पर चन्द्रशेखर ने अपना असली रूप दिखाया। फिर उसका मुँह लज्जा से लाल हो गया और धीरे-धीरे वह कहने लगी—"वह भी बुरा आदमी नहीं है। इन्सान एक बार गलती कर बैठता है तो दूसरी बार वही गलती नहीं दुहराता। उन्होंने (मुकुन्द) मुझे कहा था कि पति-पत्नी में से यदि कोई संयम रखना चाहे और दूसरा न रखना चाहे तो, ब्रह्मचर्य न चाहने वाले को खुशी से दूसरा साथी पसन्द करने की छूट होनी चाहिए....उस वक्त मुझे यह विचार तनिक भी पसन्द न आया था। बाद में मेरा मन मोहान्ध हुआ। अन्ततया कोई उपाय न देख, मैंने दूसरा आधार स्वीकार किया। उसने मुझे मीठा-मीठा कह-सुनकर फँसा लिया और वक्त आने पर नौ-दो-ग्यारह हो गया। तब मेरा भ्रम दूर हुआ। मैंने सोचा इन्होंने चाहे जितनी उदारता दिखलाई हो, एक बार जब मुझे अपने पाप का ज्ञान हो गया है, इनके पास मुझे न रहना चाहिए और प्रायश्चित करके इस भार से मुक्त होना चाहिए। अतएव मैं घर छोड़कर चल पड़ी और यहाँ आई। लोक-दृष्टि में मैं सधवा हूँ पर अपने-आपको विधवा मानती हूँ और किसी विधवा की तरह मेहनत-मजदूरी करके अपना और अपने बच्चे का पेट भरना चाहती हूँ।"—यह सब सुनकर सुमति का क्रोध शान्त हो गया। उसने वृन्दा से, अपने साथ चलने का आग्रह किया लेकिन वृन्दा ने स्वीकार न किया।

अन्त में सुमति शरद से मिली और शरद ने वृन्दा की देख-रेख का पूरा-

आश्वासन दिया—"क्या कहती हो सुमति बहन ! मेरी अपनी सहेली वृन्दा, और मैं उसकी देखभाल न करूँ ?"

जाते वक्त सुमति ने वृन्दा से कहा—"हम तुम्हारा सामान बम्बई ले आए हैं और मुकुन्द ने कहा था कि बैंक की चेक-बुक भी तुम्हारी अपनी ही है सो, तुम कहो तो सब चीजें यहाँ भेज दूँ ?"

"नहीं-नहीं। मुझे कुछ नहीं चाहिए।"—वृन्दा ने छोटा-सा जवाब दिया।

फिर वृन्दा को सावधानी से रहने की सलाह देकर, जब भी सहायता की जरूरत हो, सूचना देने को कहकर, सुमति बम्बई रवाना हो गई।

५०

वनवास

विशाल वसुन्धरा। प्रशान्त समुद्र और भव्य एवं सुरम्य पर्वतमाला। ऐसे समय पृथ्वी के मान-दण्ड से नगाधिराज हिमालय की शोभा का वर्णन कैसे किया जा सकता है?

ऊपर अनन्त आकाश, नीचे धरती का अनन्त विस्तार। जिधर देखो, उधर विराट का साक्षात्कार होता है।

मुकुन्द ने इसी नितान्त प्रशान्त प्रदेश का आश्रय लिया था। हिमालय की गोद में उसका हृदय-कमल खिलने लगा। गिरि-झरनों के पास घंटों बैठा वह विश्व-चक्र का निरीक्षण करता रहता। यों वर्षा के बाद शरद ऋतु आई। फिर अपने शारीरिक सुख का ध्यान छोड़ वह दिन-पर-दिन बिताने लगा। अन्न, वस्त्र या शीत की उसे चिन्ता न थी। घर छोड़ने पर उसने संन्यासी का वेश पहन लिया था।

एक साँझ वह सँकड़े पर्वतीय मार्ग से ध्यान-मग्न जा रहा था कि उसके कानों में 'हेल्प-हेल्प' का आर्त स्वर पड़ा। वह चौंक उठा और जिस दिशा से यह स्वर आ रहा था, उस ओर देखा। दूर एक ऊँची टेकड़ी पर खड़ा एक आदमी चिल्ला रहा था। मुकुन्द तत्काल दौड़ पड़ा। उसे देखकर उस व्यक्ति के प्राण लौट आए और उसने नीचे खड्ड की ओर संकेत किया। मुकुन्द ने

देखा कि वहाँ एक दूसरा यूरोपियन पत्थर की शिला थामे लटक रहा है। मुकुन्द ने उस व्यक्ति को बाहर खींचा और दोनों विदेशियों ने उसका आभार माना।

दुर्घटनाग्रस्त यूरोपियन की देह से यत्र-तत्र खून बह रहा था, अतएव मुकुन्द उसे अपने यहाँ लाया। तीनों एक गुफा में आए। घर छोड़कर संन्यासी का भेष धारण करने के बाद मुकुन्द ने इसी गुफा को अपना निवास-स्थान बनाया था। उसने घायल व्यक्ति की सेवा की और अपने यहाँ विश्राम कराया। मुकुन्द की अंग्रेजी भाषा सुनकर दोनों विदेशी चकित रह गए। फिर पारस्परिक परिचय हुआ। विदेशियों में से एक तो जर्मन और दूसरा स्वीज था। दोनों हिमालय-पर्वत पर चढ़ने के लिए निकले थे। जर्मन प्रोफेसर था और उसकी नजर इस प्रदेश के खनिज भंडार पर थी। दूसरा डाक्टर था और हिमालय की विचित्र औषधियाँ उसका आकर्षण थीं।

फिर मुकुन्द का परिचय सुनकर दोनों बहुत प्रसन्न हुए।

जब दोनों अतिथि निद्राधीन हो गए तब भी मुकुन्द को नींद न आई। और अतिथियों के शब्द बार-बार उसके कान में गूँजते रहे। उसे लगा कि उसने आज तक का अपना जीवन व्यर्थ खोया है। जन्मभूमि से उसे बहुत कुछ मिला है—शरीर, अन्न, शिक्षा-संस्कार और और भी बहुत कुछ। उनके बदले में, भला उसने क्या दिया? मन में यह प्रश्न मँडराने लगा और उसने सोते हुए यूरोपियनों की तरफ देखा—ये लोग सचमुच कर्मयोगी हैं। ज्ञान की जिज्ञासा इन्हें कहाँ ले आई है! जब तक अपना इच्छित लक्ष्य सिद्ध नहीं होता तब तक ये चैन से नहीं बैठते। मैंने गीता के कर्मयोग का, वस्तुतः, सही उपयोग नहीं किया। आचरण में उसे न ला सका और इधर-उधर भटकता रहा। तत्पश्चात् उसने निर्णय किया कि आगामी कल बड़ी भोर वह यह स्थान छोड़ देगा और मनुष्यों के बीच जाकर अपना काम शुरू करेगा। फिर तो ईश्वर ही उसे मार्ग दिखाएगा।

प्रातःकाल हुआ। मुकुन्द को धन्यवाद देकर दोनों विदेशी लौट गए इसके बाद मुकुन्द ने भी गुफा के बाहर अपना पैर रखा और पर्वतराज को प्रणामकर हरिद्वार के रास्ते चल पड़ा।

५१
सरयू के साथ

डेढ़ वर्ष बीत गया।

आश्विन मास शुरू हो गया था। बम्बई में उस महीने में कुछ ज्यादा गर्मी पड़ती है, इस खयाल से बम्बई-वासी प्रति साँझ घूमने जाते हैं। ऐसी ही एक शाम हैंगिंग गार्डन में लोगों की भीड़ थी, बच्चे खेल रहे थे और युवक-युवतियों के टोले सैर कर रहे थे। बैन्ड-स्टैन्ड के पास एक बेंच पर, एक तरुणी बैठी थी। पास ही छोटी-सी गाड़ी में एक बालक खेल रहा था। सामने से एक युवती आकर खड़ी हो गई, बोली—"अरे, सुमति बहन, इस गरीब सहेली को पहचानती हो?"

सुमति ने चौंककर देखा, तो उसकी सहेली सरयू थी। सुमति ने देखा कि सरयू के भाल पर बेंदी नहीं है। उसकी उलझन देखकर, सरयू ने कहा—"तुम्हें आश्चर्य हो रहा है, सुमति! लेकिन मैं विधवा हो गई हूँ, बहन! इस बात को एक साल हो गया। अच्छा, तुम अपनी बात बताओ। सुना था कि लीलाधर से तुम्हारा ब्याह हो गया था। यह बालक कौन है? लगता है, तुम्हारा है?"

सुमति ने मातृ-सुलभ गर्व से अपने पुत्र को सरयू के हाथों में दिया। फिर सरयू के पूछने पर सुमति ने अपनी ससुराल का हाल सुनाया। इस बीच हेम-

लता वहाँ आ गई और सुमति के लड़के, अरविन्द को खिलाने लगी।

चन्द्रशेखर की बात चल निकलने पर, सरयू ने अपनी कष्ट-कथा यों कही —"आज कई वर्षों से मैं एक बात छिपाए बैठी हूँ, वही तुम्हें बताती हूँ। मेरे विचार लगभग वही हैं, जो पहले थे। पुरुष के अत्याचारों के कारण, मेरे यह विचार दब गए थे। मेरा अनुभव कहता है कि पुरुष का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए, पहले तो वह मीठा बोलकर, फँसा लेता है, फिर अपना असली रूप दिखाता है। इसी से मेरा यह मत बन गया है कि स्वतन्त्र विचार रखनेवाली लड़कियों को ब्याह नहीं करना चाहिए। तारुण्य के उन्माद में, मैं बेवक़ूफ़ बनी। कुछ रोमान्स भी सूझा, चन्द्रशेखर मिला, उसने मुझसे मित्रता रखी और कई प्रलोभन और कई उपहार दिए। मैं उसके जाल में फँस गई, लेकिन इतना मेरा सौभाग्य रहा कि मैंने अपना शील नहीं खोया। वह मुझे कुपथ पर ले जाना चाहता था, मेरी लाज लूटना चाहता था, पर मैंने पहले विवाह की शर्त रखी। तब उसने जल्दी ही विवाह कर लेने का वचन देकर, मुझे ललचाना चाहा, फिर भी, मैं उसके चक्कर में नहीं आई। धीरे-धीरे उसका सही स्वरूप मैंने देख लिया और अपना भविष्य माता-पिता के हाथों में सौंप दिया। उन्होंने पुराने विचारों के एक व्यक्ति से मेरा विवाह कर दिया। घर में सभी प्रकार का सुख था, परन्तु स्वतंत्रता न थी। अतएव, मेरा मन भीतर-ही-भीतर मुझे काटने लगा। इस बीच वे ईश्वर की शरण में चले गए और यों एक दृष्टि से मैं स्वतंत्र ही हूँ। लेकिन अब मुझे पुरुष-मात्र से चिढ़ है।"

"तेरी कहानी अद्भुत है, सरयू! अच्छा हुआ कि तूने सावधानी रखी।"

"नहीं तो वह शैतान मेरा सत्यानाश कर देता। दूसरी कई लड़कियों का उसने सर्वनाश किया है, यह तो ईश्वर ही जानता है।"

"क्या कहती है!"

"हाँ, ठीक कहती हूँ। मेरे भाई ने ऐसी कई घटनाएँ मुझे बताई हैं। उसे चन्द्रशेखर का सारा इतिहास मालूम है। यहाँ अपनी कुटिलता प्रकाशित हो जाने पर वह कानपुर गया। वहाँ भी चुप न रहा और पिटते-पिटते बचा।

एक सज्जन की बहन को बहकाने का प्रयास किया, परन्तु भंडाफोड़ हो गया और वह वहाँ से बड़ौदा पहुँचा। सुना है, बड़ौदा में भी उसने एक बहन का शील भंग किया और उसे विनष्ट कर दिया। अब वह फिर आया है बम्बई और यहाँ तो सभी रास्ते खुले ही हैं। उसके पिता दो वर्ष-पूर्व मर गए हैं—यह तो तूने सुना ही होगा? उन्होंने घर में किसी बाई को रखा था। चन्द्रशेखर ने अब उसे घर से निकाल दिया है। छोटे भाई को बोर्डिंग में भेज दिया है, और खुद रात-दिन कार में मौज-मजा उड़ाता है। देख तो सही, ऐसे नीच आदमी को पैसा भी खूब मिल जाता है! आश्चर्य की बात है, अब वे जनाब निर्मला के पीछे पड़े हैं और उससे शादी करना चाहते हैं।"

"कौन, अपनी निर्मला? वह तो बड़ी होशियार और घमण्डी लड़की है। वह कैसे इसके हाथ पड़ गई?"

"यह बात न पूछ, सुमति, आजकल की दुनिया भले आदमियों के लिए नहीं है, जो कुछ चमकता है, सोना नहीं है।"

"हाँ, इससे क्या हुआ! जर्मनी से वह डिग्री लेकर आई, तो उसकी शोभा बढ़ाने के लिए पैसा भी तो चाहिए न?"

"उसके पिता श्रीमंत थे। जमीन-जायदाद थी? उसे पैसे की क्या जरूरत?"

"खाक जायदाद! दिवाला निकालकर गए हैं! इसीलिए निर्मला अपनी रूस-यात्रा अधूरी छोड़कर, जल्दी-जल्दी लौट आई और अब अकेली है। जैसे-तैसे अपना खर्च चलाती है। मालूम होता है, किसी सेठ से खानगी में मदद ली है?"

"ली होगी; परन्तु मैं जानती हूँ, वह बहुत उत्साही और पराक्रमी लड़की है। मजदूरों का संगठन करने में उसने बड़ी मेहनत की है।"

"लेकिन किसी सेठ ने मदद दी होगी तो क्या मुफ्त में दी होगी?" इतना कहकर सरयू रस-भरी हँसी हँस दी।

"ऐसी गलत बात नहीं करनी चाहिए, सरयू। मैं उसे जानती हूँ, उसका चरित्र शुद्ध है, वह ऐसी नहीं कि सहज ही चन्द्रशेखर के जाल में फँस जाए।

"यह तुम्हारा भ्रम है। चन्द्रशेखर ने उसके चारों ओर पक्का फन्दा डाला है। वह छूटकर नहीं जा सकती। वह उससे ब्याह करेगी और फिर तो पछ-ताना ही बाकी रहेगा।"

सुमति ने एक गहरी साँस ली और कुछ कह न सकी। लीलाधर उधर आ निकला। उसे देखकर, सरयू जाने लगी, तो सुमति ने उसे रोकना चाहा—"बैठ न जरा!"

"आज नहीं, फिर कभी मिलूँगी।" इतना कहकर सरयू चल पड़ी।

५२

नया जमाना : एक प्रसंग

पैडर रोड पर, अपने बंगले के दीवानखाने में, चन्द्रशेखर निर्मला से बातें कर रहा था।

चन्द्रशेखर विदेशी वेष-भूषा में सज्जित था। कमरा भी विदेशी ढंग से सजा हुआ था। चन्द्रशेखर कुर्सी पर बैठा था और निर्मला सामने कोच-पर पड़ी थी। योरप जाते वक्त उसके शरीर और चेहरे पर जो यौवन लहरा रहा था, आज उसकी छटा शेष न रही थी। परन्तु उसके प्रत्येक अवयव का पूर्ण विकास हो जाने से उसकी देह आकर्षक लगती थी, मानो किसी कुशल चित्रकार ने आखिर का एक 'फिनिशिंग टच' दिया हो। निर्मला के बाल 'बॉब्ड' थे। हाथ में एक नाजुक सिगरेट सुलग रही थी।

आज चन्द्रशेखर ने उसे भोजन का निमन्त्रण दिया था। भोजनोपरान्त, दोनों अब बातों में लगे थे। चन्द्रशेखर निर्मला को आसक्त भाव से एकटक देख रहा था, लेकिन वह स्वाभाविक ढंग से चर्चा कर रही थी। 'मजदूर-संगठन और क्रान्ति' बातचीत का विषय था। निर्मला की बातचीत से उसके गहन अध्ययन और अनुभव का पता चलता था।

काफी समय के वार्तालाप के पश्चात् चन्द्रशेखर ने हिम्मत करके कहा—"अब मैं तुम्हें साफ कह देना चाहता हूँ कि मैं अभी पक्का साम्यवादी नहीं बन

सका हूँ। अतः मेरा सम्भाषण तुम्हारे शास्त्रीय चौखटे में भलीभाँति न बैठ सकेगा। लेकिन धीरे-धीरे यह भी हो जाएगा। मैं तुम्हें अपनी जीवन-संगिनी बनाना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है कि तुम्हारा उत्तर स्वीकृति में मिलेगा।"

"तुम अपना व्यक्तिगत विचार प्रदर्शित करो, इसमें मुझे क्या उज्र हो सकता है? स्वीकृति या अस्वीकृति मेरे हाथ की बात है। विवाह एक समझौता है, उसकी शर्तें यदि दोनों को स्वीकार हों तो बाद में कोई असुविधा नहीं रहती। लेकिन सम्भव है कि विवाह-विषयक हम दोनों का अनुमान समान न हो। इसकी पुष्टि के लिए, हमें यही देख लेना चाहिए कि हम दोनों के बीच विचारों की समानता है, या नहीं। यदि समानता है, तो कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होगी।"

चन्द्रशेखर ने मन-ही मन कहा—'ठीक है लड़की।' और यह जानकर उसे प्रसन्नता हुई कि निर्मला उसके शिकंजे में फँसती जा रही है। वह मन-ही-मन मुस्कराया और मन-ही-मन कहने लगा—'तू एक बार मेरे पंजे में फँस जा, फिर मैं तुझे अपना जादू दिखाऊँगा!' प्रकट रूप से बोला—"इस विषय में पहले तुम्हीं कुछ कहो, तो ठीक है।"

"कोई बात नहीं, मैं ही पहले शुरू करती हूँ। मेरे विचार में पति और पत्नी परस्पर कामरेड होने चाहिए। दोनों को अपने-अपने मत, विचार और व्यवहार की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए।"

"मंजूर! और?"

"यह तो एक बहुत साधारण शर्त है। यदि मैं अपने बारे में कुछ कहूँ, तो आप यह भलीभाँति जानते हैं कि मेरा रहन-सहन, खान-पान, मत-मतान्तर, कार्य और लक्ष्य कैसा-क्या है। विवाहोपरान्त इनमें तनिक भी अन्तर न आएगा।"

"यह भी मंजूर।"

"मैं सिगरेट पीती हूँ, मद्य-सेवन करती हूँ और मांसाहारी भी हूँ। मैं यह सब तुम्हारी सूचना के लिए बता रही हूँ।"

उसके जैसा चन्द्रशेखर स्वयम् भी व्यसनी था। फिर भी किसी भारतीय

पति को यह कभी स्वीकार नहीं हो सकता कि उसकी अर्द्धांगिनी मर्यादा के बाहर खान-पान अपनाए। लेकिन इस समय चन्द्रशेखर के सामने सोलहवीं सदी की परदे में बन्द स्त्री नहीं थी, परन्तु बीसवीं सदी की सुशिक्षिता, अनुभवी और घाट-घाट का जिसने पानी पिया है—ऐसी चतुर युवती बैठी थी।

उसके मन में निर्मला को किसी भी प्रकार पा लेने की ललक थी। उसे अपना दिशा-शून्य और उड़ता हुआ जीवन निरर्थक लगता था। इसीलिए तो वह विवाह करने के लिए उतावला हो गया था। किसी गृहस्थ की लड़की उसे मिलनी कठिन थी, इसलिए यदि निर्मला जैसी प्रसिद्ध समाज-सेविका वह पा जाए, तो एक तीर से दो निशाने सध जाएँ—पत्नी भी मिले और प्रसिद्धि भी। और इसीलिए वह निर्मला की प्रत्येक शर्त सुन-सुनकर स्वीकृति देता जा रहा था। उसके मन में यह खयाल था कि इस समय यह चाहे जितनी चतुराई दिखलाए, अन्ततया है तो अबला ही न? शादी के बाद मेरे कब्जे में आ जाएगी। फिर तो यह है, और मैं हूँ! अपनी इच्छानुसार मोड़ लूँगा।

"संतति-नियमन भी होगा। इसकी आवश्यकता अथवा अनावश्यकता का निर्णय मैं करूँगी।" इस प्रकार के सीधे वार से चन्द्रशेखर घबरा गया लेकिन निर्मला से ब्याह करना हो, तो उसकी ऐसी सभी शर्तें स्वीकार किए बिना कोई चारा नहीं था।

"काम के लिए अथवा किसी कारण-वश मैं कई प्रकार के लोगों से मिलती-जुलती हूँ। उनके घर भी जाना पड़ता है और कभी-कभी उन्हीं के यहाँ सो भी जाती हूँ। ऐसे अवसर पर अपने मन में किसी बेकार शंका को लाना तुम्हारे लिए अनुचित होगा। मेरे विषय में तुम्हें पूरा-पूरा विश्वास रखना होगा!"

चन्द्रशेखर को यह शर्त बहुत कड़ी मालूम हुई। वह उस वातावरण में पला था जहाँ पति चाहे जितना स्वैर-विहार कर सकता है, परन्तु पत्नी उसके कलंकित पक्ष पर दृष्टि भी नहीं डाल सकती। अतएव निर्मला की यह स्वतंत्रता उसे कैसे पसन्द आती? परन्तु पसन्द न आए, तो भी क्या करे?

उसने गंभीर मुख से उत्तर दिया—"मुझे तुम्हारी सभी शर्तें मंजूर हैं।"

"ये शर्तें मुझ पर भी लागू होती हैं। इसलिए तुम मेरी ओर से भी इसी प्रकार स्वतंत्र हो। हम एक कार्य को लेकर एक हो रहे हैं। तुम्हारा आज तक का व्यवहार तो यही बताता है।"

"हाँ, मैं तुम्हारे काम में समान रूप से भाग लेना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है कि हमारे ब्याह के बाद, यह कार्य अधिक सरल हो जाएगा।"

"तुम्हारी बात सुनकर, मैं सचमुच प्रसन्न हूँ!" इतना कहकर, सिगरेट का टुकड़ा फेंक, वह खड़ी हो गई। और अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ाकर हँसकर बोली—"मैं तुम्हारी बेस्ट कामरेड बनने का प्रयत्न करूँगी। हम दोनों के विचार और काम एक-से हैं। बहुत खुश हूँ।"

चन्द्रशेखर भी तुरन्त उठ खड़ा हुआ और पास जाकर, उसने निर्मला का हाथ अपने हाथ में ले लिया, लेकिन उसकी चेष्टाएँ मर्यादा का उल्लंघन करने लगी थीं। निर्मला ने एक बार कौतूहल से उसे देखा, पल-भर के लिए चन्द्र-शेखर को रस-चेष्टा से रोक लेने को उसका जी हो आया, परन्तु दूसरे ही पल इस विचार को उसने दबा दिया।

"तुम अब भी बोर्जुआ ही रहे।" हँसकर वह बोली।

५३

मुकुन्द ने काम शुरू किया

आकाश में एक प्रकार की क्रीड़ा चल रही थी। एक महाकाय मेघ-घटा के पीछे कई छोटी-छोटी सफेद बदलियाँ दौड़ रही थीं। यह शोभा निरखते हुए दो व्यक्ति खेत का रास्ता काट रहे थे। पास ही, कृष्णा का निर्मल जल बह रहा था। खेतों में हरी-हरी ज्वार शोभा दे रही थी। दोनो व्यक्ति आपस में बातचीत कर रहे थे।

"क्यों पटेल, तुम तो काशी-विश्वनाथ की यात्रा करके आए हो ? तुमने तो हमें इस बात की खबर तक न दी !"

"इसमें खबर देने-जैसी क्या बात थी ? हमारे शास्त्रों का कहना है कि यात्रा करने पर उसका डंका नहीं बजाना चाहिए।"

"लेकिन प्रसाद तो बाँटना चाहिए ?"

"बाँटता। लेकिन भाईजी ने मना कर दिया, गणपतराव !"

"ये भाईजी कौन हैं ? हरबा पाटिल !"

"हमारे गुरुदेव। यात्रा पर गए थे कि उनके दर्शन हो गए।"

"मैंने भी सुना था कि तुम हरिद्वार से किसी बड़े साधु पुरुष को ले आए हो !"

"हाँ, हरिद्वार में मैंने उनका प्रवचन सुना था। मुझपर इतना असर पड़ा

कि प्रवचन के बाद मैंने उनके पैर पकड़कर प्रार्थना की 'महाराज, मेरे पास घर-बार जमीन-जायदाद, खेती-बाड़ी सभी-कुछ है। सन्तान न थी, वह भी, ईश्वर ने दी। आप उसे आशीर्वाद दीजिये।' वे बोले, 'तुम्हें अपना बेटा इतना प्यारा है, लेकिन दुनिया-भर के बालक किसके हैं ? वे भी क्या हमारे ही नहीं हैं ?' मैंने कहा, 'लेकिन महाराज, लहू अपने लहू के पास जाता है।' हँसकर उन्होंने कहा, 'सभी में एक ही लहू बह रहा है। सभी प्राणियों की ओर तुम्हारे मन में ऐसी भावना कब जागृत होगी ?' मैंने कहा, 'आपका उपदेश मिलेगा तब। क्यों न आप अपनी चरण-रज से हमारे घर को पवित्र करें ? मैं आपका शिष्य बनूँगा।' इस पर वे एकदम बोले, 'मैं गुरु नहीं, मैं तो तुम्हारा दास हूँ।' फिर उन्होंने बड़ी मुश्किल से आना स्वीकार किया।"

"अब वे यहाँ आकर क्या करते हैं ?" गणपतराव ने पूछ-ताछ की।

"वह समाने मेरा खेत और बाड़ी है। वहीं कोने में उनकी कुटिया है। स्वामीजी प्रत्येक काम में भाग लेते हैं और हमें कई प्रकार की शिक्षाएँ देते हैं।"

"संन्यासी होने पर भी वे खेत में काम करते हैं ?"

"भाईजी का कहना है कि आज के जमाने में संन्यासियों का आलसी बनकर पड़े रहना अथवा गाँव-गाँव भिक्षा माँगना पाप है। संन्यासियों को लोक-सेवा में लगना चाहिए। भाई जी स्वयं सोलह घंटे काम करते हैं और अपना भोजन भी स्वयं पकाते हैं।"

"लेकिन यह सब वे क्यों करते हैं ?"

"कहते हैं, 'इतने वर्षों तक मैं गरीबों का भार बनकर रहा, अब वक्त आ गया है कि मुझे प्रायश्चित करना चाहिए'।"

"वाह-वा। बड़े पहुँचे हुए संत मालूम होते हैं। उनके दर्शन होंगे क्या ?"

"क्यों नहीं !" इतना कहकर दोनों कुटिया की ओर चल पड़े।

हरबा पाटिल सोनगाँव का सम्पन्न व्यक्ति था। उसका स्वभाव धार्मिक था और इससे गाँव में उसकी प्रतिष्ठा थी। अपने स्नेही स्वभाव के कारण वह सबका प्रिय बन गया था।

सोनगाँव हजार-बारह सौ की बस्ती वाला गाँव था। अधिकांश ग्रामीण किसान थे। कुछ ब्राह्मण और कारीगर भी रहते थे। कृष्णा नदी के जल के कारण खेती अच्छी होती थी। किन्तु भारत के शेष गाँवों-जैसी यहाँ की भी दशा थी। वैसी ही गन्दगी और अशिक्षा।

५४
अनपेक्षित भेंट

हरवा पाटिल की सहायता से मुकुन्द का कार्य धीरे-धीरे किन्तु दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ रहा था। ऐसा तो नहीं कह सकते कि उस गाँव का वातावरण उसके लिए पूर्णतः अनुकूल था। यदि वह बाबाओं की संगति में पड़ा होता तो पचहत्तर प्रतिशत लोग उसकी पूजा करते। वह अपने वंश के लिए एकाध गद्दी भी स्थापित कर लेता। लेकिन वह था कर्मयोगी! सो, उसे रात-दिन काम के अतिरिक्त दूसरा कुछ सूझता नहीं था। संन्यासी शारीरिक श्रम करे और प्रपंच में पड़े यह बात लोगों को विचित्र लगती थी। और जब लोगों ने उसके अंग्रेजी ज्ञान को जाना तो अनेक तर्क-वितर्क होने लगे। सरकारी नौकरों को (जिनमें अधिकतर ब्राह्मण थे) लगा कि मुकुन्द किसी क्रान्तिकारी दल का आदमी होना चाहिए। और इसलिए वे अपनी कायर मनोदशा के अनुसार एक दूसरे को मुकुन्द से दूर रहने की चेतावनी भी देने लगे।

साधारण जन-समुदाय में उसके प्रति आदर था। लेकिन उनकी ग्रामीण बुद्धि की न पटनेवाली एक बात मुकुन्द में यह थी कि वह अस्पृश्यता को नहीं मानता था। सामान्य आदमी यही सोचता कि यह धर्म-विद्रोह है। दूसरी ओर अस्पृश्यों को लगा कि कहीं यह संन्यासी हमें संकट में डाल देगा। उनके इस भय को दूर करने का कोई इलाज मुकुन्द के पास नहीं था। जो सत्य है उसे

साहसपूर्वक, निर्भय हो विनम्रता से कहना, इतना ही वह जानता था।

उसका पूर्व इतिहास जानने का कई लोगों ने प्रयास किया परन्तु, मुकुन्द ने इस विषय में निरन्तर मौन धारण किया था। फलतः सबके प्रयास विफल हो गए। स्वयं उसके मन में भी अपने पूर्व-जीवन के बारे में प्रश्न उठता था कि नहीं, कहना कठिन है। किसी भी दिन वह व्यग्र या उदास नहीं दिखता। अथक श्रम द्वारा लोगों की सेवा करने में उसे अद्भुत आनन्द मिलता था। लोगों को उनके आपत्काल में आश्वासन देने की उसकी रीति देखकर, कोई यह कहने की हिम्मत नहीं कर सकता था कि उसे संसार का अनुभव नहीं है।

रोगियों की सेवा-शुश्रूषा करना उसका प्रिय कार्य था। सोनगाँव के आसपास के कई गाँवों में वह घूम चुका था। औषधीपचार और सेवा-टहल के कारण वह पास-पड़ौस के दस-पन्द्रह गाँवों के लोगों में प्रसिद्ध हो चुका था। वह उन लोगों का प्रिय बन गया था।

जेठ महीना पूरा होने आया था। उस समय वह समीप के एक गाँव में बीमारों को दवाई देने गया था। उसे बारबार गाँवों में जाना-आंना पड़ता था, अतः उसने एक घोड़ा रख लिया था। आज भी वह अपने घोड़े पर सवार हो निकट के गाँव में गया था। दवाई देने के बाद उसी गाँव में अपने एक स्नेही के रव उसने भोजन किया। तनिक विश्राम कर लेने पर वह पुनः सोनगाँव की ओर रवाना हो गया।

अभी कुछ ही दूर गया होगा कि 'ज्ञान बा तुकाराम, ज्ञान बा तुकाराम की धुन उसने सुनी। साथ ही सामने धूल उड़ रही थी। 'शायद, पंढरपुर के वारकरी हैं' (पंढरपुर के यात्रियों का एक प्रकार वारकरी कहलाता है) मन-ही-मन वह बोला और सामने से आनेवाली मंडली को रास्ता देने के लिए एक ओर हटकर पेड़ के नीचे खड़ा हो गया।

वे लोग भजन गाते हुए चले आ रहे थे। उनके पीछे महिलाओं का भी एक जत्था था। वे भी भजन गा रही थीं। उन महिलाओं के पीछे चार-पाँच स्त्रियाँ और थीं जो आपस में कुछ वार्तालाप कर रही थीं। उनके चेहरे पर चिन्ता अंकित थी।

अचानक उन स्त्रियों में से एक की दृष्टि मुकुन्द पर पड़ी। तुरन्त ही उसने अपनी साथिन को इशारे से समझाया और वे दोनों मुकुन्द के निकट गईं। कहने लगीं—"भाई, आप दवाई देते हैं? उस ओर एक बहन बीमार है, जरा उसे देख लीजिएगा?"

"कौन बीमार है? कहाँ है वह?" मुकुन्द ने वेदनापूर्ण स्वर से पूछा। प्रश्न करनेवाली स्त्री उसे पहचानती होगी, ऐसा उसने सोचा। इसीलिए वह मुकुन्द के पास आई होगी, मुकुन्द ने सोचा।

"उधर, बरगद के पेड़ के पास हनुमानजी का मन्दिर है न? उसमें वह लेटी है।" उँगली से उसने मन्दिर की ओर निर्देश किया। "हमारे साथ वह यात्रा में आई थी, लेकिन बेचारी बीच में ही बीमार हो गई।"

मुकुन्द जल्दी से मन्दिर की ओर चल पड़ा। महिलाएँ अपना कार्य समाप्त हो गया मानकर मंडली के साथ हो जाने के लिए आगे बढ़ीं।

मुकुन्द ने मन्दिर में प्रवेश किया। इसी मन्दिर में यात्रियों ने विश्राम किया था। किन्तु इस समय वहाँ कोई नहीं था। मन्दिर के एक कोने में एक स्त्री कपड़ा ओढ़कर लेटी थी, सो मुकुन्द उसका चेहरा नहीं देख सका।

अब मुकुन्द उसके पास गया और मृदु स्वर में कहने लगा—"बहन! आप जाग रही हैं? बीमार हैं क्या?"

कोई उत्तर न मिला। सो उसने पुनः जोर से पूछा। फिर भी जवाब नहीं मिला। अब उसने हल्के से उसके मुँह से चादर हटाई और....

अनायास वह चौंककर पीछे हटा। आँखें फाड़कर वह उस सुप्त व्यक्ति की ओर देखता ही रह गया। आप स्वप्न में तो नहीं—ऐसी शंका मन में आई। वह स्त्री और कोई नहीं थी, चन्द्रशेखर जिसे 'बाई' कहकर बुलाता था, वही थी। कई वर्ष पहले मुकुन्द ने उसे देखा था। इस समय वह कृश, म्लान और निस्तेज दिख रही थी। फिर भी मुकुन्द ने उसे पहचान लिया।

परन्तु आश्चर्य के मारे भागने का वक्त नहीं था। वह बीमार थी, इसलिए उसकी सेवा में जुट गया। उसने देखा कि अविरल श्रम के कारण या शारीरिक लापरवाही के कारण वह जर्जरित हो गई थी। पैदल-प्रवास उसने आरंभ

किया होने से अति थकान से वह बीमार हो गई होगी, मुकुन्द ने अनुमान किया।

मुकुन्द ने शीघ्र इलाज किया और बाई होश में आ गई। मुकुन्द की थैली में सदैव कुछ रसदार फल मौजूद रहते थे। इन फलों का रस बाई को दिया, जिससे उसमें स्फूर्ति आई।

होश में आने पर, मुकुन्द के मना करने पर भी, बाई उठ बैठी। मुकुन्द के परिचित स्वर से वह चौंक गई। उसकी ओर बारीकी से देखकर वह एकदम बोल उठी—"कौन, मुकुन्दराव?"

इससे अधिक वह नहीं बोल पाई। मुकुन्द की ओर वह एकटक देखती रही। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

मुकुन्द ने बाई की ओर दयार्द्र दृष्टि से देखा—"लगता है, आप बहुत थक गई हैं, आप कुछ देर आराम कीजिए, आपको आराम रहेगा। तब तक मैं गाँव में जाकर दूध ले आता हूँ।"

"नहीं, नहीं। मुझे कुछ नहीं चाहिए। आपसे भेंट हो गई यही मेरे लिए सब-कुछ है।"

मुकुन्द कुछ बोलने ही वाला था कि बाई आवेग में आगे बोली—"सच-मुच! ईश्वर की कृपा से ही अनायास हमारी भेंट हो सकी है। आपके दर्शन के लिए मैंने काफी प्रयत्न किए थे, लेकिन सब विफल हो गए। अन्ततः भगवान पर भरोसा रख मैं प्रतीक्षा करती रही, और आज अचानक आपसे भेंट हो गई।"

अपने से मिलने के लिए बाई की उत्कंठा को देख मुकुन्द को आश्चर्य हुआ। वह बोला—"बाई, आप यहाँ कैसे आईं? क्या आपने बम्बई छोड़ दिया?"

बाई ने दीर्घ निःश्वास लिया और कहा—"छोड़ती नहीं तो क्या करती? अब वहाँ मेरा कौन रहा है?"

"क्यों? राव साहब नहीं हैं?"

"वे होते तो मेरी ऐसी दशा न होती। उनका स्वर्गवास हुए आज ढाई वर्ष हो रहे हैं।"

यों बोलते-बोलते उसका गला सूखने लगा। मुकुन्द ने उसे पानी पिलाया। पानी भी लेने पर उसे कुछ आराम मिला और पुनः बोलना आरम्भ किया— "अपनी कथा क्या कहूँ ? अभागिन, आखिर अभागिन ही रही ! 'साहब' का स्वर्गवास हुआ, उससे कुछ दिन पूर्व शेखर बाबू बम्बई आए थे। उनकी अपने पिता से पटती नहीं थी। यह तो आप भी जानते हैं। साहब उन्हें अपनी जायदाद का हिस्सा नहीं देने वाले थे। लेकिन मैं बीच में पड़ी और उन्हें हिस्सा दिलाया। जिसका कडुआ फल मुझे बाद में मिला। साहब का अवसान हुआ। उनका मृत शरीर अभी बाहर भी न निकला था कि शेखर बाबू ने मुझे घर से बाहर निकाल दिया। मैंने काफी आजिजी की। दो दिन का समय माँगा। यही नहीं, उनके घर में नौकरानी के रूप में रहने को कहा। किन्तु कोई सार न निकला। मेरी अनुनय-विनय व्यर्थ गई। शेखर बाबू तो मुझसे नाराज थे ही। लेकिन मेरा खयाल था कि छोटे बाबू मुझसे स्नेह रखते हैं। यहाँ भी मुझे निराशा मिली। पहने हुए कपड़ों के अतिरिक्त मेरे पास कुछ नहीं था। अब बताइए, मैं कहाँ जाती इतने बड़े शहर में ? फिर, मुझ-जैसी औरत को कौन अपने दरवाजे सहारा देता ? तत्पश्चात् मैं स्थान-स्थान पर भटकती रही। अन्त में मुगभाट लेन के समीप मेरी जाति की एक परिचिता रहती थी, उसके यहाँ मैं गई। शरीर पर चार-छः गहने थे, उन्हें बेचकर कुछ रुपया एकत्र किया। साहब ने मुझे थोड़ा-बहुत धन दे रखा था और मेरी माँ का स्त्री-धन भी मेरे पास था। लेकिन यह सब शेखर बाबू ने छीन लिया था। मैं कंगाल बन गई थी। क्या करूँ, कुछ समझ में न आता। अपना पुराना पेशा शुरू करने का एक बार मन हो आया। लेकिन आत्मा ने साथ न दिया। दूसरी कोई विद्या-कला मेरे पास थी नहीं। उम्र भी चालीस की हो गई थी। इस अवस्था में मेहनत भी न हो सकती थी।"

उसने पुनः पानी पिया और बोलने लगी।

"मुकुन्दराव, उस दिन से मुझे सदा आपकी याद आती रहती। उससे पहले भी याद आती थी। हमारा परिचय गहरा नहीं था, फिर भी मुझे लगता कि आपका सत्संग नियमित मिलता रहे। मेरे लिए संभव हर तरह से मैंने

आपकी खोज की। मैंने सुना था कि ब्याह के बाद से आप बड़ौदा रहते हैं। शेखर बाबू बड़ौदा से लौटे तब कठिनाई से उनसे आपका पता पूछ लिया। उस पते पर एक पत्र लिखा किन्तु 'मालिक घर में नहीं' के शीर्षक के साथ पत्र लौट आया। मैं आपका पता कैसे पाती? मेरे मन में उलझन पैदा हो गई। कुछ न सूझा। एक ओर तो पेट भरने की चिन्ता थी ही। सो अन्त में सिलाई का काम शुरू किया। उसमें भी थोड़ा-बहुत मिल जाता। अब बम्बई में ही एक कमरा लेकर मैं रहने लगी और सारा दिन भजन-पूजन में बिताने लगी। हमारी जाति के लोग 'वृद्धा नारी पतिव्रता' कहकर मेरा उपहास करते थे। भले हँसते बेचारे!"

कुछ आरामकर पुनः आगे बोली—

"छोटे बाबू के लिए मेरे मन में ममता थी। यह ममता किसी प्रकार नष्ट नहीं हो सकती थी। उनसे मिलने की मैंने काफी कोशिश की किन्तु बाद में मुझे मालूम हुआ कि शेखर बाबू ने उन्हें घर में न रख, होस्टल में रखा है। उनके होस्टल का पता निकालकर मैं वहाँ गई। कम्पाउण्ड के बाहर ही मैंने उनसे मिलना चाहा था, किन्तु मुझे देखते ही शरमा गए और मुलाकात टालने के लिए अपनी राह बदलने ही वाले थे! परन्तु मैंने उनसे मिलने का दृढ़ निश्चय किया था, अतः उनसे बिना मिले न रही। जब उनसे मिली तब वे बोले—'बाई, गुजरी बातें भूल जाइए और अब मुझसे पुनः न मिलें। एक तो मैं स्वयं इस बात के लिए शरमिन्दा हूँ और बड़े भाई जान जाएँगे तो खफा होंगे।' तब मैंने उनसे इतना ही कहा कि मुकुन्दरावं का पता तो दीजिए। यह सुनकर वे मेरी ओर विस्मयपूर्वक देखने लगे, फिर बोले—'मैं उसका पता क्या जानूँ? लेकिन हाँ, इतना सुना है कि उसकी पत्नी उसे छोड़ गई है और मुकुन्द वैराग्य के कारण कहीं चला गया है।' इतना कहकर वे तुरन्त चले गए और मैं हत-बुद्धि बन घर लौट आई। छोटे बाबू ने जो बात कही थी उसकी सत्यासत्यता उस समय मेरी समझ में नहीं आई। परन्तु इसके बाद बम्बई में मेरा मन न लगा और मैं 'वाई' (गाँव का नाम) जाकर वहीं रहने लगी। ईश्वर के चरणों में मुझे शान्ति मिली। फिर माला पहनी और यात्रा

आरम्भ की। आज भी मैं यात्रियों के संघ में ही जा रही थी। किन्तु एक तो मेरे शरीर में शक्ति नहीं रही और दूसरे पैदल यात्रा करना मेरे लिए कठिन हो गया जिससे मैं बीमार हो गई। संघ की महिलाओं ने मेरी थोड़ी-बहुत सेवा की लेकिन महज मेरे कारण वे सब सब यहाँ रुकी रहें, यह मुझे न जँचा और मैंने ही उन्हें आगे जाने को कहा। मैं यहीं लेटी थी। ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी कि आज ही मुझे उठा ले तो अच्छा होगा। लेकिन भगवान की इच्छा कुछ और होगी। इसीलिए अचानक आपसे भेंट हो गई।"

बाई की कहानी सुनकर मुकुन्द का हृदय द्रवित हो गया। चन्द्रशेखर की नीचता उसे कल्पनातीत लगी। फिर भी उसकी टीका करने को उसका मन नहीं हुआ।

उसने बाई से कहा—"अब आपकी क्या इच्छा है? कहिए। यहाँ पास ही सोनगाँव में मेरा आश्रम है। आपकी इच्छा हो तो चलिए, मेरे साथ वहाँ रहिए। सुख से रहो। खाओ, पीओ और लोगों की सेवा करो! आपके मन-प्रसन्द कार्य-क्षेत्र मैं खोज दूँगा।'

बाई का हृदय आनन्द से उभर आया।—"क्या? मैं आपके साथ रहूँ?" वह हर्ष में बोली।

"अवश्य! तनिक भी शंका मत रखो। आप मेरी माँ की जगह हैं!"

गद्‌गद कंठ से बाई बोली—"भगवान तुम्हारा कल्याण करे!"

फिर मुकुन्द ने एक बैलगाड़ी बुलाई और बाई को उसमें बिठाया। मुकुन्द अपने घोड़े पर सवार हो गया और धीरे-धीरे वे सोनगाँव आ पहुँचे।

तत्पश्चात् मुकुन्द ने बाई को एक अलग झोपड़ी बनवा दी।

५५

धरती का स्वर्ग

बाई को आश्रम में लाकर मुकुन्द ने मानों आश्रम में बम फेंक दिया हो। ब्रह्मचारी के आश्रम में एक स्त्री को रखने से सबको आश्चर्य होना स्वाभाविक था। लेकिन बाई चालीस पूरे कर चुकी थी और वह रोग-व्याधि से पीड़ित रहने के कारण अधिक वयस्क लगती थी। इससे उसके आश्रमवास का एक या दूसरी रीति से बचाव हो सका तथापि उसकी जाति-पाँति और जीवन-वृत्तान्त जानने के लिए सब लालायित थे।

मुकुन्द ने उसका परिचय कराते समय यह प्रकट किया कि—'बाई मेरे मन गुरु-तुल्य है और मातृ-श्री के स्थान पर है।' वह स्वयं बाई को सम्मान देने लगा और दूसरों को भी वैसा ही पूज्य भाव रखने की सूचना दी। उसने बाई के जीवन का इतिहास किसी से न कहा, वरन् बाई का जीवन अधिक शान्तिमय और विकासोन्मुख बनाने की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करने लगा।

बाई को तो पहले से ही मुकुन्द में अटूट श्रद्धा थी। और कई वर्षों के बाद उसे ऐसा पवित्र वातावरण, सुख और शान्ति मिली थी सो वह अतिशय आनन्दित हुई। उसका स्वास्थ्य जल्दी ही ठीक हो गया। उसने आश्रम के दैनिक जीवन का बारीक निरीक्षण किया और उसी प्रकार का जीवन बिताने का उसने संकल्प कर लिया।

तेज बरसात हो रही थी। आश्रम की नन्हीं-नन्हीं कुटियाँ घटादार वृक्षों में छिप गई थीं। बड़ी-बड़ी जलधारा के कारण समीप की वस्तु देखने में भी कठिनाई होने लगी। दोपहर का समय होते हुए भी साँझ होने का आभास हो रहा था।

मुकुन्द आश्रम के ग्रन्थालय में एक कोने में बैठा था। सामने एक मेज़ पड़ा था, उस पर कागज रखकर वह कुछ लिख रहा था।

इतने में पानी से भीगा हुआ एक युवक दरवाजे में आकर खड़ा हुआ और कहने लगा—"भाई, रसोई की छत चू रही है।"

मुकुन्द ने सिर ऊँचा उठाया और कहा—"इस छत की मरम्मत ठीक से नहीं की थी?"

"मरम्मत तो की थी। हरबा पाटिल छत पर टीन डालने को कह रहे थे, वैसा करने पर काम ज्यादा मजबूत हो जाता और पानी न चूता।"

"देहात में टीन कहाँ मिलेगा? हमें तो उन्हीं चीजों का उपयोग करना चाहिए जिनका गरीब लोग उपयोग करते हैं।" मुकुन्द ने मुस्कराकर कहा—"खैर, चलो, देखें तो पानी कहाँ से चूता है?"—यों कहकर वह खड़ा हो गया।

"आप मत आइए मुकुन्द भाई। मूसलाधार बरसात हो रही है, नाहक में आप भीग जाएँगे।"

मुकुन्द ने युवक के कुर्ते का अगला भाग हाथ में लेकर कहा—"यह क्या? इतने भीग गए हो?" मुकुन्द ने हँसकर पूछा—"तू अगर बरसात में काम कर सकता है, तो मुझसे क्यों नहीं होगा?"

अब दोनों बाहर आए। बरसात में भीगते हुए उन्होंने रसोई की छत पर चढ़कर उसे दुरुस्त किया।

इस बीच बारिश कुछ धीमी हो गई, फिर बन्द हो गई। छत पर बैठे मुकुन्द ने चारों ओर दृष्टि डाली।

आज उसे अपने कई महीनों के श्रम का फल दृष्टिगोचर हो रहा था। भिन्न-भिन्न सब्जियों की क्यारियाँ इस समय पानी से छल-छल थीं। पौधों पर सुन्दर फूल लहलहा रहे थे। सामने स्वच्छ गोठे में गौएँ और भैंसें बँधी थीं। कताई-गृह में बालकगण चरखा चला रहे थे। इस समय उनमें अन्त्याक्षरी की स्पर्धा

जारी थी। बीच-बीच में वे जोर-जोर से चीखते थे तब एक गृहस्थ आकर उन्हें धमकियाँ देता था जिससे कुछ समय शान्ति छा जाती, परन्तु पुनः वातावरण हास्य से गूँज उठता था। पुनः चरखा कातने की स्पर्धा आरम्भ हो जाती थी।

मुकुन्द ने पूर्व की ओर देखा। आश्रम के कुएँ से निकाली एक लीक सुदूर तक गई थी। उसके दोनों किनारों पर कड़ुए नीम के पेड़ थे। आश्रम के एक हिस्से में बड़ा चौक था। उसके चारों ओर तुलसी के पौधे एक दूसरे से सिमट-कर खड़े थे। उसी स्थान पर नित्य साँझ को प्रार्थना होती थी। लेकिन इस समय वहाँ छोटा-सा पानी का तालाब नजर आ रहा था। गाँव की बकरियों के बच्चे कभी-कभी इस ओर आते और तुलसी के पत्ते चबा जाते थे। मुकुन्द ने यह भी देखा। इस समय भी बकरी के बच्चे तुलसी के पत्तों का सेवन कर रहे थे।

"वह देखो !" उस तरफ उँगली उठाकर मुकुन्द ने अपने साथी को बताया।—"यदि इन बकरी के बच्चों को भगाया नहीं जाएगा, तो तुलसी-वन का नाम-निशान नहीं रहेगा।"

युवक उस दिशा में वेगपूर्ण दौड़ा।

फिर मुकुन्द उत्तर दिशा में देखने लगा। आश्रम की सीमा जहाँ समाप्त होती थी वहाँ मेंहदी की बाड़ की गई थी। बाड़ के उस पहलू पर छायादार अमराई थी। मेंहदी की बाड़ और अमराई के बीच कुछ खाली जगह थी जिसमें फूल के पौधे लगे थे। बीच में दो बड़े काले पत्थर रखे गए थे। यह मुकुन्द का एकांत स्थान था। रोज प्रार्थना की समाप्ति पर वह यहीं ध्यान करने बैठ जाता था।

मुकुन्द अब छत से उतर आया और बाई को पुकारा। रसोई से बाई बाहर आई।

"अब ठीक हो गया ?" मुकुन्द ने पूछा।

"हाँ, लेकिन यह क्या ? आप बारिश में भीग गए हो। जल्दी से कपड़े बदल डालो, अन्यथा सरदी लग जाएगी और बीमार हो जाओगे।"

मुकुन्द तनिक हँसा। हिमालय की कड़ी सरदी में उसकी देख-भाल करने

वाला कौन था? फिर भी वह सकुशल लौटा था।

इस रमणीय आश्रम में बाई को सुख और सन्तोष मिला हो तो अचरज नहीं। उसने रसोई का काम सँभाल लिया था और फ़ुरसत की वेला वह गौ-सेवा में ध्यान देती थी। दिन-भर के लिए इतना कार्यक्रम पर्याप्त था, तथापि मुकुन्द का आग्रह था कि वह प्रतिदिन दो घंटे अध्यापन-कार्य के लिए अवश्य दें। ऐसा आग्रह करने में मुकुन्द का तात्पर्य यह था कि बाई की सर्वांगीण उन्नति हो और उसे गाँव की स्त्रियों में प्रचार-कार्य के लिए भेजा जा सके। इसी हेतु को लक्ष्य कर उसने अभी से बाई में वैसी कार्यशक्ति का बीजारोपण करना शुरू किया था।

उसके पास गाँव के जो लोग आते थे उनकी कथा सुन-सुनकर बाई को सांसारिक सुख की कल्पना आ गई थी। किसी की दो पत्नियाँ थीं और उनमें अनबन रहती। किसी की पत्नी अपने पीहर चली गई थी या कहीं और भाग गई थी। किसी की औरत सदा बीमार रहती थी तो किसी की औरत मूर्ख और उजड्ड थी। कोई अपने भाग्य को, कोई माँ-बाप को और कोई अपनी पत्नी को दोष देता था। लेकिन यह मानने को कोई तैयार नहीं था कि दोष स्वयं अपना है। ऐसे लोगों का अज्ञान दूर कर उन्हें अपनी पारिवारिक जवाबदेही का भान करा देना, उनमें सामाजिक कुप्रथाओं को रोकने की शक्ति निर्माण करना आदि कार्य विकट था। और फिर स्त्रियों में जाग्रति लाने का कार्य तो और भी दुष्कर था। यह कार्य कोई कुशल स्त्री ही कर सकती है। इसी खयाल से मुकुन्द इस कार्य में बाई से सहायता की अपेक्षा रखता था।

कई बार वह बाई से इन प्रश्नों की चर्चा करता और अपने विचार उसे समझाने की चेष्टा करता था। धीरे-धीरे बाई में इस कार्य के प्रति उत्साह उत्पन्न हुआ और उसका आत्म-विश्वास भी अभिवृद्ध होने लगा।

"लेकिन इस समय तो सीधी लड़ाई का अवसर है!"

"मित्रो, युद्ध तो मेरे मन में रोज चलता है। उसमें यश प्राप्त करने का मैं प्रयत्न भी कर रहा हूँ।"

"ऐसा तो हरेक के विषय में कह सकते हैं। लेकिन बाह्य आन्दोलन का अवसर बार-बार नहीं आता। आज वह अवसर आया है, उससे लाभ न उठाया जाए?"

"जो ऐसा सोचते उन्हें अवश्य ही इस आन्दोलन में कूद पड़ना चाहिए।" मुकुन्द ने जवाब दिया।

प्रश्नकर्ता युवक निराश हो गए। फिर उन्होंने अपनी बुद्धि के अनुसार कार्य किया। सोनगाँव से कुल ४२ लोग जेल में गए। आसपास के गाँवों से ६० लोगों ने जेल-यात्रा की।

मुकुन्द के आश्रम से भी तीन लोग इस आन्दोलन में शामिल हो गए थे। बाई को भी आन्दोलन में सम्मिलित होने का मन हो आया किन्तु मुकुन्द को अकेला छोड़ जेल में जाना उसे अच्छा न लगा। अब तो मुकुन्द को वह अपना पुत्र ही मान रही थी! स्वयं जेल में जाए तो उसके खाने-पीने की व्यवस्था बराबर न रहेगी, ऐसा वह सोचती।

इतने पर भी गाँव की कई बहनें और बालाएँ जेल में ही आईं। फिर भी उनकी संख्या उँगलियों पर गिनने लायक थी। लेकिन उनमें जिस तरह जागृति आ गई थी, वह तत्कालीन समाज-व्यवस्था के अनुपात में किसी प्रकार से कम नहीं कही जा सकती।

लीलाधर इस समय क्या कर रहा था? उसके पिता का देहावसान होने पर घर में वह अकेला ही कमाने वाला आदमी रह गया था। उसका धन्धा भी ठीक चल रहा था। राष्ट्रीय आन्दोलन में भी वह थोड़ा-बहुत भाग ले रहा था। यह कहने की बात नहीं कि सुमति का उसे पूर्ण समर्थन प्राप्त था। रमा काकी भी पहले की अपेक्षा काफी नरम स्वभाव की हो गई थीं। माधवराव की मृत्यु के बाद से वह उदास रहतीं और घरेलू कार्य-व्यवस्था में विशेष ध्यान

न देतीं। उन्हें महसूस हुआ था कि अपना ज़माना बीत गया है। इतना होने पर भी सुमति उनका मन रखती थी, उनसे बिना पूछे कोई काम वह नहीं करती। फिर भी रमा काकी में पूर्व का-सा उत्साह प्रकट न होता? उनके बच्चे तो पहले की तरह ही माँ से बरतते थे। यह दूसरी बात है कि सुमति के सामने वे माँ की अवहेलना नहीं कर पाते थे। फिर भी रमा काकी को तड़फड़ जवाब देने की प्रथा अब भी जारी थी! लीलाधर शायद ही अपनी माँ से वाद-विवाद करता। घर की समस्त जिम्मेदारी अपने सिर आ जाने से वह गम्भीर बन गया था। हेमलता इस समय उम्र में आ गई थी और अपने-आपको स्वतंत्र मानती थी, जिससे अवसर पा जाने पर अपनी माँ को दो-एक पाठ पढ़ाए बिना न रहती।

आन्दोलन आरम्भ होते ही घर में कानून-भंग की चर्चा छिड़ गई। लीलाधर और सुमति इस समय घर के कर्ताधर्ता थे। अतः एक ने आन्दोलन में जाना और दूसरे ने बाहर रहना तय किया। स्त्रियों के बहादुरी बताने का समय था वह, उसमें हेमलता का उत्साह उछल रहा था। इस हेतु, यह निश्चित हुआ कि हेमलता को साथ लेकर सुमति आन्दोलन में कूद पड़े और लीलाधर बाहर रहकर रमा काकी को सान्त्वना दे, पैसा कमाए और छिपे तौर से आन्दोलन को आर्थिक सहायता दे। इस निश्चय के अनुसार हेमलता और सुमति आन्दोलन में शामिल हुईं और गिरफ्तार हो जेल में गईं। सुमति के एक ही लड़का था, जो इस समय दो वर्ष का होने से कोई विशेष कष्ट न देता था। जब तक सुमति कारावास में थी वह अपनी दादी के पास रहा। सुमति को केवल तीन महीने की सजा हुई थी।

वृन्दा अब तक नासिक में ही रहती थी। सत्यकाम इस समय चार साल का हो गया था। वृन्दा ने अपने वचन के अनुरूप ही कार्य कर दिखाया। वह शरद का घर छोड़कर अन्यत्र कहीं न गई। शरद के पति के प्रयास से उसे अध्यापिका की नौकरी मिल गई थी। सत्यकाम उसे क्षण-भर भी न छोड़ता। वृन्दा के एकाकी जीवन का एकमात्र सहारा था वह! खुद शरद

के साथ भी वह गहरा संबंध न रखती, न ही दिल खोलकर किसी से बोलती थी।

अब तो उसका स्वभाव भी चिड़चिड़ा बन गया था। किसी बात को लेकर गुस्सा आता तो वह सत्यकाम पर ही अपना गुस्सा उड़ेलती थी। बेचारा अबोध बालक उस समय क्या करता? दिन बीतते गए, त्यों-त्यों वह बालक कारुण्य-मूर्ति-रूप दया-पात्र बनता चला। उसकी नाक और आँखें सुन्दर होने पर भी उसका शरीर भरावदार नहीं था। बारबार उसे सरदी हो जाती, खाँसी हो जाती, लेकिन उसकी उचित देख-भाल करने का काम वृन्दा से न बनता। इसका अर्थ यह नहीं कि वह सत्यकाम की कोई चिन्ता नहीं करती थी, लेकिन हाँ, इतना अवश्य कह सकते हैं कि उस पर आवश्यक वात्सल्य का अभाव था। सत्यकाम पर इसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष असर पड़ रहा था। वृन्दा उसे कहीं भी जाने नहीं देती। सो वह घर के दरवाजे या खिड़की में, मुँह में उँगली डाले दीन मुखमुद्रा बनाए खड़ा रहता। वह अपनी माँ से ऐसा तो डरता था कि खाने, पीने, खेलने या बीमार पड़ने पर भी किसी चीज के लिए हठ करने की उसकी हिम्मत न होती थी। रोना तो मानो वह भूल ही गया था। अपनी सहन-शक्ति से परे की कोई घटना होती तो वह आँखें मूँदकर चुपचाप दरी पर लेटा रहता।

शरद को सत्यकाम पर दया आती, परन्तु वृन्दा के सामने बोलने की हिम्मत उसमें नहीं थी। उसे वृन्दा के स्वभाव का पहले से ही परिचय था। और, अब तो वृन्दा अधिक क्रोधी और तामसी स्वभाव की बन गई थी, अतः शरद उससे काम जितना बोलती थी। ज्यादा लप्पन-छप्पन न करती। उसका पति कहाँ होगा, क्या करता होगा, वृन्दा उसकी जाँच कर रही है या नहीं?—आदि अनेक प्रश्न शरद के मस्तिष्क में उठते रहते, लेकिन उसने वृन्दा से पूछने का साहस नहीं किया।

सुमति ने वृन्दा के साथ पत्र-व्यवहार जारी रखने का काफी प्रयत्न किया, परन्तु उसे सफलता न मिली। सरयू के द्वारा ही समाचार मिल जाते थे। छुट्टी में वृन्दा से बम्बई आने के लिए या अपनी पसन्द के अन्य स्थान पर

जाने का उसने अनुरोध किया लेकिन वृन्दा ने नासिक न छोड़ा, सो नहीं ही छोड़ा।

अब आन्दोलन शुरू हो गया था, फिर भी वृन्दा एकदम शान्त थी। शरद जेल हो आई, परन्तु वृन्दा ने अपना जीवनक्रम पूर्ववत जारी रखा।

दूसरी तरफ चन्द्रशेखर का व्यवसाय तेजी से चल रहा था। निर्मला से रजिस्टर्ड मैरेज होने के बाद निर्मला उसके बँगले में रहने आई। भोलानाथ तो पहले ही होस्टल में रहने चला गया था। चन्द्रशेखर की धारणा थी कि सँपेरे की बीन से ज्यों साँप धीरे-धीरे वश में आ जाता है, निर्मला भी पूर्णतया अपने अंकुश में आ जाएगी। लेकिन ऐसा न हुआ। निर्मला उसके साथ रहने लगी, फिर भी उसने अपने विचार और कार्य-क्रम में तनिक भी परिवर्तन नहीं किया। चन्द्रशेखर जब बाहर जाता तब निर्मला भी बाहर निकल पड़ती और अपने 'कम्यूनिस्ट कार्यालय' में जाकर बैठती। दफ्तर का काम, प्रचार-कार्य, हिसाब रखना, सभा-व्याख्यानों का आयोजन करना आदि काम करने के लिए उसे दिवस भी छोटा लगता था। दिन-भर वह इन्हीं कार्यों में लीन रहती और रात देर में घर लौटती। चन्द्रशेखर की ऐसा कल्पना थी कि पुरानी प्रथा के अनुसार, जब खुद काम-काज निपटाकर साँझ में घर लौटे तब अपनी पत्नी मधुर हास्य बिखेरती हुई पानी का लोटा लेकर दरवाजे में आ स्वागत करे। लेकिन उसकी यह मधुर कल्पना पूर्ण न हुई। उल्टे, पत्नी के आने से पूर्व ही वह घर पर आ जाता और पत्नी के स्वागत में उसे प्रतीक्षा करते बैठना पड़ता था। चन्द्रशेखर की अपेक्षा निर्मला का पत्र-व्यवहार लम्बा था। उससे मिलने आने वालों की संख्या भी अधिक थी। इन आगन्तुकों में फेशनेबिल लोगों की अपेक्षा श्रमिक ही अधिक थे। वे लोग अपने फटे-पुराने कपड़े पहनकर जब भीतर आते तब चन्द्रशेखर का माथा भभक जाता। मन-ही-मन वह उन्हें गालियाँ देता, लेकिन निर्मला से एक शब्द कहने में भी वह असमर्थ था।

यद्यपि निर्मला के विचार साम्यवादी थे तथापि कानून-भंग का आन्दोलन शुरू होते ही उसमें शौर्य जाग उठा। उसने भी इस आन्दोलन में कूद

पढ़ने का निश्चय कर लिया।

चन्द्रशेखर को यह बात रुची नहीं। लेकिन उसकी एक न चली। उसँका छोटा भाई भोलानाथ इस समय सीनियर बी० ए० में था। वह भी बड़े भाई से पूछे बिना ही आन्दोलन में शरीक हो गया, और जेल गया। उसके तुरन्त बाद, निर्मला जेल में गई।

वृन्दा के जीवन की घटना के बाद से लीलाधर और सुमति ने चन्द्रशेखर का मुँह तक न देखा था। यह सुनकर कि निर्मला ने उससे प्यार किया है, सुमति को दुःख हुआ। अब निर्मला के साथ पूर्ववत् संबंध रहना सम्भव नहीं था, लेकिन संयोग से इन दोनों की जेल में भेंट हो ही गई।

दोनों के स्वभाव और विचार में गहरा अन्तर आ गया था। निर्मला के विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने पर भी उसके उदार और मिलनसार स्वभाव के कारण सुमति के साथ पुरानी मित्रता उमड़ पड़ी। जेल का समय, दोनों ने अपने पुराने संस्मरणों में ही बिताया। इसके अतिरिक्त अपने-अपने विचारों में आए परिवर्तन को समझाने तथा उत्तम ग्रन्थ पढने में उनका समय आनन्द से कट गया। चन्द्रशेखर के साथ निर्मला की पारिवारिक जीवन-संबंधी जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता सुमति के मन में थी। लेकिन निर्मला इसका वर्णन न करती। कभी-कभी कुछ कह देती जिससे सुमति ने जान लिया कि निर्मला का जीवन दुःखी नहीं है। चन्द्रशेखर निर्मला से मिलने के लिए बार-बार जेल में आता था, परन्तु उसके और निर्मला के विचारों की असंगति निर्मला के बोलने से स्पष्ट हो जाती थी।

निर्मला ने अपने विचार सुमति के गले उतारने का भरसक प्रयास किया। लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। हेमलता पर निर्मला के विचार-वर्तन और बोलने की छाप पड़ी। अब वह रसपूर्वक साम्यवादी साहित्य का अध्ययन करने लगी।

निर्मला को भी हेमलता से स्नेह हो गया, परस्पर गाढ़ी मित्रता स्थापित हो गई।

२७

पाँच साल के बाद

जेल में, इलाके के सभी हिस्सों से स्त्रियाँ आई थीं। उनसे परिचय करते-करते सोनगाँव से आई दो महिलाओं से सुमति का खासा परिचय हो गया।

उन दो महिलाओं से हुए वार्तालाप से सेवाश्रम का कार्य और उसके द्वारा गरीबों की होने वाली महत् सेवा-विषयक कई बातें सुमति ने जानीं। उन्होंने आश्रम और उसके संस्थापकों की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की।

उन स्त्रियों से इस हक़ीकत को ध्यानपूर्वक सुन लेने पर सुमति के मन में कई विचार आए। 'वह भाई कौन हैं?—' सुमति के हिये में प्रश्न उपस्थित हुआ।

सुमति ने अब बात को उलट-पुलटकर 'भाई' के विषय में सब-कुछ जान लेने की चेष्टा की। लेकिन जब उन महिलाओं को ही पूरी जानकारी नहीं थी तो वे कहतीं भी क्या! परन्तु उनके वर्णन से सुमति ने अपने-आप यह अनुमान लगाया कि भाई' और कोई न होकर मुकुन्द ही है।

तत्पश्चात् एक बार लीलाधर जब उससे भेंट करने आया तब सुमति ने अपनी शंका उसके सम्मुख रखी। साथ ही सुमति ने लीलाधर से आग्रह किया कि उसकी इस शंका का निराकरण किया जाए। लीलाधर स्वयं सोनगाँव जाकर खोज करें, इतना समय उसके पास न था। उसने दूसरे लोगों के द्वारा मुकुन्द

की खोज चलाई, किन्तु कोई परिणाम न आया।

अन्ततः सुमति और हेमलता के जेल से मुक्ति पाने के बाद इस विषय में अधिक जाँच करने का निश्चय किया गया। सुमति रिहा हो गई किन्तु अरविन्द के अचानक बीमार हो जाने से सोनगाँव जाने का कार्यक्रम अनिवार्य रूप से स्थगित करना पड़ा। रिहाई के बाद हेमलता अपनी वार्षिक परीक्षा की तैयारी में तल्लीन हो गई। इस बीच समाधान होने की घटना हुई और देश को कुछ दिन विश्राम मिला।

मई की छुट्टियाँ शुरू होते ही बाहर जाने का निश्चय किया गया। समूचा परिवार महाबलेश्वर गया। वहाँ से एक बार सोनगाँव हो आने का लीलाधर और सुमति ने निश्चय किया।

इस निर्णय के अनुसार, वे दोनों, एक दिन ऐन दोपहरी में सोनगाँव जा पहुँचे। जेल की अपनी सहेली वत्सलाबाई के घर सुमति और लीलाधर ठहरे। वहाँ स्नान, भोजन आदि से निवृत्त हो, उन्होंने कुछ आराम किया।

तीसरे प्रहर वे तीनों घर के अन्य लोगों के साथ आश्रम की ओर रवाना हुए। सुमति का हृदय इस समय एक अज्ञात आशंका से धड़क रहा था।— 'मेरी शंका सत्य होगी ? "भाई" मुकुन्द ही होगा ?' ऐसी प्रश्न-माला उसके मस्तिष्क में जारी थी।

शंका और प्रश्नों पर विचार करती हुई सुमति आश्रम तक आ पहुँची। आश्रम के प्रवेश-द्वार में सफ़ेद खादी की साड़ी पहने मध्यम वय की स्त्री सब को दृष्टिगत हुई। वत्सलाबाई ने जेल में आश्रम की जिस महिला का वर्णन किया था, क्या वह यही है ? सुमति ने मन-ही-मन सोचा। इस 'बाई' की जानकारी वत्सलाबाई नहीं दे सकी थी।

"आओ वत्सलाबाई"—बाई ने सस्मित सत्कार किया—"आज क्या मेहमानों को साथ लाई हैं ?'

"हाँ, मेहमान बम्बई के हैं—" वत्सलाबाई ने कहा—"जेल का परिचय है। भाई हैं ?"

"नहीं। अभी कासारा गए हैं। प्रार्थना के समय आ पहुँचेंगे। तब तक इन मेहमानों को आश्रम दिखा लीजिए।"

वत्सलाबाई मेहमानों को आश्रम बताने लगी। आश्रम की व्यवस्था, खुली जगह, शोभा और विस्तार देखकर लीलाधर और सुमति खुश हो गए।

सूर्यास्त हुआ। साँझ होते ही प्रार्थना के लिए घंटा बजा। कुछ ही क्षणों में उस शान्त आश्रम में मानवों की भीड़ होने लगी।

गत आन्दोलन के बाद इस आश्रम में लोगों का आना-जाना बढ़ गया था। निवासियों की संख्या भी बढ़ गई थी। सायं-प्रार्थना में लगभग पचास लोगों का समूह था।

लीलाधर और सुमति उन लोगों में जा बैठे। थोड़ी देर में सर्वत्र गम्भीर शान्ति स्थापित हो गई। एक व्यक्ति ने तानपूरा लेकर व्यासपीठ पर बैठक जमाई।

अचानक सबकी आँखें एक तरफ मुड़ीं। सामने से सफेद कुर्ता पहने गंभीर आकृति, धीरे-धीरे, स्मित करती आ रही थी। लीलाधर और सुमति के दिल धड़कने लगे!—'निस्सन्देह, यह मुकुन्द ही है।' उनके दिल ने गवाही दी।

कितने साल के बाद आज मुकुन्द के दर्शन हुए थे! वह भी किस स्थिति में! वह पहले का मुकुन्द नहीं था। उसका भेष, रीति-रिवाज, चर्चा, सब-कुछ बदल गया था। उसके शारीरिक सौन्दर्य में अन्तर पड़ गया था। चंमड़ी की मृदुता नष्ट हो गई थी, उसके स्थान पर कठोरता आ गई थी। देह-यष्टि कृश बन गई थी। सिर पर जटा जमी हुई थी।

सुमति की आँखें आँसू से भीग गईं। 'मुकुन्द के जीवन की कैसी दुर्दशा?' उसके मन में तरंग उठी। 'आज उसकी माँ होती तो?' स्त्री-सुलभ स्नेह से उसके मन में दुःख हुआ।

मुकुन्द ने व्यास-पीठ पर अपना स्थान ग्रहण किया। फिर ध्यानस्थ हो गया। तदनन्तर प्रार्थना का गम्भीर घोष हुआ।

सुमति भी इस समय प्रार्थना के नाद-ब्रह्म में खो गई। प्रार्थना कब पूरी हुई, उसे अपनी तन्मयता के कारण भान न रहा।

अन्त में सब खड़े हो गए, तब उसे होश आया। अब कितने ही लोग मंच के पास जाकर मुकुन्द से बातचीत करने लगे। मुकुन्द मधुर वाणी में उन्हें उचित उत्तर दे रहा था।

धीरे-धीरे सब लोग चले गए। वहाँ केवल सुमति, लीलाधर, वत्सलाबाई और बाई ही रह गए थे। बाई मुकुन्द से कुछ वार्तालाप कर रही थी। अपनी बात समाप्त होते ही वह भी खिसक गई।

"मुकुन्द !" बाई के चले जाने पर लीलाधर ने पुकारा।

चिरपरिचित पुरानी आवाज़ सुनकर मुकुन्द चौंक गया और पुकार की दिशा में देखा। सन्ध्या के झिलमिल प्रकाश में उसने लीलाधर को पहचान लिया और दोनों हाथ लम्बे कर उसके गले लगने को दौड़ पड़ा।

इस 'भरत-भेंट' को देखकर सुमति के नेत्र से प्रेमाश्रु बहने लगे। बाई और वत्सलाबाई इस दृश्य को आश्चर्यविमूढ़ होकर एकटक देखने लगीं।

आनन्द का प्रथम आवेग उतर जाने पर मुकुन्द ने पूछा—"तू यहाँ कैसे आया, लीलाधर ?"

"क्यों ? तू हमें छोड़कर चला गया तो क्या हम भी तुझे भूल गए ?"

"धत्, यह कहता है तू ? तुम्हें छोड़ के जाने और भूलने की बात ही क्या है ? अरे वाह ! सुमति बहन भी साथ हैं ?"

सुमति अब आगे बढ़ी। उसकी आँखों में आँसू और चेहरे पर आनन्द और स्मित था—"मुकुन्द भाई ! तुम बड़े कठोर-हृदय हो !" वह बोली।

"अब ऐसा करें, यहाँ निश्चिन्तता से बैठ जाएँ। फिर तुम चाहे जितने आरोप मुझ पर लगा लो।"

तीनों नीचे बैठ गए। बाई और वत्सलाबाई कुछ दूरी पर बैठ गईं। आज दिन तक मुकुन्द का किसी से निकट का संबंध उन्होंने देखा नहीं था। सो, उन्हें इस घनिष्ट परिचय से आश्चर्य हुआ और उनकी जिज्ञासा अभिवृद्ध हुई।

फिर, आगन्तुक दम्पत्ति ने मुकुन्द के चले जाने के बाद का समस्त इतिहास कह सुनाया। वृन्दा और चन्द्रशेखर से लेकर भूतकाल तथा वर्तमान

काल के तमाम पात्रों का उल्लेख किया। मुकुन्द ने सब शान्ति से सुन लिया। प्रश्न एक भी न पूछा।

अब उसकी अपनी बारी आई। उसने अपने हिमालय-प्रवास का वर्णन किया। दो यूरोपियनों से किस प्रकार प्रेरणा मिली और हरबा पाटिल की सहायता से सेवाश्रम किस तरह बना, आदि बातें उसने विस्तृत रूप से कहीं।

मुकुन्द के जीवन को इस प्रकार नया और स्थायी आकार प्राप्त हो गया—इससे आनन्द माने या शोक? दुःख माने या सुख?—उनकी समझ में न आया। लेकिन यह देखकर कि मुकुन्द को इस जीवन में सुख और सन्तोष है, उन्होंने अधिक न पूछा!

फिर मुकुन्द ने बाई को बुलाया और उनसे साधारण परिचय करा दिया। उसने सुमति से कहा—"ये बाई मेरी माँ की जगह हैं। मैं इन्हें गुरु-तुल्य मानता हूँ। तुम इनका स्नेह प्राप्त कर इनका इतिहास जान लो।"

बाई तुरन्त ही बोली—"अब आप यहीं आकर रहिए।"

पति-पत्नी को आमन्त्रण भाया। वत्सलाबाई की सम्मति से उन्होंने वहीं मुकाम किया।

५८
गार्गी का नया अवतार

कुछ ही दिन रहने पर भी लीलाधर और सुमति को आश्रम में आनन्द आया। इस आनन्द का अधिकांश श्रेय उनके मित्र मुकुन्द को ही था। पाँच साल के बाद ही क्यों न हो, मुकुन्द से भेंट हुई और उसे एक महान् कार्य में व्यस्त देखकर पति-पत्नी को परम सन्तोष हुआ। आश्रम की स्थापना के बाद मुकुन्द सोनगाँव और उसके आसपास के गाँवों के अतिरिक्त कहीं न गया था। इसलिए आगन्तुक दम्पत्ति ने बात चलाकर मुकुन्द से एक बार बम्बई आने का आग्रह किया। किन्तु मुकुन्द ने उसको स्वीकार नहीं किया।

उसने उत्तर दिया—"इस समय मैं जहाँ हूँ, वहीं ठीक हूँ। अन्यत्र जाना मुझे पसन्द नहीं।"

"मतलब यह है कि हम सबका बहिष्कार कर दिया है!" सुमति ने उलाहना दिया।

"ऐसी बात नहीं सुमति बहन, असली बात यह है कि मैंने अपना क्षेत्र निश्चित कर लिया है, अतः उसे छोड़कर निरर्थक इधर-उधर क्यों भटका जाए? यह समय का अपव्यय ही होगा। हरेक पल का जनता की सेवा में उपयोग करना चाहिए।"

"सो तो तू कर ही रहा है।" लीलाधर ने कहा—"लेकिन इतने बरसों से तू

अविरल श्रम कर रहा है। एकाध बार अपने लोगों के बीच आकर कुछ दिन विश्रान्ति ले तो सबको सन्तोष होगा। ऐसा करने में तुझे ऐतराज क्या है? सुन, मेरी माताजी बारबार तुझे याद करती हैं। चल हमारे साथ। महाबलेश्वर तक तो चल, बम्बई की बात बाद में सोचना।"

लीलाधर ने अति आग्रह किया, प्रार्थना की, परन्तु सब व्यर्थ! मुकुन्द ने अपनी जिद न छोड़ी। अन्त में नाराज़ होकर उन दोनों ने मुकुन्द से बिदा ली।

महाबलेश्वर से बम्बई लौटने पर उन्होंने रमा काकी से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब उनके दुःख का पार न रहा। उन्हें नित्य जीवन के स्थान पर अन्य किसी प्रकार का जीवन सहन नहीं होता था। कोई दूसरा व्यक्ति भी अपने जीवन का रुख बदले तो रमा काकी से सहन नहीं होता था। लीलाधर इंग्लैंड गया था तब उन्होंने मुकुन्द को देखा था। फिर लीलाधर का ब्याह हो गया। उसके बाद रमा काकी ने उसे एक-दो बार देखा था। उसे वृन्दा-जैसी पत्नी मिली है, यह सुनकर उन्हें आनन्द हुआ था। लेकिन वे 'भीतर की बात' नहीं जानती थीं। मुकुन्द और वृन्दा की जोड़ी को वे आदर्श मानती थीं। इस समय सुमति और लीलाधर ने बताया कि मुकुन्द के संसार की कैसी दुर्दशा हुई, तब उनके खेद का पार न रहा। इस समय भी सुमति या लीलाधर ने सच्ची बात नहीं बताई थी, जिससे रमा काकी भी यही मानती थीं कि मुकुन्द इस असार संसार से विरक्त हो गया है और कहीं जंगल में चला गया है, और वृन्दा भी उसके वियोग में झुरती हुई नासिक में संन्यस्त जीवन बिता रही है। रमा काकी की आकांक्षा थी कि मुकुन्द और वृन्दा सुखी रहें, अपनी गोद में बच्चे खिलाएँ और सानन्द रहें। लीलाधर के मुँह से जब उन्होंने मुकुन्द के कठोर जीवन की बात सुनी तो उन्हें एक तरह का आघात लगा।

"राम राम! यह उसको क्या सूझा? अप्सरा-जैसी बीवी और राजकुमार-जैसा पुत्र छोड़कर क्या देखकर वह जंगल में जा बैठा होगा? उसकी बुद्धि को क्या कहूँ? इस महात्मा गांधी ने तो जगत का सत्यानाश करने की ठान ली है। सुन लीलाधर! तू मुझे उसके पास ले चल। फिर देख, मैं उसे बम्बई

में लिवा लाती हूँ कि नहीं ? तू देखते रहना मैं उसे पुनः परिवार की ममता में कैसे फँसाती हूँ। वह तो नादान है। उसे अभी इतनी बुद्धि कहाँ से आएगी ? संन्यास लेकर संसार का त्याग करना कोई मज़ाक है ? बड़े-बड़े विश्वामित्र-जैसे ऋषियों ने भी अपने हाथ धो लिये, फिर कल का यह छोकरा क्या जाने संन्यास क्या है ?" रमा काकी बोलने लगी।

लीलाधर ने रमा काकी की योजना के संबंध में आशंका प्रकट की। वह जानता था कि रमा काकी मुकुन्द को चाहे जितना समझाए, सब व्यर्थ जाएगा। इसलिए उसने अपनी माँ का मन अन्य बातों में पिरोया।

"अरे यह तो बता, वह खाता-पीता भी है या फिर चना-चुरमुरा खाकर ही रहता है ?"

लीलाधर हँसने लगा। इतनी देर तक चुपचाप बातें सुन रही हेमलता अब बोली—"अरे-रे, इतना भी नहीं जानती माँ, कि बिना भरपेट खाए उनसे काम हो ही नहीं सकता। और मैंने सुना है मुकुन्द भाई सारा दिन कोल्हू के बैल की तरह काम किया करते हैं।"

रमा काकी पुनः बोलीं—"लीलाधर, तुम चाहे जो कहो, लेकिन घर-जैसा खाना तो आश्रम में कहाँ से मिलेगा ?" यकायक वे हेमलता की ओर मुड़ीं और गुस्से में बोलीं—"याद रख छोकरी, तुझे भेज देती हूँ उसके आश्रम में ! मीठा-मीठा खाने की आदत हो गई है तुझे। 'मुझे यह नहीं भाता और वह नहीं भाता' कहकर रोज़ मेरी जान लेती है। यह तो ठीक है, माँ जो है...."

वार्तालाप का अन्त इस प्रकार देखकर सुमति मन-ही-मन हँसने लगी। वह अपनी सास का स्वभाव भली प्रकार जानती थी, सो अपनी हँसी सास की नज़रों में आने से पूर्व ही उसने बात बदल दी।

लीलाधर को सपरिवार बम्बई आए एक महीना बीत गया। इस बीच, मुकुन्द का पता चलने की बात कई परिचितों को मालूम हो चुकी थी। मुकुन्द से स्नेह और ममत्व रखने वाले कितने ही लोग उससे आश्रम में मिलकर आए। सोनगाँव के लोगों को, आश्रम में इतने लोगों को आते-जाते देखकर,

आश्रम के प्रति अभिमान होने लगा।

मुकुन्द ने लीलाधर के आग्रह को स्वीकार नहीं किया था, किन्तु विधाता ने उसके लिए बम्बई जाना अनिवार्य बना रखा था, सो उसे बम्बई जाना ही पड़ा। एक विचित्र और करुण घटना हुई। मुकुन्द ने अपने एक चतुर और परिश्रमी साथी को बारडोली भेजा था। वह युवक बुद्धिमान था और सबका प्रिय बन जाने लायक उसका स्वभाव था। मुकुन्द का उस पर अनहद प्रेम और विश्वास था। वह सोनगाँव लौटते समय कुछ दिन बम्बई में रुका, लेकिन दुर्भाग्य से मोटर-दुर्घटना का शिकार बना और उसे परिचर्या के लिए अस्पताल में भर्ती किया गया। यह दुःखद समाचार सुनते ही मुकुन्द को गहरी चिन्ता होने लगी और वह उस युवक के पिता को लेकर बम्बई आ पहुँचा।

बम्बई में आते ही वे दोनों अस्पताल में गए और आहत की देखभाल में जुट गए। मुकुन्द ने घायल युवक के साथ दो रातें बिताई जिससे युवक को आराम लगा। अब भय का चिह्न न रहने से मुकुन्द सोनगाँव लौटने में समर्थ हो गया। इस समय उसे सुमति और लीलाधर का सत्याग्रह और प्रेम याद आया और लीलाधर के यहाँ दो दिन बिताने के लिए वह गया।

मुकुन्द के आगमन से लीलाधर के परिवार के सभी लोगों को खुशी हुई। छोटे बच्चे तो उसे अपना दोस्त ही मानने लगे। लीलाधर और अन्य मित्रों के आग्रहवश बम्बई और उपनगर में उसके दो व्याख्यान भी आयोजित किए गए। ऊँचे विचार और सरल विवेचन-पद्धति के कारण श्रोताओं को व्याख्यान खूब अच्छे लगे।

कांग्रेस के विजयानन्द का समय था वह और हरेक को राजनीति का नशा चढ़ा हुआ था। फिर भी मुकुन्द ने अपने व्याख्यान के विषय, राजनीति के बदले, धार्मिक-क्षेत्र से ही चुने थे। कर्मयोग, आध्यात्मवाद और मायावाद, धर्म की प्रतिष्ठा आदि विषयों पर उसने विवेचन आरम्भ किए थे। विवेचन के समय वह इतना तल्लीन हो जाता कि मानों वह अपने विषय से एक रूप हो गया हो। रमा काकी भी उसके व्याख्यानों में विशेष रूप से उपस्थित रहतीं और ध्यान से सुनतीं। परन्तु हेमलता ने उसकी एक व्याख्यान में ही परीक्षा ले ली

और अवसर पाने पर उसका मज़ाक उड़ाने लगी। यह देखकर रमा काकी को अपार क्षोभ होता था।

हेमलता ने मैट्रिक उत्तीर्णकर के अभी-अभी कालिज में कदम रखा था। बचपन से ही वह अपने पिता की गोद में बैठकर शुष्क बुद्धिवाद के सबक सीखी थी। अपनी माँ के भावुक और श्रद्धालु हृदय के लिए उसके मन में कई बार घृणा पैदा हो जाती थी। जेल में निर्मला से स्नेह स्थापित हो जाने से उसके विचार बिल्कुल जड़वादी बन गए थे। फिलहाल वह रूसी-साहित्य का अध्ययन कर रही थी और उसकी विचारधारा साम्यवाद की ओर बहने लगी थी। रूसी उपन्यास पढ़कर उसके दिमाग़ में अद्भुत रम्य कल्पनाएँ उठने लगीं। भारत में भी मानो ज़ारशाही है और उसे नष्ट करने के लिए हम मजदूरों और किसानों का संगठन कर रहे हैं, ऐसे स्वप्न वह देखने लगी।

निर्मला जेल से छूटकर बाहर आई। पश्चात् हेमलता उससे एक-दो बार मिली। निर्मला का कार्य और व्यवस्था शक्ति देखकर हेमलता उसे देवी के समान पूजने लगी। परन्तु दुर्भाग्य से उसे निर्मला का सहवास लम्बे समय तक न मिल सका। चन्द्रशेखर की कई दिनों की इच्छा पूर्ण होने का अवसर आ गया और वह निर्मला को लेकर यूरोप को चल दिया। फिर भी पत्र द्वारा उसे निर्मला के विचारों का लाभ मिलता रहता और वह सन्तोष करती। निर्मला यूरोप से अपने विविध अनुभवों, कार्यों आदि का विवरण पत्र में लिखकर हेमलता को भेजती रहती और हेमलता खुशी-खुशी वह सब पढ़ती थी।

ऐसी स्थिति में वह मुकुन्द के विचारों को कैसे पसन्द करती? मुकुन्द के अपनी पत्नी का त्याग कर बनवास अपनाने की एकमात्र बात हेमलता के लिए पूर्वग्रह बाँधने को पर्याप्त थी। मुकुन्द का वेष और विचार जान लेने पर, हेमलता बार-बार उसका उपहास करती थी। घर में वह ऐसा उपहास नहीं करती थी, उसमें उतनी हिम्मत नहीं थी। अपनी छोटी बहन सरला या सहेली मनोरमा के सम्मुख वह अपने दिल का गुबार उड़ेलती और मुकुन्द के आचार-विचार का खुला मजाक उड़ाती थी।

—और सरला—अपने नाम के अनुसार सरल और श्रद्धालु लड़की थी।

वह हेमलता की तरह कुशाग्र बुद्धिशालिनी नहीं थी तथापि वह सात्विक वृत्ति की परिश्रमी बाला थी। मनोरमा भी ध्येयवादी सुरुचि भाव की बाला थी। उसका मन आश्रमी जीवन की ओर था और धर्म में उसकी अटूट श्रद्धा थी। वह जेल में न गई थी। जेल में जाने की उसकी इच्छा तो थी लेकिन उसके माता-पिता ने उसे न जाने दिया था। उसकी मानसिक आतुरता बढ़ गई और विद्रोह करके किसी आश्रम में भाग जाने की उसकी तीव्र इच्छा थी।

मुकुन्द के सोनगाँव जाने से एक दिन पूर्व, सन्ध्या के समय हेमलता, मनोरमा, सरला, रमा काकी और सुमति बैठक में बैठे थे। समीप में ही अवि-नाश और अरविन्द खेल रहे थे।

इस समय हेमलता ने कहा—"माँ, मनोरमा जल्दी ही कहीं भाग जाने वाली है।"

"बस कर, चुप रह, मैं जानती हूँ तू मुझे बनाने में निपुण है।"

"तुम ही पूछ लो, उससे।"

"लेकिन भागने का कारण क्या है?"

"उसे भगवान से मिलना है।" यों कहकर, मनोरमा की ओर देखकर, वह मुस्कराई।

"भगवान को प्राप्त करने के लिए भाग जाने की जरूरत नहीं। मनु, भग-वान स्वयं ही तुम्हारे पास चले आएँगे। श्रद्धा से भक्ति कर, इतना काफी है।"

अब सुमति ने मनोरमा से पूछा—"मज़ाक की बात छोड़ो। सच्ची बात बता कि तुझे किस बात की उत्कंठा है?"

मनोरमा ने कहा—"बात यह है सुमति बहन, आज का हमारा जो जीवन है, वह साधारण है। इससे अपना क्या श्रेय होगा? मैं इसमें परिवर्तन चाहती हूँ।...."

"बस, इतनी-सी बात है।" रमा काकी आनन्द से बोल उठीं—"मैं रास्ता बताती हूँ। अच्छा-सा वर ढूँढ़ लो। ऐसा करने से तू सुखी होगी। इस हेम की बात मत सुनो। इसमें तो अक्ल का कतरा भी नहीं है।" राम काकी ने हेम की ओर हाथ हिलाए।

"ब्याह करना तो नित्य व्यवहार की ही बात है।" मनोरमा ने कहा–"मुझे यह पसन्द नहीं। उसकी नवीनता क्षणिक होती है।"

"तो क्या चाहती है तू!"

"मुझे लगता है किसी आश्रम में जाकर रहूँ और यूरोपियन मिशन की महिला के अनुसार निःस्वार्थ जन-सेवा करूँ।"

"ऐसे निरर्थक विचार न करो बेटी।" रमा काकी बोलीं—"वह भी कोई जीवन है? स्त्रियों का जन्म उनके पति के लिए है। अपना धर्म छोड़कर गलत रास्ते जाना क्या अच्छा है?"

हेमलता अब तुनककर बोली—"और पति मर जाए तो उसके बेटे के लिए। सन्तान न हो तो देवरानी-जेठानी, देवर-जेठ के लिए जीना पड़ता है। कुल मिलाकर स्त्री का स्वतंत्र जीवन ही न हो, यही न? सचमुच! स्त्रियों का शत्रु और कोई नहीं, स्वयं स्त्री ही है। स्वयं स्त्रियों को अपने जीवन का मूल्य ज्ञात नहीं, कैसी विचित्र बात है?"

"क्यों री, कीमत क्यों नहीं? स्त्री का जीवन अपने पति और बाल-बच्चों के लिए है ऐसा मैंने फिजूल कहा?" रमा काकी बोलीं—"कितना काम पड़ा है उसके सामने?"

"हाँ, हाँ। काम तो खूब है, गधे की तरह ढोने के लिए।" हेमलता आवेश में बोली। उसके बोलने में व्यंग्य था—"पति और बच्चों को देव, धर्म, बाबा, गोसाईं, देवर्षि की तरह ही जबरदस्ती लादा गया है।"

"क्यों नहीं? स्त्रियों को दुनिया की सेवा करनी चाहिए।" रमा काकी ने तत्वज्ञान शुरू किया—"कल की छोकरी तू, तुझे देव, धर्म, साधु-संत की परवाह ही नहीं। ईश्वर ने जीभ दी है, जो चाहे बोलने के लिए?"

"तो ईश्वर ने जीभ क्यों दी है, दूसरे को जीभ देने वाले भगवान को वाणी क्यों नहीं फूटती?" हेमलता चिढ़कर बोली।

"उसके तो वाणी है। लेकिन तुम लोग बहरे हो।" रमा काकी यों खड़ी हो गईं मानों लड़ पड़ेंगी। "तुम्हारा भगवान तो रूस में जाकर बैठा है।"

"वहाँ बैठे-बैठे वह गरीबों की सेवा ही कर रहा है। गरीबों की सेवा को

ईश्वर की सेवा मान लेने में क्या एतराज है?" बढ़ती हुई बात को रोकने के इरादे से सुमति बोली।

"यह कैसी ईश्वर की सेवा? धर्म नहीं, जात-पाँत नहीं, मन्दिर नहीं—और कहे ईश्वर की सेवा करते हैं।" रमा काकी ने सिर को झटका दिया।

"हमें वैसा ईश्वर ही नहीं चाहिए।" हेमलता गरज उठी। "उसने मनुष्य-मनुष्य के बीच झगड़ा खड़ा किया है। यदि उसका अस्तित्व वास्तविक होता, वह कभी का प्रत्यक्ष हो जाता। लेकिन जहाँ ईश्वर नाम की कोई चीज़ विद्यमान नहीं, वहाँ वह प्रकट क्या खाक होगा? कोई चीज होती तो नज़र न आती? कम-से-कम उसके लक्षण तो प्रतीत होते?"

यह सुनकर रमा काकी कुछ बोलने वाली थी, कि बाहर से लीलाधर और मुकुन्द आ पहुँचे। तुरन्त ही रमा काकी और सुमति खड़ी हो गईं, और शाम के भोजन की तैयारी करने भीतर चली गईं। लीलाधर भी उनके पीछे-पीछे चला गया।

मुकुन्द बैठक की कुर्सी पर बैठ गया। सरला अब उसके पास आई। उसके गले लगकर प्यार से कहने लगी—"मुकुन्द भाई, आप ईश्वर में विश्वास करते हैं?"

सरला का हाथ पकड़कर मुकुन्द ने हँसकर कहा—"हाँ, तुझे क्यों शंका हुई?"

"जिस पर आपका विश्वास है, वह कैसा है? आपने उसे देखा है? उसके अस्तित्व का प्रमाण क्या है? आप बताएँगे?"

"सरला, तू ने शक्कर खाई है?"

"हाँ, शक्कर तो रोज खाती हूँ।"

"वह कैसी होती है?"

"मीठी।"

"मीठी यानी कैसी? मिठास तूने देखी है? उसके लक्षण तू मुझे बता सकेगी? उसका आकार, रूप-रंग कैसा है?"

"यह क्या बोलते हैं मुकुन्द भाई?" सरला जोर से हँसकर बोली—

"मिठास कैसे देखी जाए ? उसका वर्णन भी संभव नहीं। उसे चखना चाहिए।"

"ईश्वर का वर्णन करना भी असम्भव है। उसे अनुभव से जान लेन चाहिए।"

सरला हेमलता की ओर देखकर व्यंग्य में हँसी।

हेमलता का चेहरा लाल-पीला हो गया था।

५९
शुष्क जीवन

आज वृन्दा ने सुमति के पत्र का दस बार पारायण किया। उसका जीवन रेगिस्तान में खड़ी एकाकी चट्टान की तरह बीत रहा था। फिर भी इसमें उसे आनन्द मिल रहा था। उसके जीवन में सुख था या दुःख, वह अकेली ही जानती थी। बचपन से ही सुख की छाया में पली होने के कारण उसे प्रस्तुत शुष्क, परित्यक्त जीवन क्योंकर भाता? लेकिन यह कह सकते हैं कि उसने अपने हठ और दुराग्रही स्वभाव के कारण ही यह दशा अपने मत्थे मार ली थी।

ऐसी बात नहीं कि उसे पुरानी सुखद घटनाओं का स्मरण न होता हो। मुकुन्द भी उसे याद आ जाता, परन्तु वह इस स्मृति को सायास दबा देती थी। जिसके ऊपर जीवन के सुख का मीनार बाँधा था, उसने अपने को निराशा की खाई में धकेल दिया और जीवन मिट्टी में मिला दिया, उसकी याद क्यों की जाए? हमेशा वह ऐसा ही सोचती।

उल्टे, चन्द्रशेखर काफी दिन तक उसके दिल से दूर न हुआ था। वह चाहे जैसा था, उसके जीवन में एक बार तहलका मचा दिया था। उसके हृदय पर नहीं तो कम-से-कम मन पर तो चन्द्रशेखर ने अपना स्वामीत्व जमा दिया था। फिर वह उसके पुत्र का पिता भी था। चन्द्रशेखर भी उसकी

विलासी और भौतिक सुखों का उपभोक्ता था। यह बात भी उसके स्वभाव से मिलती-जुलती थी। कई बार उसे लगता कि उसका ब्याह मुकुन्द के बदले चन्द्रशेखर के साथ होता तो अच्छा था। ऐसा होने से खुद को भरपूर सुख और आनन्द मिलता। उसके मन में रह-रह कर ऐसा तर्क उद्‌भवित होता था।

फिर उसने मुकुन्द को क्यों छोड़ा?

चन्द्रशेखर से संबंध-विच्छेद क्यों किया?

सत्यकाम के जन्म से वृन्दा घबड़ा गई थी। उसके जन्म का रहस्य यद्यपि दुनिया नहीं जानती थी और रहस्य का विस्फोट न करने का आश्वासन मुकुन्द से प्राप्त हो चुका था। इतने पर भी उसके हृदय की घबराहट, व्याकुलता और थरथराहट का पार न था। यदि मुकुन्द अति उदार, दैवी और क्षमाशील न होता, अन्य सामान्य मानव की तरह होता, तो वृन्दा विकारवश गुप्त व्यभिचार करने पर भी उजला मुँह बनाए मुकुन्द के साथ पत्नी की तरह रह सकती थी। लेकिन मुकुन्द की सत्य-निष्ठा, धर्म-निष्ठा और महत् औदार्य ने उसे लज्जित कर दिया था। उसे गहरा परिताप हुआ था। लेकिन अब क्या करती वह? उसके सामने केवल दो ही मार्ग शेष थे—चन्द्रशेखर के साथ खुले रूप में पत्नी की तरह रहना या अपने कानूनी अधिकार का त्याग कर स्वतंत्र जीवन बिताना।

—परन्तु, वृन्दा में सामाजिक रूढ़ियों से विद्रोह करने का साहस नहीं था, फिर भला चन्द्रशेखर-जैसे कायर में तो ऐसी हिम्मत कहाँ से होती? वृन्दा इस मनुष्य को पूर्ण रूप से परख न सकी। सो, वृन्दा के अपने विचार उसके सम्मुख उपस्थित करते ही वह ढीला हो गया। वह बहाने बनाने लगा। यह जान लेने के बाद कि वृन्दा गर्भवती हो गई है, उसने मिलना-जुलना कम कर दिया। वृन्दा की प्रसूति के बाद तो उसका दर्शन ही न हुआ। तीन मास तक प्रतीक्षा करने पर जब वृन्दा ने अति आग्रह से पत्र लिखा तभी साहबजादे मिलने आए। उस समय वृन्दा ने अपने को और सत्यकाम को साथ रखने की प्रार्थना की। मुकुन्द के विचार और उसके अभय वचन की भी बात की,

परन्तु चन्द्रशेखर न माना। वृन्दा ने बालक को उसकी गोद में रखा और हार्दिक विनती की, मुकुन्द की भलमनसाहत का दुरुपयोग करने में अपने को शर्म आने की बात कही; लेकिन सब पत्थर पर पानी की तरह था। इस तरह वृन्दा को अपने साथ रखने को चन्द्रशेखर राजी न हुआ, उल्टे यह कहा कि बालक के पोषण का खर्च वह देगा, अप्रत्यक्ष रूप से यह भी सूचित किया कि वृन्दा अकेली रहे और वह उससे बार-बार मिलने आया करेगा।

यह सुनकर वृन्दा झल्ला उठी। उसने क्रोध से कहा—"तुम मुझे अपना शरीर बेचने की दूकान खोलने की सलाह देते हो?"

"गुस्सा मत करो वृन्दा।" चन्द्रशेखर ने समझाने का प्रयत्न किया—"मेरी बात समझ लो।"

"मैं कुछ सुनना नहीं चाहती। चले जाओ यहाँ से! तुम्हारे आनन्द और विलास की वस्तु नहीं मैं। मैं तुम्हारा काला मुँह भी देखना नहीं चाहती।" वृन्दा ने क्रोधावेश में चन्द्रशेखर को सुना दिया।

चन्द्रशेखर बाहर निकला और दरवाजे में मुकुन्द से भेंट हो गई, यह कथा पहले बताई गई है।

वृन्दा को अपने-आप पर घृणा हो आई और उसने घर छोड़कर प्रयाण किया। शरद के पास आई और उसी के साथ रहने लगी। मुकुन्द के कहीं भाग जाने का समाचार मिलने से उसे तनिक दुःख हुआ था; लेकिन मुकुन्द को उसने कभी अपना नहीं माना था, अतः अधिक क्षोभ न हुआ। मन की गहराई में अब भी एक आशा अवस्थित थी कि चन्द्रशेखर आज नहीं तो कल पछताएगा और मुझसे याचना करने आएगा। मेरा नहीं तो इस बालक का स्नेह उसे खींच लाएगा। लेकिन उसकी यह आशा निरर्थक थी। वृन्दा ने चतुराई से अपने निवास का पता चन्द्रशेखर को दिया था। फिर भी नहीं आया। इतना ही नहीं, पत्र भी न लिखा। इससे वह अत्यन्त निराश हो गई। चन्द्रशेखर से उसका मोह ओझल हो गया। चन्द्रशेखर के ब्याह करने की बात जब जानी तो उसे अधिक ग्लानि हुई। अब चन्द्रशेखर के लिए तिरस्कार ही

आया। जिस पर अन्धविश्वास रखकर स्वयं फँस गई थी, नीति और पावित्र्य से च्युत हो गई, वह मनुष्य इतना निष्ठुर और दगाबाज़ सिद्ध होगा, इसकी उसे कल्पना न थी। उसके कारण वृन्दा ने अपने जीवन की होली जलाई थी। अब उसे लगा कि एक तरफ से मुकुन्द चला गया, दूसरी ओर से चन्द्रशेखर भी चला गया। अपने पराक्रम के प्रतीक-रूप सत्यकाम उसके साथ था। अब उससे भी कुछ नफरत होने लगी थी। इन घटनाओं से उसका हृदय क्यों न संतप्त हो? उसका स्वभाव क्यों न उग्र बने?

सत्यकाम के प्रति वृन्दा के मन में आवश्यक अनुराग नहीं था। चन्द्रशेखर की दगाबाज़ी का अनुभव आने पर उसका यह अंश उसी रास्ते जाएगा, ऐसा मानकर वह सत्यकाम पर चिढ़ने लगी। उसने सत्यकाम को लाड़-प्यार न किया। वह उसकी देखभाल ठीक से न करती और नाहक चिढ़ती रहती। कई बार सत्यकाम को बेगुनाह वृन्दा के हाथों मार खानी पड़ती थी। ऐसे समय वह बेचारा दयनीय बनकर चुप बैठा रहता। वह रो भी न पाता। वृन्दा सत्यकाम के साथ ऐसा कठोर बरताव करती थी। कोई पड़ौसिन या शरद कई बार सत्यकाम पर दया जतलाती। पड़ौसिनों के स्वभाव अलग-अलग थे। कुछ नटखट औरतें मिठाई देने के बहाने सत्यकाम को अपने घर बुलाकर पूछतीं—"तुम्हारे पिता कहाँ है सत्यकाम? एक बार अपनी माँ से पूछो भी।"

भोलाभाला बालक अपने पिता के विषय में कुछ न जानता था। अपने मित्रों के घर उसने उनके पिताओं को देखा था लेकिन अपने घर में 'पिता' को न देखकर उसे विस्मय होता था। एक दिन उसने साहस कर के अपनी माँ से पूछा—

"माँ मेरे पिताजी कौन हैं? वे कहाँ हैं?"

वृन्दा ने तुरन्त ही उसके गाल पर तमाचा लगाया और चीख उठी—"चुप, मर मुए! बहुत बोलने लगा है।"

सत्यकाम चकित होकर पीछे हट गया। दूसरी बार ऐसा प्रश्न ही उसने नहीं पूछा। उसने यह देखा था, कि उसके बाल-साथियों को कई बार उनके पिता मारते थे। लेकिन माँ कम मारती थीं। जब कि उसके घर उल्टी प्रथा

थी। माँ अधिक गुस्सा करती है और माँ ही अपने बेटे को मारती है। इससे उसने समझा कि माँ पिता से अधिक कठोर होती है। अपनी माँ ही जब इतनी चिढ़ जाती है तो पिताजी का कहना ही क्या ? पिताजी इससे भी अधिक क्रोधी होने चाहिए। उसे लगा कि इससे तो पिता का न होना ही अच्छा है। परन्तु, फिर एक विचार आया। पिताजी के होने पर वह अपने बेटे को घूमने ले जाएँ, अच्छे-अच्छे स्थान बताएँ, मिठाई खिलाएँ, उनके पास पैसे भी होते हैं और बेटे को वे कभी दो पैसे दें। वह इन सुखों से वंचित था।

यों महीने और साल बीत गए। वृन्दा ने नासिक न छोड़ा। उसक पाहर से प्रारम्भ में कभी आमंत्रण आता था, लेकिन उनका जवाब ही नहीं दिया गया अतः अब उनके पत्र भी बन्द हो गए। उसके पिता एक बार समाचार लेने आए थे, लेकिन वे जैसे आए लौट गए। वृन्दा ने उन्हें कोई बात न कही।

इस प्रकार काफी समय व्यतीत हो गया। एक दिन अचानक उसके हाथ सुमति का पत्र आ गया। उसमें मुकुन्द के समाचार थे। मुकुन्द का हिमालय-प्रवास, सोनगाँव का आश्रम, आश्रम की व्यवस्था, आदि के विषय में विस्तृत जानकारी पत्र में लिखी थी। और इस अवसर से लाभ उठाने की अप्रत्यक्ष सूचना भी दी गई थी।

पत्र पढ़कर वृन्दा का मस्तिष्क शून्य हो गया। उसके अन्तर में आवेग की लहरें उमड़ने लगीं। वह लहरियाँ सुख की थीं या दुःख की, समझ में न आया। लेकिन इससे वह क्षुब्ध हो गई। सारा दिन वह विचारों में डूबी रही।

सुमति नियमित रूप से हर दो महीने पर एक पत्र लिखती थी। वृन्दा कभी-कभी विवेक दर्शाने के लिए जवाब देती। फिर भी सुमति ने पत्र लिखने का क्रम जारी रखा था। उसके बाद जो दूसरा पत्र आया उसमें मुकुन्द के बम्बई आने का जिक्र किया था। तदुपरान्त, उसके व्याख्यान जो अखबारों में छपे थे, उनकी प्रतिलिपियाँ भी साथ भेजी थीं। मुकुन्द की कीर्ति धीरे-धीरे प्रसरित हो रही है और लोग उस पर मुग्ध हो रहे हैं, यह भी पत्र में लिखा था।

आज वृन्दा ने ध्यानपूर्वक पत्र पढ़ा था। उसके मन में एक अकथ्य हल-

चल मची थी। जब मुकुन्द के साथ रहती थी, तब वह गूढ़ और मूढ़ लगता था। उसके पागलपन का क्या परिणाम होगा, वह न समझ सकी थी। और ऐसे धुनी और पागल से अपना ब्याह होने से उसे अपने जीवन की भी चिन्ता रहा करती थी।

लेकिन अब उसे लगा कि गहनता और मूढ़ता का पर्दा हटने लगा है। मुकुन्द का जीवन वर्षाकालीन झरना न होकर विस्तृत धरती को फलदायी बनाने वाला प्रचंड शक्तिपूर्ण जीवन-प्रवाह है। यदि थोड़ा-सा धीरज रखा होता और वासना और मोह में अन्धी न बनती तो, महाप्रबल जीवन-प्रवाह में अपने जीवन-स्रोत को विलीन कर कितना अच्छा कार्य कर पाती ! उनकी जोड़ी ने जगत के कल्याणार्थ क्या-क्या किया होता ! ऐसा होने से अपना जीवन पवित्र बन जाता और लोकप्रियता और सम्मान भी मिलता। लेकिन अब तो वह स्वर्ण-संधि चली गई है और उसके नसीब में अन्ततः अपयश ही लिखा है।

पलँग पर लेटे-लेटे, आँख मूँदकर वह अपने पूर्वजीवन पर विचार करने लगी। अनेक व्यक्ति उसकी आँखों के सम्मुख उपस्थित हो गए। लेकिन सब ओझल हो गए। उसकी स्वर्गस्थ सास सामने ही खड़ी रही। उसका उपदेश याद आते ही उसका मन रो उठा।

अस्त-व्यस्त पलँग पर लेटी वह कई विचार कर रही थी। इतने में धीरे से सत्यकाम ने प्रवेश किया। सत्यकाम इस समय पहली में पढ़ता था। उसकी बुद्धि चपल थी और पढ़ाई के सिवाय अन्यत्र उसका ध्यान न होने से वह प्रगति कर रहा था। सच बात तो यह थी कि अध्ययन ही उसका साथी था। इससे उसे स्कूल जाना पसन्द था और वृन्दा भी इस दिशा में प्रोत्साहन देती थी।

उसने अभी अपना गृह-कार्य पूरा किया था और पाटी पर पहाड़े लिखकर वह वृन्दा को बताने आया था। वृन्दा के सम्मुख एक अक्षर बोलने की हिम्मत उसमें नहीं थी। अतः वह चुपचाप खड़ा रहा। इस समय उसे जोर की भूख लगी थी, लेकिन माँ, 'मुझे भूख लगी है, खाना दो' कहने की उसे हिम्मत न हुई।

वृन्दा ने उसकी ओर ध्यान न दिया। इस समय वह विभिन्न विचारों में

मग्न थी। अतः थक जाने पर विवश हो उसने अपनी पाटी-पुस्तक मेज पर रख दिए और फर्श पर लेट गया। भूखा था, फिर भी उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला।

इसी समय शरद भीतर आई। उसने समाचारपत्र में मुकुन्द के विषय में पढ़ा था। इसकी सूचना देने के लिए वह जल्दी-जल्दी आई थी। वृन्दा के पास आते ही उसने देखा कि मुकुन्द के भाषणों की कटिंग सीने से लगाए वह सोई है। यह देखकर वह बिना कुछ बोले लौट गई। इतने में सत्यकाम की चीख सुनी। उसका दुःखी स्वर सुना।

"बेचारा बालक भूखा लगता है।" उसे लेकर वह अपने कमरे में चली गई।

६०

दो भिन्न ध्येय

मुकुन्द सोनगाँव लौटा और पुनः उसका कार्यक्रम नियमपूर्वक पूर्ण उत्साह से आगे बढ़ा। उसकी ख्याति दिन-प्रतिदिन बढ़ रही थी और कई लोग उसका आश्रम देखने के लिए आने लगे थे। व्याख्यान देने के लिए आमंत्रण भी खूब आने लगे। परन्तु जब तक आश्रम में रहना हो तब तक बाहर व्याख्यान के लिए जाना उसे पसन्द न था। अतः वह उन आमंत्रणों को स्वीकार न करता था। फिर भी कभी-कभी उसे अपनी जिद छोड़नी पड़ती थी।

अब आश्रम में लोगों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ने लगी थी। इस समय बाई के अतिरिक्त अन्य कोई स्त्री आश्रम में नहीं थी। मुकुन्द बाई को ग्रामीण स्त्रियों में भेजता और उसे आशा थी कि धीरे-धीरे ग्राम्य महिलाओं में जागृति आ जाएगी। बाई का जीवन भी आनन्द में बीत रहा था। सुमति के साथ उसका परिचय होने से उसे असीम प्रसन्नता हुई थी। उसने सुमति के पास दिल खोल-कर अपनी कथा कही थी। इसमें चन्द्रशेखर की बात भी आई। सुमति को चन्द्रशेखर के चरित्र संबंधी एक ही बात पुनः सुनने को मिली और उसकी नैतिक-भ्रष्टता से चिढ़ पैदा हो गई। निर्मला के भाग्य में क्या होगा? इसके लिए वह आश्चर्य व्यक्त करने लगी।

स्त्री-जाति को जागृत करने के लिए मुकुन्द के मन में ललक थी। सुमति

जब उसके यहाँ थी तब वह यही कहता—"अपना उद्धार आपको स्वयं करना चाहिए। इतनी बड़ी संख्या में स्त्रियाँ प्रतिवर्ष उच्च शिक्षा प्राप्त कर विद्यालयों से निकलती हैं, लेकिन स्त्री-जागृति के लिए उनमें से कोई आगे क्यों नहीं आती? ऐसा प्रश्न वह पूछता था।

वह कहता—"हमारी बहनों की स्थिति हर तरह से दयनीय और शोचनीय है। वह सरकार, पति, पिता, बच्चे, समाज, रूढ़ि आदि की गुलाम है। इस गुलामी की जंजीरें तोड़कर स्वतंत्र होने की महेच्छा उनमें जागृत करनी चाहिए। लेकिन यह कार्य किसी और का नहीं, स्त्रियों का ही है और स्त्रियों को यह कार्य उठा लेना चाहिए।"

सरला को पास बिठाकर वह पूछता—"बड़ी होने पर तुम क्या करोगी?"

"भाई! मेरी भाभी जैसा कहेगी वैसा करूँगी।" पहले से तय किया जवाब वह देती। यह सुनकर मुकुन्द सिर हिलाकर कहता—"धत्, यों दूसरे पर आधार रखने से क्या लाभ? तू अपने-आप ही विचार करना सीख ले।"

हेमलता से वह अधिक बातचीत नहीं करता था। एक तो वह बड़ी थी, और उसके विचार जुदा थे। वह सरला की तरह मुकुन्द से स्नेह भी न रखती थी। अतः मुकुन्द उससे अधिक चर्चा न करता। जवान स्त्रियों के साथ मिलजुलकर बोलने की मुकुन्द की आदत नहीं थी। और हेमलता ने मुकुन्द से परिचय करने की उत्सुकता नहीं दिखलाई थी। सो मुकुन्द भी उस ओर ध्यान नहीं देता था।

यद्यपि हेमलता ने ऐसी उत्सुकता प्रदर्शित नहीं की थी, लेकिन उसमें इस भावना का सर्वथा अभाव नहीं था। वह ऐसा मानती थी कि मुकुन्द को स्वयं उसके पास आकर वार्ता-चर्चा करनी चाहिए। वह अभिमानी लड़की थी। उसे अपने सौन्दर्य, बुद्धि और निर्भयता का ज्ञान था और उस पर गर्व भी था। वह चाहती थी कि सब लोग उसकी प्रशंसा करें, और उसकी यह अपेक्षा अधिकतर पूर्ण भी होती। लेकिन मुकुन्द के विषय में वह असफल रही। मुकुन्द उसकी ओर देखता भी नहीं। सरला के साथ वह खुले मन से बोलता, चर्चा करता और कभी-कभी उसकी प्रशंसा भी करता। हेमलता को यह सब सहन न होता

था। सो, मन-ही-मन वह मुकुन्द पर चिढ़ रही थी।

"देखा, बड़ा स्त्रियों का उद्धार करने निकला है। दूसरों को उपदेश देने की कला ठीक सध गई है। मुझसे कहा होता तो बराबर जवाब देती।" एक बार हेमलता ने सरला से यों कह दिया।

सरला ने सब के बीच एक बार मुकुन्द से कहा—"मुकुन्द भाई, हेमु बहन आप पर क्रुद्ध हो गई हैं। वे कह रही थीं कि स्त्रियों का उद्धार करने की आपकी उत्कंठा दिखाऊ है। आपने स्त्रियों की क्या सेवा की है?"

"अपनी पत्नी को छोड़ दिया है!" हेमलता के होठों पर ये शब्द आ गए, परन्तु वहीं रुक गए।

मुकुन्द ने नम्रतापूर्वक सरला को उत्तर दिया—"अब तक मैं स्त्री को निर्विकार दृष्टि से देखता रहा हूँ। और यही मैंने सबसे बड़ी सेवा की है। इससे अधिक पुरुष क्या कर सकता है?"

सुमति यह सुन रही थी। उसके मन में कुछ-का-कुछ होने लगा। उसने चर्चा का विषय बदलने की चेष्टा की, लेकिन हेमलता यों पिंड छोड़ने वाली नहीं थी।

"यह तो 'निगेटिव' सेवा हुई। अब 'पाजिटिव' सेवा कीजिए—" हेमलता ने उपहास करते हुए कहा।

"वह कार्य आपके लिए रखा है।" मुकुन्द ने सीधा जवाब दिया।

हेमलता चौंक गई। मुकुन्द की आँखों में आँखें पिरोकर उसके अन्तर की थाह लेने की उसने चेष्टा की परन्तु वह सफल न हो सकी।

"मुझे योग्य लगेगा वह मैं करूँगी ही।" उत्तर देने के लिए वह बोली।

"आप अकेली की बात नहीं। मैं तो समस्त सुशिक्षित स्त्रियों के लिए कह रहा हूँ। सुशिक्षित स्त्रियों को ही आगे आकर इस कार्य को उठाना चाहिए। मैं कहता हूँ, यदि स्त्री अपना जीवन पवित्र और सेवापरायण बनाकर सेवा में जुट जाए और इस प्रकार पुरुष-जाति को प्रभावित करे तब भी काफी है। ऐसी स्त्रियों के पवित्र प्रभाव से ही दूषित वातावरण शुद्ध होगा और समाज की अनेक कुप्रथाओं का अन्त करने में सहायता मिलेगी।"

"लेकिन कुरूढ़ियों को दूर करने के लिए कागजी घोड़े दौड़ाना ठीक नहीं। स्त्रियों को आर्थिक क्रान्ति की आवश्यकता है। आज स्त्रियों का आर्थिक स्तर नीचा है। इस स्तर को ऊँचा उठाना चाहिए।" हेमलता ने अपने साम्यवादी विचार प्रस्तुत किए।

"हाँ। अवश्य ही ऐसा हो सकता है परन्तु इस कार्य के लिए स्वयं स्त्रियों को आगे आना चाहिए।" मुकुन्द ने जवाब दिया।

इतने में रमा काकी बीच ही में बोलीं—"यह छोकरी सारा दिन पैसा-पैसा चीखती है। लेकिन मैं पूछती हूँ, क्या पैसे से ही मनुष्य की योग्यता बढ़ती है? हमारी पड़ौसिन वारुबाई को देखिए। पति के मर जाने पर इतनी बड़ी जायदाद उसके हाथों आई थी। लेकिन क्या उपयोग? पूरी जायदाद लोग खा गए। जायदाद तो मिली, लेकिन उसकी रक्षा वह नहीं कर सकी और अन्त में सब मिट्टी में मिल गया। उसका मुनीम भी उसके जीवन को बरबाद कर चला गया। क्या उसके पास पैसा नहीं था? फिर भी उसकी यह दुर्दशा क्यों हुई? आज उस बेचारी का हाल कोई नहीं पूछता।"

हेमलता कुछ कहने जा रही थी लेकिन रमा काकी ने अपना भाषण जारी रखा—"यह सब कहने की बात है। मनुष्य का स्वभाव अन्त तक वैसा ही रहेगा। यदि उसे बदलना ही हो तो पैसे से नहीं बदलेगा। मैं सच कहती हूँ। हमारे यहाँ महादू कोयलेवाला आता है। मुए को खाना-पीना खूब मिलता है लेकिन चोरी करने की उसकी आदत किसी प्रकार नहीं छूटती। मैंने उससे कई बार कहा कि तुझे खाने-पीने को मिलता है, फिर भी तू चोरी क्यों करता है? तब वह बोला—'माँजी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, क्या करूँ?'"

सुमति बोली—"यह तो मानस-शास्त्र की बात हुई। लेकिन आर्थिक परिस्थति के कारण कई प्रश्न उपस्थित होते हैं और उनका हल भी होता है।"

"तुम आजकल के लोग रोज नया बखेड़ा खड़ा करते हो। हमारे जमाने में तो किसी दिन ऐसे प्रश्न नहीं आए। जो जैसा करता है, वैसा पाता है। कुदरत का अटल नियम है यह।"

यह संवाद अपेक्षा से अधिक चला। हेमलता को मुकुन्द पर क्रोध था ही।

इस चर्चा से वह तनिक भी कम न हुआ। उसे लगता कि मुकुन्द उसके साथ दूर से बात करता है। अपने से वह उम्र में काफी बड़ा होने पर भी 'आप' शब्द का प्रयोग करता है। यह उसे नही रुचा। मन की बात कहना भी सम्भव नहीं था।

इस प्रकार मुकुन्द में अबला-उन्नति की ललक जागी थी। इस कार्य के लिए स्त्री कार्यकर्त्रियाँ तैयार होनी चाहिए या उसे ऐसी सेविकाएँ तैयार करनी चाहिए, यही वह सोच रहा था। इतने में उसे सतारा से आमन्त्रण मिला। सतारा में उसके कालिज का एक पुराना स्नेही वकालत कर रहा था। उसकी पत्नी के प्रयत्न से सतारा में जनवरी में एक स्त्री-परिषद होने वाली थी। मुकुन्द को परिषद में भाषण करने का आमंत्रण था। मुकुन्द ने उसको सहर्ष स्वीकार किया था।

परन्तु भाग्य में कुछ दूसरा ही बदा था। महात्माजी इंग्लैंड से लौट आए थे और पुनः आन्दोलन आरम्भ हो गया, और रचनात्मक कार्यक्रम पर भी सरकारी निर्बन्ध आया। अनेक कार्यकर्ता श्रृंखलाबद्ध हुए। कइयों को कारावास हुआ। यद्यपि मुकुन्द को जेल में न ले गए थे, किन्तु उसके कार्य पर सरकारी नजर थी। उसे आश्रम छोड़कर बाहर न जाने और कहीं भ्रमण न करने की नोटिस दी गई थी।

स्त्री-परिषद का समय समीप आ रहा था और अब मुकुन्द को निर्णय कर लेना जरूरी था। नोटिस न मिलने पर वह इस अन्दोलन में शरीक होता या नहीं, कह नहीं सकते। लेकिन सरकारी निर्णय को चुपचाप मान लेना उसके स्वभाव के खिलाफ था। अतः उसने सरकारी आदेश का उल्लंघन किया।

इस समय सुमति ने आन्दोलन में हिस्सा नहीं लिया। इस समय लीलाधर की बारी थी। उसने आन्दोलन में भाग लिया और उसे डेढ़ वर्ष की सजा हुई।

हेमलता जेल में नहीं गई। उसका ध्यान निर्मला पर केन्द्रित था। निर्मला हिन्द में आकर जेल में जाए तो स्वयं जाने का सोच रही थी। लेकिन निर्मला

स्वदेश न आई ।

विवाह के बाद कुछ महीने निर्मला के लिए अच्छे बीते । रोज के व्यवहार और स्थूल आकार में चन्द्रशेखर तथा निर्मला में भेद नहीं था । नए जीवन का अचरज मोहक था, सो उनकी गाड़ी ठीक से चल रही थी ।

लेकिन धीरे-धीरे उसमें स्वभाव और बर्ताव का अन्तर स्पष्ट होने लगा । चन्द्रशेखर के लिए कोई आदर्श सिद्धान्त न था । वह केवल स्वार्थ का पुतला था । पैसा उसका परमेश्वर था और विलास, वैभव स्वच्छन्दी जीवन उसका ध्येय था ।

इसके विपरीत निर्मला का एक आदर्श था और उसके अनुरूप विचार थे । वह कार्ल मार्क्स और लेनिन की उपासिका थी, और भारत में रशियन क्रान्ति कराने की उसकी तमन्ना थी । व्यक्तिगत स्थूल विचार-व्यवहार को वह अधिक महत्व न देती । परन्तु अपना सामाजिक ध्येय वह हमेशा अपनी दृष्टि के सम्मुख रखती और उसके लिए अनुकूल प्रयास करती थी ।

इस अवस्था में चन्द्रशेखर उससे गृह-सुख और भोग-तृप्ति की अपेक्षा रखे, यह असंगत था । उसकी धारणा थी कि शादी के बाद निर्मला को ठीक कर लिया जाएगा । लेकिन उसकी धारणा दिन-ब-दिन लुप्त होने लगी । निर्मला का रोष ऐसा था कि चन्द्रशेखर को थोड़ा भय रहता था । निर्मला जिस बात को मानती थी, चन्द्रशेखर ने उसका अनुयायी बन एकरूप हो जाने के वचन दिए थे, जो अब निर्मला के सामने खोटे सिद्ध होने लगे । लेकिन दोनों में से किसी ने भी अपनी पसन्द या भावना और इच्छा का प्रदर्शन नहीं किया । इतने में आन्दोलन जारी हुआ और निर्मला जेल में गई ।

जेल से बाहर आते ही उसने अपना पुराना कार्य सँभाल लिया । चन्द्रशेखर उसके वियोग से कुछ व्याकुल बन गया था और कुछ सुधर गया था । निर्मला के बाहर आते ही उसने निर्मला से मीठी-मीठी बातें शुरू कर दीं और उसके अनुरूप बर्ताव भी आरम्भ किया । कुछ ही दिनों के बाद चन्द्रशेखर ने अपने स्वप्न-सिद्धि के अवसर को हथिया लिया और यूरोप जाने को तैयार हुआ । यूरोप के प्रवास में अपनी पत्नी साथ आए और रास्ते में उसकी मार्ग-

दर्शिका बने ऐसी उसकी इच्छा थी। उसने निर्मला को साथ लिया और विदेश के लिए रवाना हो गया।

विदेश में घूमने-फिरने की रीति दोनों की जुदा थी। चन्द्रशेखर का ध्यान धन कमाने पर केन्द्रित था। वह विलास के नए-नए नुस्खे सीख रहा था। और निर्मला अपने ध्येय के लिए वहाँ की साम्यवादी कार्यपद्धति का निरीक्षण कर रही थी। विभिन्न साम्यवादी कार्यकर्ताओं से परिचय बढ़ा रही थी। चन्द्र-शेखर जब नाच-गाने के जलसों में जाता तब निर्मला गरीब बस्तियों मे या साम्यवादी केन्द्रों में दौड़-धूप करती थी। वह भारत के साम्यवादियों से यूरोप के साम्यवादियों का संबंध स्थापित कराने का प्रयत्न कर रही थी।

उसके इन प्रयासों मे सहायता करने के लिए एक उत्साही कार्यकर्ता मिल गया। उसका नाम था रसिकलाल पंड्या। वह जवान था और साहसिक कार्य-कर्ता था। उसका इतिहास आश्चर्यजनक था। उसका पिता लखपति था! गरीब किसानो का शोषण करके उसने बड़े-बड़े मकान बनाए थे। रसिक उसका इकलौता बेटा था। समझदार होने पर उसे पिता का व्यवसाय पसन्द न आया। स्वभाव से वह साम्यवादी और साहसी था। वह कई बार अपने पिता की कड़ी आलोचना करता। पहले तो पिता ने उसकी आलोचना पर ध्यान नहीं दिया, लेकिन फिर बेटे को धमकाना शुरू किया। उस समय रसिक की आयु अठारह वर्ष की थी। बाप-बेटे के स्वभाव में गहरा अन्तर होने से रसिक का अपने पिता से झगड़ा हो गया। और परिणाम में वह भाग गया। स्टीमर में कोयले वाले का काम पाकर वह अमरीका गया। वहाँ रहकर उसने काफी शिक्षा और अनुभव प्राप्त किया। फिर यूरोप की ओर ध्यान दिया। स्वप्रयास से वह यूरोप की कई भाषाएँ सीख चुका था। अर्थशास्त्र का गहरा अध्ययन करके उसने स्थान-स्थान पर मजदूरों के संगठनों में उत्साह से कार्य किया। वह रशियन भाषा भी जानता था। उसने रशियन साम्यवादियों का विश्वास प्राप्त कर लिया था। उसका खयाल था कि हिन्दुस्तान में भी रशियन पद्धति की राज्य-व्यवस्था कायम की जाए और पूँजीवाद तथा शाहीवाद को निर्मूल किया जाए।

निमला के साथ उसका प्रथम परिचय आस्ट्रिया के एक मजदूर समारम्भ में हुआ था। उस समय परस्पर के विचार उन्हें इतने पसन्द आए कि ध्येय की सिद्धि हेतु साथी बन जाने का उन्होंने निर्णय कर लिया। तत्पश्चात् वे बार-बार मिलते रहे और दूर रहने पर पत्र-व्यवहार होने लगा।

उसने चन्द्रशेखर से अपनी मित्रता को छुपाया नहीं था। निर्मला का ऐसा स्वभाव ही न था। उल्टा, वह चाहती थी कि चन्द्रशेखर भी उसकी तरह रसिक को चाहे। लेकिन चन्द्रशेखर को साम्यवादियों से प्रेम थोड़े ही था? पराया आदमी अपनी पत्नी की ओर जिस दृष्टि से देखता, उसी दृष्टि से वह रसिक को देखता। एक तरह से उसके मन में रसिक के प्रति ईर्ष्या हो आई थी।

लगभग एक साल के बाद चन्द्रशेखर स्वदेश की ओर लौटा। निर्मला को रूस देखने की इच्छा थी, परन्तु चन्द्रशेखर को वहाँ जाना पसन्द न था। काफी चर्चा के बाद यह निर्णय हुआ कि चन्द्रशेखर अकेला भारत लौटे और निर्मला रूस होकर तीन महीने में भारत आ जाए।

इस बीच भारत में दूसरा आन्दोलन शुरू हो गया था। तो भी निर्मला स्वदेश न लौटी। रूस में उसने अपेक्षा से अधिक दिन बिताए। उस समय रसिक साथ में था ही।

हेमलता को इस बीच निर्मला के पत्र नहीं मिले थे, अतः उसका जेल में जाना अनिश्चित रहा। तदुपरान्त रमा काकी की यही इच्छा थी कि हेमलता घर में रहे। सुमति को छोड़ वह अकेली जेल में जाए, यह बात रमा काकी को पसन्द न थी। पहले के आन्दोलन में अनेक लड़कियों ने अन्तर्प्रान्तीय और अन्तर्जातीय विवाह किए थे, सो, कहीं अपनी लड़की भी ऐसा काम न करे, यही उनको भय था। इसलिए हेमलता जेल में न जाए तो ईश्वर की दया होगी, ऐसा रमा काकी सोचती थीं। इसमें अचरज की कोई बात नहीं।

६१

स्थानान्तर

मुकुन्द का पता पा जाने से वृन्दा का मन अस्वस्थ और चंचल बन गया था। अब वह उत्सुकता से सतारा के समाचार-पत्र खरीदती और उसमें मुकुन्द से संबंधित समाचार पढ़ती। उसके मन में तुमुल युद्ध हो रहा था कि यदि मुकुन्द मुझे पसन्द ही नहीं तो क्यों उसके समाचार जान लेने की उत्कंठा होती है? इसका उत्तर न मिलता और वह मन-ही-मन खीझ उठती।

एक दिन शरद ने उसके सम्मुख मुकुन्द द्वारा शुरू किए गए जनहित कार्य का उल्लेख किया। उसने यह जान लेने की भी कोशिश की कि इस संबंध में वृन्दा के क्या विचार हैं। परन्तु वृन्दा ने कोई जवाब नहीं दिया। यह देखकर शरद की उलझन बढ़ गई।

'इससे क्या समझूँ? अपने पति का पता न मिलने से वह यहाँ रहने आई थी, लेकिन अब उसका पता मिल जाने पर भी यह उसके पास क्यों नहीं जाती?' शरद मन-ही-मन प्रश्न करने लगी।

अन्ततः उसने साहस बटोरकर स्पष्टीकरण प्राप्त करने की चेष्टा की। वृन्दा उसकी ओर एकटक ताकते हुए बोली—"तुझे यदि मेरे प्रति थोड़ी-सी भी सहानुभूति हो तो कृपा कर यह प्रश्न न पूछ।"

ऐसा उत्तर पाने पर, शरद के लिए अधिक पूछने को न रहा। वृन्दा के

इस विचित्र स्वभाव पर मन-ही-मन आश्चर्य कर शरद वहाँ से चली गई।

उसके कई महीनों बाद आन्दोलन शुरू हुआ। मुकुन्द को सज़ा होने का समाचार वृन्दा ने पढ़ा था। मुकुन्द का स्त्री-परिषद में दिया हुआ भाषण भी उसने पढ़ा और उसका हृदय व्यथित हो गया।

उस भाषण में उसके लिए कोई नवीन बात न थी। स्वयं मुकुन्द के सान्निध्य में रही थी। उस समय बारबार जो अमृत-तुल्य विचार उसे सुनाया करता था उसकी प्रतिध्वनि इस भाषण में थी। हाय !! उस समय की और आज की स्थिति में कितना अन्तर है ?

मुकुन्द के विचार अब तक नहीं बदल सके थे। उस समय वह अपने कार्यक्रम की पूर्व तैयारी कर रहा था। उसका एक पल भी व्यर्थ न जाता था। उसके कार्य उसके निश्चित विचारों के अनुरूप थे। अपने कार्य में सहयोगी बनने के लिए वह कितनी प्रार्थना करता ? अपनी मदद के लिए वह सदा तत्पर रहता ! यह सब रह-रहकर वृन्दा को याद आने लगा। उसने सोचा, वह स्वर्ण अवसर वृन्दा ने खोया न होता तो आज मुकुन्द को पराई स्त्री का सहारा न ढूँढ़ना पड़ता।

अब वृन्दा भ्रमित स्त्री-जैसी दीखती थी। वह हमेशा अपनी विचार तंद्रा में डूबी रहती। निकट आकर भी कोई उसे पुकारता तो वह न सुन सकती। ऐसी दशा हो गई उसकी !

अब उसने खादी पहनना शुरू कर दिया। सत्यकाम के लिए भी उसने खादी के कपड़े सिलाए। घर में चरखा बसाया और कताई आरम्भ कर दी। जिस चाय के लिए पहले उसे सास और पति को खिन्न करना पड़ता, उस चाय को त्याग दिया। उसके रहन-सहन में भारी अन्तर आ गया।

इस बीच एक अड़चन आई। शरद के पति की नासिक से बदली हो गई। इससे वृन्दा का सहारा टूट गया। अब तक शरद के घर में वह अपने-आपको सुरक्षित समझती थी। अब क्या करूँ ? उसे विचार आया।

शरद ने उसे अपने साथ ही नए स्थान पर चलने का आग्रह किया,

परन्तु वृन्दा न मानी। नासिक में उसने अन्य किसी से कोई संबंध नहीं बनाया था। स्कूल की अध्यापिकाओं के साथ भी दुराव रखा था और किसी से घनिष्ठता नहीं थी! इसलिए उसे शरद-जैसा दूसरा आश्रय-स्थान मिलना दुष्कर था।

आखिरकार खटपट करके एक चाली में कमरा किराए से लिया और वहां रहने लगी।

एक स्त्री के स्वतंत्र रहने पर उस पर जो बीतती है, उससे वह अनजान नहीं थी। उसके एक पुत्र था फिर भी उसका सौन्दर्य और यौवन पूर्ववत ही था। कई वर्षों तक पुरुष का प्रश्रय न होने से और अचानक अपने किले से बाहर आने से उसकी स्थिति विचित्र हो गई। इस समय वृन्दा को किसी का सहारा न होने से कइयों को उस पर अनुकम्पा हो आती। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक तया समाज के परोपकारी प्राणी उसकी सेवा में उपस्थित हो गए!

सत्यकाम स्कूल जाता था, इससे उसे सन्तोष था। वह अपने काम पर जाती तब सत्यकाम को स्कूल में छोड़ देती। काम से लौटते समय वह उसे लिवा लाती। यह उसका नित्य का कार्यक्रम हो गया था। खुद घर में रहती तब वह सत्यकाम को बाहर न जाने देती। यद्यपि वृन्दा ने सत्यकाम के लाड़ नहीं किए तथापि शिक्षा के बारे में तनिक भी लापरवाही नहीं की। यह कह सकते हैं कि वह आवश्यकता से अधिक पढ़ाती थी।

सुमति ने पत्र लिखकर वृन्दा से बम्बई आने का बहुत आग्रह किया। लेकिन उसने इस आग्रह की परवाह न की। लीलाधर और मुकुन्द अलग-अलग जेल में थे, अतः उन दोनों से मिलने के लिए सुमति को दो जगह जाना पड़ता था। लेकिन सुमति के गर्भवती होने से उन दोनों ने उसे भेंट के लिए आने से मना कर दिया था। मुकुन्द को कोई भेंट करने आए, यह पसन्द ही न था। वह अपने पत्र बाई के नाम आश्रम के पते भेजता था। उनमें आश्रम और बाई के जीवन के संबंध में काफी पूछा जाता था। बाई ये पत्र सुमति को भेजती और सुमति की ओर से मुकुन्द-संबंधी समाचार वृन्दा को मिलते। वृन्दा ने युक्तिपूर्वक सुमति व आश्रम की 'बाई'-संबंधी जानकारी प्राप्त की

और अब उसे बाई से ईर्ष्या होने लगी।

सुमति ने वृन्दा को मुकुन्द से भेंट करने की बात सुझाई थी, लेकिन अभी उसमें उतना साहस नहीं आया था। इस बात से वह खुश न थी।

इधर वृन्दा चाली में रहने आई, और चाली में हलचल मच गई। स्त्रियों को बातें करने और पुरुषों को विनोद करने के लिए नया विषय मिल गया। अब तक हमारे समाज में नर्स और शिक्षिका उपहास के विषय रहे हैं! जाने उनकी स्थिति कब सुधरेगी! फिर भला वृन्दा समाज के इस प्रचलित नियम का अपवाद कैसे होती? एक सौभाग्यवती स्त्री अपने बच्चे को लेकर अकेली रहे, इतनी बात लोगों में कुतूहल जगाने को पर्याप्त थी।

६२

निर्मला का जीवन-संसार

मुकुन्द जेल से छूटकर सीधा सोनगाँव गया। वहाँ जाकर उसने आश्रम का समूचा कारोबार सँभाल लिया। पुनः जेल में जाने की कोशिश उसने नहीं की।

लीलाधर को जेल से रिहा होने में अभी दो महीने शेष थे। इस बीच एक दिन हेमलता ने घर आकर जल्दी में कहा—"भाभी! सुना तुमने? मनोरमा घर छोड़कर भाग गई!"

"क्या कहती हो?" सुमति एकदम बोली।

"सच कहती हूँ भाभी! मनोरमा भाग गई है। विगत कई महीनों से वह जेल जाने के लिए अपने माँ-बाप से अनुमति माँग रही थी, लेकिन वैसी अनुमति न मिलने पर उसने किसी अच्छे आश्रम में जाने की बात कही। लेकिन उसके माँ-बाप ने इस प्रस्ताव को भी अस्वीकार किया। फलतः गत रात वह क्रुद्ध होकर माँ-बाप से लड़ पड़ी और आज सबेरे ही चली गई।"

"कहाँ गई होगी?"

"मलवली में, कुछ दिन हुए सूरज बहन ने एक आश्रम चलाया है। उससे मनोरमा का ठीक-ठीक परिचय था, सो लगता है सूरज बहन ने उसे अपने आश्रम में स्थान दिया हो। जाने से पहले उसने एक पत्र दिया है—

मैंने बाल मुँड़ाकर श्राद्ध कर लिया है। अतः कोई मुझे वापस बुलाने का कष्ट न करे।

"कैसी लड़की है?" दरवाजे के पीछे अब तक छिपकर बातें सुननेवाली रमा काकी वायल का छोर सँवारती वहाँ आईं और बोलीं—"इस आन्दोलन ने लड़कियों को बहका दिया है। अपने से बड़ों की तो वे कुछ सुनती ही नहीं, और बस अपनी ही बात सच्ची मानती हैं।"

"फिर भी उसने जो कदम उठाया है उसे एकदम अप्रत्याशित या गलत तो नहीं कह सकते।" सुमति बोली—"उसके मन में आश्रम में निवास की जो ललक थी वह अन्य मार्ग से कदापि तृप्त न हो पाती।"

सुमति बोल रही थी; हेमलता पुनः बाहर जाने की तैयारी कर रही थी। उसकी ओर मुड़कर रमा काकी चीखीं—"कहाँ जा रही है तू? अभी-अभी तो बाहर से आई है।"

"यह समाचार देने को ही मैं आई थी। माँ, मुझे निर्मला बहन के घर जाना है। बहुत दिनों से उनसे नहीं मिली।"

"चल भीतर हो जा!" रमा काकी ने आदेश दिया—"नहीं जाना है निर्मला के घर। आठों प्रहर बाहर भटकती है। कुछ लाज-शरम नहीं आती?" रमा काकी का क्रोध भभक उठा।

"लेकिन माँ, मैं तुरन्त लौटती हूँ। मनोरमा की तरह कहीं भागूँगी नहीं।" हेमलता चिढ़कर बोली।

"तेरा क्या विचार है, कह दे! मेरे मना करने पर भी तू कहाँ जाना चाहती है? हर बार उसके पास तेरा क्या काम होता है? पति उसका आवारा और मवालियों के साथ भटकनेवाली निर्मला! मैंने सुना है कि वह बीड़ी पीती है और शराब भी ढींचती है। तुझे भी उस-जैसी बनना है?"

"यह हरेक की इच्छा का सवाल है। लेकिन माँ, वह मुझसे पीने का आग्रह नहीं करती। मुझे तो केवल उसके विचार ही पसन्द हैं और इसीलिए मैं उसके यहाँ जाती हूँ।"

रमा काकी निर्मला के पितरों का उद्धार करने ही वाली थीं कि सुमति

बीच में बोल उठी—"ठीक है, जाओ ! सासजी जाने दीजिए इसे। लेकिन सुनो, जल्दी लौट आना। और आते समय कह देना कि तुम लम्बी मुद्दत तक न मिल सकोगी। समझी !"

हेमलता चलती बनी। इस समय वह ज्यूनियर बी० ए० में थी। कालिज में उसने काफी भले-बुरे अनुभव लिये थे। इस अस्थिर जगत की सभी चीजें जब अस्थिर बन गई हों तो हेमलता कैसे बच सकती है ? फिर भी वह सावधान लड़की थी और हमेशा अपने को बचाती थी। बारबार सुमति की सलाह मिलने से उसे अपना मानसिक सन्तुलन बनाए रखने में कठिनाई नहीं होती थी। निर्मला के रूस से लौटते ही हेमलता दौड़कर उससे मिलने गई थी। निर्मला नया कार्यक्रम साथ में लाई थी इसीलिए उसने इस अहिंसक आन्दोलन से दूर रहने का निश्चय किया था। हेमलता भी आन्दोलन से आकर्षित न हुई। समय मिलने पर हेमलता निर्मला के घर या साम्यवादी कार्यालय में जाती, और निर्मला के नए विचार और कार्य-पद्धति का ध्यानपूर्वक अध्ययन करती थी। अपने मन में उठने वाले विभिन्न प्रश्नों का हल निर्मला से प्राप्त करती।

निर्मला हेमलता के सामने ही धूम्रपान करती थी, परन्तु उसने हेमलता से ऐसा करने का कभी आग्रह नहीं किया। हेमलता को केवल अपने रूसी विचारों में एकरूप बनाने का प्रयास वह करती थी। अभी तक हेमलता ने अपना ध्येय निश्चित नहीं किया था।

हेमलता को जिस बात का अचरज होता था, वह था निर्मला का पारिवारिक जीवन। निर्मला के घर आने-जाने से चन्द्रशेखर से उसका परिचय होना अनिवार्य था। वह भी उससे हिलने-मिलने और बोलने में स्त्री-दाक्षिण्य का प्रदर्शन करता था। सुमति ने चन्द्रशेखर के चरित्र की बातें कह दी थीं। फिर भी उससे सावधान रहने की सूचना दिये बिना वह न रही। रमा काकी को तो चन्द्रशेखर से सख्त नफ़रत थी। हेमलता का निर्मला के घर जाना उन्हें जरा भी पसन्द नहीं था। और इसीलिए उन्होंने हेमलता को निर्मला के घर जाने से रोका था। लेकिन सुमति को उस पर विश्वास था, दूसरे शब्दों में कह सकते

हैं कि इतनी बड़ी लड़की को अधिक दबाव में रखना उसे उचित न लगा था।

एक बात अवश्य है कि हेमलता को चन्द्रशेखर की दुश्चरित्रता का सीधा अनुभव न हुआ था। निर्मला के प्रति आदर और स्नेह उसे निर्मला के घर आकर्षित करता था। अधिकतर हेमलता ऐसे समय निर्मला के घर जाती, जब चन्द्रशेखर घर पर नहीं होता था।

हेमलता सीढ़ी चढ़कर बैठक में गई। उस समय उसने एक सुन्दर नौजवान को निर्मला के पास बैठा पाया।

हेम को देखते ही स्वागत-सूचक सिर हिलाकर निर्मला बोली—"आओ हेम! ठीक समय पर आई। यह हैं मेरे मित्र कामरेड रसिकलाल पण्ड्या। इनके विषय में मैंने पहले जिक्र किया था न?"

हेमलता ने उसे नमस्कार किया। रसिक ने भी उसका उत्तर दिया। फिर दोनों अपनी-अपनी कुर्सी पर बैठकर परस्पर देखने लगे।

प्रथम दर्शन में ही दोनों की एक दूसरे पर अच्छी छाप पड़ी। फिर संभाषण शुरू हुआ। हेमलता प्रश्न पूछने का काम करती और रसिक उसके विस्तृत उत्तर देता था।

रसिक के बोलने की रीति और विवेचन-पद्धति स्पष्ट और प्रशंसनीय थी। उसकी आँखों में तेज और वाणी में माधुर्य था। उसका बरताव भी सभ्य पुरुष जैसा था। अपने मनपसन्द या जिस पर अपना अधिकार हो ऐसे विषय पर वह बोलता था, तब उसकी आँखों में चमक पैदा हो जाती, और आवाज में आवेश भर जाता था।

हेमलता को ज्ञान हुआ कि रसिक के विचारों का निर्मला के विचारों से अद्भुत साम्य है। अन्तर केवल इतना ही था कि उसका अनुभव और ज्ञान निर्मला से विस्तृत था। तदनन्तर उसने अपने जीवन के कई प्रसंगों का वर्णन किया। फिर भी उसमें आत्मप्रशंसा नहीं थी। अपने अनुभवों से क्या शिक्षा ली जा सकती है, यही वह कहता था।

उसकी बातचीत से हेमलता को मालूम हुआ कि उसे बम्बई की पृथ्वी पर

पाँव रखे अभी चार दिन हुए हैं ।

इस प्रकार काफी देर चर्चा करने पर रसिक ने विदा ली ।

उसके चले जाने पर निर्मला और हेम में बातें चलीं । उनका प्रमुख विषय रसिकलाल ही था ।

"निर्मला बहन !" हेमलता ने प्रश्न किया—"आपके पतिदेव को आपके मित्रों के साथ का स्नेह-संबंध कैसा लगता है ?"

"उन्हें पसन्द आए या न आए, अपने मित्र निश्चित करने में मैं पूर्ण स्वतंत्र हूँ।"

"फिर भी पति-जाति का जब प्रश्न उपस्थित होता है तब शंका को स्थान मिलता है, ऐसा सामान्य नियम है ।"

निर्मला हँस पड़ी—"तू तो अब भी सोलहवीं सदी की छोकरी है । बीसवीं सदी में द्वेष-ईर्ष्या गुनाह माना गया है, तू जानती है ?"

"लेकिन चन्द्रशेखर की अपेक्षा रसिकलाल से आपके विचारों का अधिक मेल है, यह सच है ?"

"चन्द्रशेखर पूँजीपतियों का प्रतिनिधि है और रसिकलाल कट्टर साम्यवादी हैं।"

"तब तो स्वाभाविक रूप से आपका स्नेह और सहानुभूति रसिकलाल पर होनी चाहिए।"

"यह स्नेह और सहानुभूति केवल काम की हद तक है । इससे चन्द्रशेखर के प्रति मेरा जो कर्तव्य है, उसे मैं भूलती नहीं।"

"लेकिन आपसी मतभेदों के कारण आप दोनों में टंटा नहीं होता है ? क्षमा करना ऐसा प्रश्न पूछने के लिए।"

"कोई बात नहीं । मतभेद होने से झगड़ा होना ही चाहिए, ऐसा नियम नहीं । आज तक ऐसा कोई झगड़ा नहीं हुआ है । यह सच है कि इन दिनों उन्हें मेरे विचार और तत्संबंधी प्रवृत्तियाँ पसन्द नहीं आतीं । लेकिन इसके लिए कोई उपाय नहीं । विवाह से पूर्व ही मैंने सारी बातें स्पष्ट कर ली थीं।"

दूसरे प्रश्न पूछने की इच्छा होते हुए भी हेमलता कुछ पूछ न सकी । कुछ

देर बाद इजाज़त लेकर वह चली गई।

सीढ़ी उतरकर वह ज्योंही फ़ुटपाथ पर आई कि सामने से चन्द्रशेखर आता दिखाई दिया। हेमलता को देखते ही उसने अपनी हैट उतारकर सलाम किया। उसके मुँह से शराब की दुर्गन्ध आ रही थी और आँखें विचित्र भावना से नाच रही थीं। हेम को वहाँ से भागने की इच्छा हुई, लेकिन केवल शिष्टाचार निभाने के खातिर उससे हाथ मिलाया।

"हलो हेम!" वह अंग्रेजी में ही बोला—"आज तो तुम बहुत सुन्दर लगती हो!"

हेमलता को उस पर चिढ़ आई। लेकिन बिना कुछ बोले वह अपना हाथ छुड़ाने लगी। चन्द्रशेखर ने हाथ न छोड़ा।

"मुझे जाने दीजिए।" हेमलता ने चिढ़कर कहा।

"अब रुको भी।" यों कहकर चन्द्रशेखर ने अपना मुँह उसके मुँह के पास बढ़ाया।

लेकिन हेमलता ने अपना मुँह दूर कर लिया। फिर घृणा से बोली—"मुझे जाने भी दोगे या बुलाऊँ निर्मला बहन को?"

निर्मला का नाम सुनते ही चन्द्रशेखर डर गया और हेमलता का हाथ छोड़ दिया। इस प्रकार उसका रास्ता खुल गया और हेमलता वेगपूर्ण जाने लगी।

चन्द्रशेखर ऊपर गया। निर्मला इस समय आवश्यक कागजात देख रही थी। चन्द्रशेखर के आते ही उसने नजरें उठाईं।

"क्यों आज इतनी जल्दी घर चली आई?" चन्द्रशेखर ने रोब से कहा। फिर वह कटाक्ष में बोला—"आज रसिकलाल से मिलने नहीं गई थी?"

"वह स्वयं आज यहाँ आया था।" निर्मला ने शान्ति से उत्तर दिया।

"ओहो! बड़ी कृपा की उसने!" चन्द्रशेखर बोलने लगा—"हाँ, अब किस राज्य पर चढ़ाई करनी है? स्वराज्य कि परराज्य?"

चन्द्रशेखर की बड़बड़ बढ़ रही थी। लेकिन उसके प्रति दुर्लक्ष कर निर्मला बोली—"अब खाने के लिए बैठोगे? इस समय यही आवश्यक है।"

"रसिक को खाने पर क्यों नहीं बुलाया? मैं आ जाऊँगा, यह जान कर ह

उसे जल्दी-जल्दी रवाना कर दिया ?"

"ऐसा बोलना आपको शोभा नहीं देता ।" निर्मला कुछ कड़ाई से बोली।

"मुझे नहीं खाना आज ?" यों कहकर चन्द्रशेखर अपने कमरे में चला गया।

निर्मला ने अब सभी कागज व्यवस्थित रूप में रख दिए। फाइलें ठीक से जमा दीं, इन सबको आलमारी में बन्दकर वह रसोई की ओर जाने लगी। किन्तु इतने में कुछ विचार आया और वह चन्द्रशेखर के कमरे की ओर बढ़ी।

चन्द्रशेखर इस समय आरामकुर्सी पर लेटे-लेटे कुछ सोच रहा था। इतने में निर्मला उसके पास आकर खड़ी हो गई।

"तबीयत ठीक नहीं क्या ?" उसने पूछा। पहले तो चन्द्रशेखर ने कोई जवाब न दिया। कुछ देर रुककर उसने कहा—"आज ही यह प्रश्न पूछने का मन हो आया ?"

"मान लो कि समझने में देर हो गई। लेकिन आपको क्या होता है ? साफ-साफ कहने में क्या ऐतराज है ?"

"कहने से क्या लाभ ? इससे तुम सुधरोगी थोड़े ही ? तनिक अन्य लोगों के घर देखो। क्या सबका गृह-सुख ऐसा ही होता है ? अपार धन कमाता हूँ, फिर भी मुझे सुख नहीं। काम पर से जल्दी-जल्दी घर आता हूँ तो यहाँ आपका ही पता नहीं रहता। और यहाँ हों भी तो कागजों के बीच ! या किसी मवाली से बातें कर रही हो, यह देखकर मेरे दिल पर क्या गुजरती होगी, इसका तुझे खयाल है ?"

"हाँ, खयाल है।" समीप की कुर्सी पर बैठकर निर्मला ने निःसंकोच कहा—"आपकी धारणा यह है कि आपके दफ्तर से आते ही आपके सम्मुख हाथ में पानी का लोटा थामे आपकी पत्नी, मुस्कराती, लजाती हुई आये, तब वह आपको सुखदायिनी लगेगी ! और गोद में आधा दर्जन बच्चे रो रहे हों... "

"हाँ !! तू क्या जाने संतति-सुख को ?" दीर्घ साँस लेकर चन्द्रशेखर बोला।

निर्मला ने अब सिगरेट का कश खींचकर कहा—"मेरे सुख में बाधा बननेवाले सुख को मैं सुख नहीं मानती। क्या करने हैं बच्चे ? हम अपने

को ही नहीं सँभाल पाते। फिर बच्चों के पीछे कौन जाएगा ? मुझे तो अपना साध्य ही महत्वपूर्ण लगता है।"

चन्द्रशेखर की आँखों के सामने इस समय भूतकाल का एक चित्र उपस्थित हुआ। वह रूप ! अपने सौन्दर्य से प्रकाशमान रूप रमणी ! उसके हाथ में मासूम बालक ! उस बालक को अपनी गोद में देने पर उपस्थित हृदयद्रावक प्रसंग ! यह सब इस समय उसके सामने उपस्थित हुआ। उस रमणी की विनती का उसे स्मरण हो आया।—"इस तुम्हारे प्रिय बच्चे के लिए तो मेरी बात मानो...." फिर भी उसका दिल नहीं पसीजा और उस बालक को छोड़कर स्वयं चला आया था ! और आज अपने ही सामने निर्लज्जतापूर्वक धूम्रपान कर रही अर्वाचीन तरुणी !! खुद की पत्नी है फिर भी उसे सन्तति नहीं चाहिए....

वह मन-ही-मन इन दो प्रतिमाओं की तुलना करने लगा—

"कहाँ वह ! और कहाँ यह !!"

६३

हेमलता का साहस

७ अप्रैल, १९३४ के दिन महात्मा गांधी ने आन्दोलन बन्द करने का निवेदन प्रकाशित किया था, और उस दिन इस कथा के सभी पात्र अपने-अपने स्थान पर समय-यापन कर रहे थे।

लीलाधर और सुमति अपने गृह-संसार में मग्न थे। अरविन्द के बाद, उनके एक कन्या हुई थी। रमा काकी हेमलता के ब्याह की चिन्ता में थीं और सरला मैट्रिक की तैयारी कर रही थी।

चन्द्रशेखर और निर्मला की गृहस्थी किनारे आ रही थी। चन्द्रशेखर के लिए, उसका निरंकुश, आवारा जीवन अब भार बन गया था और यदा-कदा वह साधु हो जाने की बात सोचता रहता।

उसका खयाल था कि यदि उसे योग्य पत्नी मिली होती तो उसकी गृहस्थी सुखी होती लेकिन, निर्मला पत्नीपद के लिए अयोग्य सिद्ध हुई है। उधर भोलानाथ ने आन्दोलन में भाग लिया, बी०ए० किया, नौकरी की और एक साधारण परिवार की कन्या से विवाह कर सन्तुष्ट था। जब चन्द्रशेखर उसके घर जाता तो उसका सुखी और अपना दुःखी जीवन देखकर पीड़ित होता।

वृन्दा के दिन बीते जा रहे थे। उसे मुकुन्द का अधिकाधिक विचार आता। 'मुकुन्द मुझे स्वीकार करेगा या नहीं?'—वह सोचती रहती।

मई मास निकट आ गया था और यह मास कहाँ बिताया जाए, यह चिन्ता लीलाधर को खटक रही थी। सुमति की सलाह पर उसने सोनगाँव जाने का निश्चय किया। हेमलता को छोड़कर सबको यह खयाल पसन्द आया और सारा परिवार सोनगाँव आश्रम के लिए चल पड़ा।

इन सबको देखकर बाई को बड़ी खुशी हुई। इन दिनों आश्रम का काम बड़े जोर-शोर से चल रहा था। बाई के प्रयत्न और पहचान के कारण, आश्रम में दो लड़कियाँ और तीन महिलाएँ आकर रही थीं। इनके अतिरिक्त बड़े-बड़े लोग आश्रम में आने लगे थे।

इस मनोहर स्थान में रहकर हेम का मन भी हल्का हुआ। रमा काकी को तीर्थस्थान का लाभ मिल रहा था। वे तो सबके हाथ का भोजन ग्रहण करने लगीं और हरिजन वास में जाने तक के लिए तत्परता दिखाने लगीं तो मुकुन्द को लगा यह उसकी भारी विजय है।

अब धीरे-धीरे हेमलता ने मुकुन्द-विषयक अपना मत बदल दिया। आश्रम की बाहरी व्यवस्था और उससे भी अधिक आन्तरिक व्यवस्था देखकर वह बहुत खुश हुई। मुकुन्द का परिश्रम और उसका स्वभाव देखकर हेम के मन में उसके प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया। फिर भी सैद्धान्तिक दृष्टि से दोनों के बीच में मतभेद बना रहा। मात्र सरला ही ऐसी थी जो आश्रम में निर्द्वंद्व भाव से खेलती रहती।

हेमलता मुकुन्द की बुद्धि, कला-प्रियता और उसकी प्रतिभा देख-देखकर चकित होती गई। बचपन से ही वह सौन्दर्योपासक थी और अब बढ़ते हुए यौवन के साथ उसकी रुचि में विकास हुआ था। मुकुन्द के शारीरिक सौन्दर्य ने उसे आकर्षित किया और उसकी जिस बेढंगी पोशाक की वह टीका किया करती उसी में अब उसे अभिनवता एवं सुन्दरता दृष्टिगोचर होने लगी। और इस दृष्टि के साथ ही वह अधिक गौर से मुकुन्द को देखने लगी और उसका मन उसकी ओर अधिकाधिक आकर्षित होने लगा।

इस आकर्षण-परिवर्तन की खबर किसी को नहीं हुई।

एक मास पूरा होने आया। बम्बई लौटने की तैयारियाँ होने लगी थीं। जिस दिन लीलाधर का यह परिवार लौटनेवाला था, उस सुबह मुकुन्द पड़ौस के गाँव में चक्कर लगाने गया था। शाम को वह लौटा तो रास्ते में वर्षा से भीग गया।

उस समय हेमलता मुकुन्द के कमरे के बाहर खड़ी थी। उसे भीगा हुआ देखकर, दौड़कर टवाल ले आई और अपने हाथों मुकुन्द का शरीर पोंछने लगी। लेकिन मुकुन्द ने उसके हाथ से टवाल ले लिया, तभी शाम की प्रार्थना की घंटी बजने पर सब लोग प्रार्थना-गृह में उपस्थित हुए।

सूर्य अस्त हो गया था। और झीना अन्धकार छा गया था। शीतल मन्द वायु बह रहा था। खुले आकाश के नीचे मुकुन्द एक खाट पर लेटा था। दिन-भर के श्रम से वह थक गया था, इसलिए उसने अपनी आँखें बन्द कर ली थीं।

हेमलता धीरे-धीरे उसके पास आकर खड़ी हो गई और उसके मुख को एकटक देखने लगी। मुकुन्द के मुक्त केश मन्द वायु-लहरी से उड़ रहे थे और उसके मुख पर अपार शान्ति विराजित थी।

आसपास का सुरम्य वातारवण, स्निग्ध एकान्त और मुकुन्द का मोहक रूप —यह सब देखकर पागल बनी हेमलता ने दुस्साहस किया। वह और आगे बढ़ी और खाट पर घुटना टिकाए बैठ गई। फिर उसने धीमे से मुकुन्द का मुख चूम लिया।

इस अचानक के स्पर्श से चौंककर मुकुन्द ने आँखें खोलीं तो देखा सामने हमलता लज्जित बदन बैठी है। मुकुन्द के आश्चर्य का पार न रहा। उसकी दृष्टि में एक प्रकार का धिक्कार और मानसिक संताप था जो हेमलता से छिपा न रहा।

लज्जा, भय और अनुताप से व्याकुल बनी हेमलता विद्युत्वेग से वहाँ से चली गई।

लीलाधर सपरिवार बम्बई आया। तीन-चार दिन भी न हुए थे कि सुमति को बाई का पत्र मिला—

"यहाँ आश्रम में एक दुःखद घटना हो गई है। तुम्हारे लौट जाने के दूसरे दिन मुकुन्द भाई ने सुबह की प्रार्थना में उपस्थित व्यक्तियों को सम्बोधन कर अपनी एक भूल स्वीकार की। कहने लगे—'मुझसे अपराध होने लगा है। कोई ब्रह्मचारी सहन न कर सके, ऐसी घटना बनने लगी है। इस घटना से मेरा विशेष संबंध है अतः मैं आज से सात दिन का उपवास करूँगा। आप लोग इस घटना के विषय में पूछताछ या चर्चा न करें।' "

पत्र पढ़ने पर सुमति को एक धक्का-सा लगा। वह समझ न सकी कि अचानक क्या घटना घटी। उसने लीलाधर से चर्चा की। वह चिढ़ गया। रमा काकी को भी सुनकर दुःख हुआ।

जिसने सुना, वही कुछ-न-कुछ कहता था। मात्र एक हेमलता ही चुप थी। उसके चेहरे पर एक विचित्र भाव झलक आया था, जिसे देखकर सुमति को झीनी-सी एक शंका हुई पर वह कुछ न बोली, सारी बात मन में दबाकर रख ली।

शाम को लीलाधर घर में प्रविष्ट हो रहा था कि उसने डाक्टर को लौटते हुए देखा। सुमति सामने मिल गई। उसने बताया कि हेमलता बुखार में बेहोश पड़ी है। डाक्टर की राय में, उसे कोई आघात लगा है।

दूसरे दिन हेमलता का बुखार उतरा। लेकिन उसे थकान महसूस हो रही थी। उसका ऐसा विचित्र ज्वर देखकर रमा काकी व्याकुल हो गईं। सुमति सारी रात हेमलता के सिरहाने बैठी थी। उसने रात में हेमलता का प्रलाप सुना था, उससे उसके हृदय को ठेस लगी थी। फिर भी उसने तय किया कि हेमलता के स्वस्थ हो जाने पर वह इस प्रलाप का विवरण प्राप्त करेगी।

हेम को स्वस्थ होने में एक दिन और लग गया। तब एक दिन दोपहर सुमति ने सीधा प्रश्न किया—"हेम, तुम्हारा मन स्वस्थ हो तो, एक सवाल पूछना चाहती हूँ।"

हेमलता ने उसकी ओर देखकर स्वीकृति दी।

सुमति ने कहा—"मुझे विश्वास है कि हाल में मुकुन्द भाई ने जो उप-वास शुरू किया है, उसका कारण तुम भलीभाँति जानती हो। मैंने तुम्हारा प्रलाप सुना है। अब मुक्तमन से तुम सारी घटना कह सुनाओ।"

हेमलता भाभी का मुँह देखती रह गई। उसकी आँखों में घबराहट झलकने लगी। मुँह फीका पड़ गया। धीमे वह बोली—

"मैंने एक अपराध किया है। मैं उसे स्वीकार करती हूँ। लेकिन मेरी इच्छा न थी कि उन्हें किसी प्रकार का कष्ट हो। सिर्फ लगन के अतिरेक वश ऐसा हुआ है। अब तुम कहो, वह प्रायश्चित मैं करने को तैयार हूँ।"

इसके बाद हेमलता ने धीरे-धीरे सारी घटना कह सुनाई। जिसे सुनकर सुमति को दुःख तो हुआ परन्तु वह यह निर्णय न कर सकी कि हेम को, कितने अंश तक अपराधिनी ठहराया जाए। उसने रमा काकी से इसकी चर्चा न की। हाँ, लीलाधर को अवश्य सारी बात बता दी।

सुनकर लीलाधर गुस्से में भर गया। वह हेम के कमरे की ओर बढ़ा तो सुमति ने उसे रोक लिया।

लीलाधर ने रोषपूर्वक कहा—"मत रोको मुझे। मैं मुकुन्द को कौन-सा मुँह दिखाऊँगा? मेरी अपनी बहन एक साधु को ऐसे संताप में डाल दे! मैंने इसे बहुत स्वच्छंद रहने दिया, उसी का यह परिणाम है। निर्मला के पास रहकर इसने यही नया मत-वाद सीखा है?"

"बेकार बात बढ़ा रहे हैं? हेम क्या अभी बच्ची नहीं है? कभी-कभी भूल हो जाती है। तुम अपना पिछला जीवन तो जरा याद करो!"

लीलाधर अब कुछ शान्त हुआ। बोला—"मैं जानता हूँ, हेमलता सौन्दर्य की पुजारिन है। रोमान्स उसके स्वभाव में है। लेकिन, इसके लिए उसे दूसरा कोई पुरुष न मिला? इस आन्दोलन में कई युगल प्रेमियों ने विवाह कर लिये, इसने भी यही मार्ग अपनाया होता! और अपनी बराबरी के किसी पुरुष से यह खेल खेला होता!"

इस समय सुमति ने युक्ति से काम लिया और इधर-उधर की बातों में लगाकर कुछ समय रोक लिया। लीलाधर हेमलता को दण्ड देने की बात

भूल गया। लेकिन, मुकुन्द से माफी माँगने के लिए सोनगाँव जाने की उसकी इच्छा हुई। उसने सोचा कि चाहे जिस प्रकार उपवास बन्द करवाना चाहिए।

सोनगाँव जाने के पहले लीलाधर हेम से मिला। सुमति की सीख के बावजूद भी, उसके मुख से कठोर शब्द निकल ही गए। और हेमलता नीचा सिर किए चुपचाप सुनती रही।

सोनगाँव पहुँचते ही, मुकुन्द के सामने लीलाधर की हृदयवेदना बाँध तोड़-कर, बह निकली। उसे अश्रु-मुख से उपवास छोड़ने और क्षमा कर देने की प्रार्थना की।

सुनकर मुकुन्द हँस दिया—"तुम व्यर्थ ही परेशान होते हो। हेमलता के विषय में इतना कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। अवश्य, मुझमें कोई कमी या पाप है कि जिसके कारण हेमलता के मन में ऐसा मोह उपजा। इस उप-वास से मेरी अन्तःशुद्धि होगी। मैं हेम पर रुष्ट नहीं, यह दुःख की बात है कि वह बीमार पड़ गई।"

वह लीलाधर से बात कर रहा था। और उसे वर्षों पूर्व की घटना याद आ रही थी जब हेमलता ने उसे पहले-पहल देखा था। तब भी वह मुकुन्द की शारीरिक सुन्दरता पर मुग्ध हुई थी और उसने मुकुन्द का चुम्बन लिया था; लेकिन वह बात अलग थी, उस समय हेम फ्राक पहनती थी, नासमझ लड़की थी, किन्तु आज....?

जिस दिन मुकुन्द का उपवास पूरा हुआ उसने एक छोटा-सा प्रवचन दिया। बड़ी सावधानी से उसने कई बातें समझाई। लेकिन लीलाधर का आश्रम में अचानक आना, हेम की बीमारी और दूसरे कई स्फुट सूत्रों को पकड़-कर जिज्ञासु लोगों ने तर्क-वितर्क द्वारा मुकुन्द के उपवास का असली कारण जान लिया।

उस समय सुमति का पत्र लीलाधर ने पढ़ा—"तुम्हारे जाने के दो दिन बाद हेमलता घर छोड़कर मलवली आश्रम में चली आई। वह एक पत्र छोड़ गई है। उसे आपके शब्दों से बहुत दुःख हुआ है। दूसरी ओर उसने इस

बात पर खेद प्रकट किया है कि उसके कारण मुकुन्द-जैसे संत पुरुष को नाहक संताप हुआ। उसने प्रायश्चित करने और तुम दोनों से क्षमा-याचना करने का निश्चय प्रकट किया है।"

इतना पढ़कर लीलाधर दिग्मूढ़ बन गया; लेकिन मुकुन्द ने उसे शान्ति पूर्वक कहा—"जो हुआ सो हुआ। हेम अपनी मर्जी से, मनःशान्ति के लिए उस आश्रम में गई है, उसे वहीं रहने दो। जब ऊब जाएगी तो घर लौट आएगी।"

लीलाधर जब बम्बई के लिए रवाना हुआ तो रास्ते में वह मलवली उतरा। उसने हेम को बहुत समझाया, परन्तु लड़की ने अपना हठ न छोड़ा। अन्त में उसे वहीं रहने देकर, लीलाधर को अकेले ही लौटना पड़ा।

रमा काकी के दुःख का पार न रहा—"मेरी किस्मत में सुख लिखा ही नहीं है।" उनकी यह धारणा दृढ़ हो गई; लेकिन कोई किसी के लिए क्या कर सकता है।

६४
अनपेक्षित पत्र

सावन महीने के कृष्णपक्ष की रात। मूसलधार वर्षा हो रही थी। बीच-बीच में बिजली चमक उठती। शहरी लोग अपने-अपने घर के दरवाजे बन्द किए निद्राधीन थे।

वृन्दा भी अपनी कोठरी में लेटी थी। बिछौने पर तड़प रही थी। इस समय उसके अन्तर में अनन्त वेदना जगी थी। नासिक में, इन दिनों वह सत्यकाम के साथ अकेली रहती थी। शरद के चले जाने पर अब उसके पास अपना कहलाने वाला कोई न था।

"इसे पति ने छोड़ दिया है।" लोगों में उसके विषय में ऐसी चर्चा फैल गई थी और गाँव की स्त्रियाँ शंका भरे नयनों से उसे देखती थीं, तो दूसरी ओर कामान्ध पुरुष लालसा-भरी नजरों से उसे ताकते। ज्यों-ज्यों उसे पूर्व स्मृतियाँ आतीं त्यों-त्यों उसकी उदास बेचैनी बढ़ती जाती।

सत्यकाम उसके पास सोया था। वृन्दा ने उसे कभी प्यार न किया था। बाहर बादल बरस रहे थे, लेकिन वृन्दा के दिल में निराशा के अंगारे धधक रहे थे। अब तो उसकी जीभ पर मुकुन्द का नाम रहता था, परन्तु इतनी हिम्मत न आई थी कि उसके पास चली जाए—"मैं जाऊँ और मुकुन्द तिरस्कार-पूर्वक निकाल दे, तो....?" और एक बार मुकुन्द को त्याग देने पर, उसके

संसार की होली जला देने पर, उसके पास कौन-सा मुँह लेकर वृन्दा जाए ?

बार-बार ऐसे विचार उसे सताने लगे। कभी मन में प्रश्न उठता, जिस प्रकार मैं मुकुन्द को याद करती हूँ, उस प्रकार क्या वे भी मुझे याद करते होंगे ?

इन्हीं विचारों में वह उलझी थी कि पड़ौस की कोठरी का दरवाजा खुला और उसके द्वार पर थपकी सुनाई दी। इतनी रात गए कौन आ सकता है ? कुछ दूर हटकर, एक कोठरी में मोरोबा नामक गुण्डा रहता है। वृन्दा जब से आई, मोरोबा की नजर उस पर है। उसने बड़ा प्रयत्न किया कि वृन्दा उसके जाल में बँध जाए, लेकिन वृन्दा ने उसकी ओर देखा तक नहीं।

तभी परिचित स्त्री-कण्ठ सुनाई दिया—"वृन्दा बहन, जग रही हो ?"

"कौन है ?"

"मैं हूँ, अन्नपूर्णा। मेरी लड़की को फिट आ गया है और वह हाथ-पैर पटक रही है। तुम जरा आओगी बहन ?"

अन्नपूर्णा बाई के स्वर में विषाद था। वृन्दा तुरन्त उठ खड़ी हुई। और उसने जाकर लड़की की सेवा की।

जब वह लौटी, तब एक बज रहा था। गहरा अन्धकार फैला था। उसे शंका हुई कि कोई मेरा पीछा कर रहा है और शीघ्र ही उसने मुड़कर देखा, मोरोबा ने उसकी साड़ी का छोर पकड़ लिया था। वृन्दा ने झटका देकर छुड़ा लिया और क्रोध से उसे देखा।

मोरोबा ने अब किसी पुरानी प्रेमपोथी में पढ़े, इन शब्दों में वृन्दा को सम्बोधन किया—"ऐ सुन्दरि, इस रमणीय रात्रि में अभिसारिका के रूप में तू...."

"दूर हट, मुए, अपना मुँह काला कर।" और वृन्दा ने कोठरी में जाकर, भीतर से कड़ी लगा ली।

सुबह सूर्योदय होने पर भी वृन्दा उठ न सकी। उसका शरीर काँप रहा था। जब सत्यकाम शाला जाने लगा तो वह बोली—"आज मैं काम पर न जा सकूँगी। यह पत्र चपरासी को दे देना।"

फिर वह दिन-भर बिछौने पर पड़ी रही और डाकिया आया। एक पत्र फेंक गया। हेमलता का यह पत्र था। उसने सेवाश्रम, मलवली से अपना परिचय देते हुए लिखा था कि किस प्रकार उसने मुकुन्द-जैसे महापुरुष को मोह-पाश में लेने का प्रयत्न किया और किस प्रकार उसने इस अपराधिनी को क्षमा कर दिया और स्वयं सात दिन का व्रत लिया। और अब, वही हेमलता जो मुकुन्द की मजाक करती थी उसकी महानता की भक्त है और स्वयं प्रायश्चित करने के लिए आश्रम में आई है। मुकुन्द की ही नहीं, वह वृन्दा की भी अपराधिनी है, इसलिए उससे भी क्षमा माँगती है। अन्त में क्षमा और पत्रोत्तर के लिए प्रार्थना की गई थी।

पत्र पढ़कर वृन्दा हतबुद्धि-सी खड़ी रह गई। हेमलता ने अपना अपराध कितनी सरलता से स्वीकार कर लिया है! उसके मन में हेम के प्रति आदर भाव जाग्रत हुआ और अपने-आप पर शर्म आने लगी; लेकिन इस अनुभव का प्रतिफल विचित्र रहा!

अब वृन्दा के मन में एक प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। उसने निश्चय किया—"अब मैं उनके पास अवश्य जाऊँगी, चाहे वे मुझे आश्रम से निकाल दें। तब मैं बाहर किसी पेड़ के नीचे पड़ी रहकर उनकी दिव्य मूर्ति के दर्शन करूँगी और सन्तोष मानूँगी।"

दोपहर की छुट्टी में जब सत्यकाम घर आया तो उसने देखा कि माँ बाहर गाँव जाने की तैयारी कर रही है। बोली—"सत्यकाम, शाला जाकर अपनी पोथी और स्लेट ले आ, हम आज ही बाहर गाँव जाएँगे।"

सत्यकाम के मन में एक अनभूत भावना का उदय हुआ। आज तक वह कभी गाँव की सीमा से बाहर नहीं निकला था। आज अवसर आया है, जानकर, उसे अमित आनन्द हुआ।

६५

पुनरागमन

आश्रम में सान्ध्य-प्रार्थना का घंटा बजने लगा। रसोईघर का काम पूरा कर बाई प्रार्थना-स्थल जाने की तैयारी कर रही थी। तभी चौक में एक बैल-गाड़ी आकर रुकी और उसमें से एक स्त्री और एक बालक नीचे उतरे। बाई ने इन्हें कौतूहलपूर्वक देखा।

इतने में आश्रम की एक लड़की दौड़ती हुई आई—"बाई, बाई! मेहमान आए हैं। मुकुन्द भाई से मिलना चाहते हैं।"

बाई उनके पास गई और स्वागत-सत्कार किया। वृन्दा का सौन्दर्य और उस सौन्दर्य पर छाई हुई करुणा की छाया बाई की नज़रों से छिपी न रही। उसने कहा कि प्रार्थना के बाद वह आश्रम के संचालक से मिल सकती है।

वृन्दा ने स्वीकार किया और सत्यकाम के साथ वह प्रार्थना-स्थल पर पहुँची। वहाँ सभी स्त्री-पुरुष उपस्थित थे। शान्ति थी। तभी मुकुन्द ने दर्शन दिए। आज कई वर्षों बाद वृन्दा ने उसे देखा और इससे उसका हृदय भर आया—"एक समय था, जब मैं जिनकी हृदय-स्वामिनी और गृह-लक्ष्मी थी, वही हैं, ये मेरे नाथ! जिन्होंने मुझे कल्याण के निर्मल पथ पर ले जाने का सतत प्रयत्न किया, वही हैं ये मुकुन्द! आज भी ये उतने ही धीर, विचारशील और शान्त दिखाई दे रहे हैं।"

इस विचार के साथ वृन्दा की आँखों से आँसू बहते रहे। पास के लोगों की लाज से वह सिसकियाँ न ले सकी।

प्रार्थना पूरी होने पर, मुकुन्द अपने कमरे में जाकर ध्यानमग्न हो गया। बाई वृन्दा के पास आकर बोली—"आप उनके पास जा सकती हैं। परन्तु उनका ध्यान भंग नहीं होना चाहिए। इस लड़के को यहीं रहने दो।"

सत्यकाम मंजुला नाम की लड़की के साथ खेलने लगा और सिन्धु वृन्दा के साथ पंचवटी की ओर चली। दूर से स्थान दिखाकर सिन्धु गीत गुनगुनाती लौट गई। चारों ओर निस्सीम शान्ति। मंद-मंद वायु कि पत्ते तक न हिलें और उनके हलन-चलन से मुकुन्द की समाधि भंग न हो जाए। सूर्य अस्ताचल चले गए थे। आकाश में अभ्र फैले थे। फूलों की गंध से वातावरण सुरभित था। मंद-मंद गति से चलती वृन्दा पंचवटी के पास पहुँची। सामने शिलाखंड पर मुकुन्द ध्यानस्थ अवस्था में बैठा था। बड़े जतन पर वृन्दा में हिम्मत आई। वह एकदम निकट जा पहुँची। नमन किया और गद्गद कंठ से बोली—"मैं, वृन्दा, यहाँ आई हूँ, स्वामी!"

मुकुन्द ने अपने नेत्र खोले और स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा—"कौन? वृन्दा! आ गई तुम? बहुत अच्छा हुआ, मैं बहुत दिनों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।"

सुनकर वृन्दा स्तब्ध रह गई। इस वाक्य का क्या अर्थ है, वह विचारने लगी। कुछ देर स्तब्धता रही। फिर वही बोल उठी—"तुमसे याचना करूँ, इस योग्य तो मैं नहीं रही, नाथ। पापिन हूँ, मैं अभागिन—" उसका हृदय भर आया।

मुकुन्द ने उसे शान्त करते हुए, मीठे स्वर में कहा—"व्यर्थ ही अपने को दोष न दो, वृन्दा! इस समय तुम किसी न्यायालय में नहीं खड़ी हो। मैंने किसी भी घटना या परिस्थिति में तुम्हारा त्याग न करने की प्रतिज्ञा ली है। आज फिर कहता हूँ, तुम मेरी पत्नी हो। आज भी मैंने तुमसे यह अधिकार नहीं छीना है। आओ, यहाँ मेरे पास बैठो।"

मुकुन्द के मुँह से ऐसा शब्द सुनकर, वृन्दा को आश्चर्य हुआ। हर्ष, विमर्ष

और विस्मयपूर्वक वह आगे बढ़ी और मुकुन्द के चरणों का स्पर्श किया। उसके आँसुओं से मुकुन्द के चरणों का प्रक्षालन हुआ—"आप महान् हैं, उदार हैं! मैं आपकी कृपा के योग्य भी नहीं रही, नाथ!" कम्पित स्वर में वह बोली।

फिर पूर्व की भाँति, वृन्दा के मस्तक पर हौले-हौले हाथ फेरते हुए, मुकुन्द कहने लगा—"आज कई वर्षों से मैं तुम्हारी राह देख रहा था। जब तुम मुझे छोड़कर चली गईं, तब मुझे बड़ा दुःख हुआ। मुझे यही प्रतीत हुआ कि मैं कितना स्वार्थी हूँ। मेरा दिल कितना अशुद्ध है और शायद इसीलिए तुम मुझ पर विश्वास न कर सकीं। यदि मैंने तुम्हें पहले ही अधिक ममत्वपूर्वक प्यार दिया होता, तो मुझे विश्वास है, तुम यों छोड़कर नहीं चली जातीं। अथवा कम-से-कम अपने मन की माँग तो मुझे बता देतीं। तुम्हें इस दुनिया में असहाय और अकेली रहना पड़ा है। लेकिन मैं मन-ही-मन रोज दुःखी होता था। और प्रार्थना करता था, 'हे ईश्वर, मेरे हृदय को शुद्ध बनाओ! आज जिस सेवा-कार्य को मैं तेरी कृपा से चला रहा हूँ, वह वृन्दा के सहयोग-बिना पूर्ण न होगा। ईश्वर की कृपा है कि तुम मिलीं।" इतना कहकर मुकुन्द आनन्दातिरेक में नयन मूँदे, प्रशान्त बैठा रहा।

वायु के झकोरों से वृक्षों के पत्ते मर-मर कर उठे। मुकुन्द की आकृति और वचनावली का रस-पान कर, वृन्दा के नेत्र और कर्ण मानो अनन्त शान्ति का अनुभव कर रहे थे। मुकुन्द ने वृन्दा के अब तक के जीवन के विषय में कोई उत्कंठा प्रदर्शित नहीं की; लेकिन वह स्वयम् ही अपना हाल सुनाने के लिए उतावली थी।

अचानक कुछ याद आया हो, इस प्रकार मुकुन्द ने पूछा—"सत्यकाम कहाँ है?"

यह सुनकर, वृन्दा का मुँह उतर गया। रुकते-रुकते बोली—"साथ में लेती आई हूँ। आश्रम में मंजुला के पास खेल रहा है।"

"उसे यहाँ क्यों नहीं ले आईं? चलो, हम ही चलें अब।"

वे दोनों उठें, तब तक शिवा सत्यकाम को वहाँ ले आया। आकर सत्य-

काम माँ से चिपट गया, लेकिन वृन्दा ने, हमेशा की तरह, उसे धकेल दिया—"चल, दूर रह। मुझसे मत चिपट।"

बेचारा सत्यकाम यह देख-सुनकर विमूढ़ बन गया। मुकुन्द पल-भर मे सब-कुछ समझ गया। उसने वृन्दा से बहुत धीमे शब्दों में कहा—"इस निर्दोष बालक का यों तिरस्कार न करो, वृन्दा। माता-पिता के पापों के लिए सन्तान उत्तरदायी नहीं होती। ईश्वर के इस बच्चे पर स्नेह रखो। कल्याण होगा।"

जिस समय मुकुन्द यह कह रहा था, उस समय सत्यकाम उसकी ओर निर्निमेष-दृष्टि से देख रहा था। उसने वृन्दा से पूछा—माँ, ये कौन हैं?"

वृन्दा ने कोई उत्तर न दिया, परन्तु मुकुन्द बोला—"बेटा, मैं तुम्हारा पिता हूँ। आओ मेरे पास।"

"मेरे पिता!" प्रसन्न होकर सत्यकाम ने पुकारा और मुकुन्द की फैली हुई बाँहों से लिपट गया।

उस दीन बालक के चेहरे पर आनन्द और उमंग की लहर चमक रही थी, परन्तु आँखों से आँसू बह रहे थे। इस प्रकार परस्परविरोधी भावों से प्रति-बिम्बित बालक का चेहरा वर्षाकालीन सूर्य के सामन शोभित हो रहा था।

६६

बन्धन-मुक्ति

एक वर्ष बीत गया। बोरी बंदर स्टेशन पर कई मज़दूर जमा थे। उनके हाथों में लाल झण्डे और पुष्पहार थे। प्लेटफार्म पर गाड़ी के आते ही उपस्थित मज़दूरों ने साम्यवादी सूत्रों का उच्चार किया और जय के नारे लगाए। एक डिब्बे में से निर्मला ने प्लेटफार्म पर पैर रखा। अब वह कुछ दुबली और फीकी-फीकी लगती थी, परन्तु चेहरे पर पहले जैसा ही तेज था।

कार में रसिक स्टीअरिंग थामकर बैठा और निर्मला उसके पास बैठी। कार चली और दोनों भूत-भविष्य के विषय में बातचीत करने लगे।

चन्द्रशेखर बैठक में टाइम्स पढ़ रहा था। निर्मला को देखकर उसने कहा —"आई तुम ?"

ऐसे ठंडे स्वागत का निर्मला ने वैसा ही जवाब दिया। और कुर्सी पर बैठ गई। कुछ देर औपचारिक वार्ता के बाद दोनों लंच के लिए गए।

भोजन के समय भी चन्द्रशेखर गम्भीर बना रहा। फिर कुछ देर चुप रहकर बोला—"अब मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ। तुम मानों या न मानों, लेकिन तुम मेरी पत्नी हो। हमारा ब्याह हुए बरसों बीत गए फिर भी हमारी गृहस्थी सुख देने के बजाय दुःख का भार बन गई है। मुझे यह पसन्द नहीं।

मुझे शान्ति चाहिए। घर का सुख चाहिए, सन्तान चाहिए। अब तक तो मैंने तुम्हें अपनी इच्छानुसार चलने दिया है, परन्तु आज से मैं वैसा न करूँगा। मेरे मन में तुम्हारे व्यवहार, तौर-तरीके और विचारों के लिए एक प्रकार की घृणा भर गई है। तुम्हारे इस तूफ़ानी कार्यक्रम का मेरे व्यवसाय पर गहरा असर पड़ा है, इसलिए आज मैं तुम्हें साफ कह देता हूँ कि अब तुम्हारे आन्दोलनें, संगठन, सभा-सोसायटी और जुलूस एकदम बन्द हो जाने चाहिए। पति के रूप में मेरा तुम्हें यही हुक्म है....किन्तु तुम कुछ बोलती क्यों नहीं? और मैं भी तुम्हारी कोई बात नहीं सुनना चाहता। मेरी इजाज़त के बिना तुम घर से बाहर नहीं जाओगी, समझी? मैं क्या कह रहा हूँ? इसका बराबर ध्यान रखना, ना नतीजा अच्छा न होगा।"

चन्द्रशेखर कहता जा रहा था और निर्मला वक्र एवं रुष्ट दृष्टि से उसे ताक रही थी। जब उसकी बारी आई तो क्रोध से बोली—"तुम क्या कहना चाहते हो? हम सोलहवीं सदी में नहीं रह रहे हैं।" इसके उत्तर में चन्द्रशेखर रूस और साम्यवाद को कोसता हुआ बाहर चला गया।

चन्द्रशेखर के बाहर जाने पर निर्मला भी बाहर निकली। परेल में मजदूर-संघ कार्यालय में रसिक बैठा कागजों की जाँच कर रहा था। उसने निर्मला का स्वागत किया। वह बोली—"मेरी अनुपस्थिति में आपने सभी कार्य सुचारु रूप से चलाया इसलिए धन्यवाद देती हूँ।" फिर रसिक ने बताया कि हिसाब नहीं मिल रहा है। सदोबा ने चन्द्रशेखर के चक्कर में आकर हिसाब में गड़बड़ की और तुम्हें बदनाम करने के लिए दोनों ने इस षड्यंत्र की रचना की। मुझे क्षमा करना, तुम्हारे आग्रह पर ही मैं यह बात कह रहा हूँ।

कुछ देर बाद रसिक फिर कहने लगा—"चन्द्रशेखर ने सदोबा को नौकरी तो दिलाई नहीं। हाँ, सदोबा की एक जवान छोकरी थी, नशे में बेसुध चन्द्र-शेखर ने उससे बलात्कार किया। यह सारी कथा बड़ी करुण है। छोकरी का भाई उसे लेकर हमारे कार्यालय में आया और अपना बयान दिया। मैंने सदोबा को भी बुलवाया और सारा हाल सुनकर, हिसाब के रुपयों का प्रबन्ध किया और

लड़की को आश्वासन दिया।"

निर्मला बोली—"मैंने भी सुना था यह आदमी, चन्द्रशेखर बड़ा भयंकर है।"

"मुझे उसका एक और काला कारनामा मालूम है, लेकिन मुंह से कहूँ तो मर्यादा का उल्लंघन होगा।,

न मला ने मौन रहकर पूछा—"सदोबा और उस लड़की से भेंट हो सकती है?"

"हाँ, हाँ, जरूर।"

"चलो तो, अभी चलते हैं।"

दोनों चल पड़े।

शाम के छः बजे बूट की चर्रमर्र आवाज करता हुआ चन्द्रशेखर घर में आया। उसने अभी ही मदिरा के दो पेग चढ़ाए थे सो उसकी आँखें लाल सुर्ख हो रही थीं। निर्मला बैठक में एक आरामकुर्सी पर बैठी सिगरेट पी रही थी। चन्द्रशेखर ने उसे देखकर निःश्वास लिया और क्रोधपूर्वक गर्जना की—"मैंने तुझे सख्त चेतावनी दी थी कि घर से बाहर न निकलना।"

"यह मेरी मर्जी है।"

"इस घर में मेरे सिवाय किसी की मर्जी नहीं चल सकती।"—चन्द्रशेखर अट्टहास कर बोला। "रसिकलाल से आश्वासन लेकर आई है क्या! लेकिन भूलती है। कानून से तू मेरी औरत है, मेरी गुलाम है।"

निर्मला सिगरेट का टुकड़ा फेंककर उठ खड़ी हुई और कमर पर दोनों हाथ रखकर, चन्द्रशेखर को तीव्र एवं बेढब दृष्टि से देखती रही—"कौन है तुम्हारी औरत? मैं जल्दी ही तलाक देती हूँ।"

क्या कहा?"

निर्मला ने एक कदम आगे बढ़कर कहा—"क्या तुम्हारा यह खयाल है कि पत्नी पति की गुलाम है? इस खयाल को जितना जल्द छोड़ दो उतना अच्छा है, वरना मैं तुम्हें एक सबक सिखाऊँगी। तुम में पति बनने की लियाकत

६७

पश्चाताप

दारुण दुःख, भयंकर अपमान और घोर निराशा के कारण चन्द्रशेखर का सिर चकरा रहा था। आज तक उसने जितने मनोरथ बाँधे थे, वे सब छिन्न-भिन्न होकर धरती पर पड़े थे। उसने पैसे को परमेश्वर माना था, लेकिन आज वही पैसा उसके काम न आया। इसी भ्रमित अवस्था में वह घर से निकल पड़ा और निरुद्देश्य चलता रहा। जब उसे सुधि आई तो देखा कि वह अपने छोटे भाई भोलानाथ के द्वार पर खड़ा है।

भोलानाथ ने उसे कुर्सी पर बिठाया और सत्कार किया। भोला और उसकी पत्नी शान्ता पंढरपुर और सोनगाँव की यात्रा से लौटे थे। चन्द्रशेखर के पूछने पर शान्ता कहने लगी—"हमें सोनगाँव का आश्रम देखकर अत्यन्त आनन्द हुआ। ऐसी संस्था मैंने कहीं नहीं देखी। आश्रम के संचालक बड़े सज्जन और त्यागी हैं। आश्रम क्या है, धरती का स्वर्ग। वहाँ की व्यवस्थापिका 'बाई' है। वे इनकी (भोलानाथ) पहचान के हैं। वहाँ स्त्री-पुरुषों को समान अधिकार दिए गए हैं और इसके लिए आश्रम संचालक 'भाई' और उनकी पत्नी 'बहन' को श्रेय मिलना चाहिए। उनका एक सुन्दर लड़का है। क्या कहूँ, कितना चालाक, और चतुर है! है तो छोटा-सा लेकिन आश्रम के नियमों का पूरा पालन करता है।"

कत नहीं। तुम बेईमान हो और विश्वासघाती हो, यह मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया है।"

"तू मुझे बेईमान कहती है?"

"कौए को कौआ कहने में कोई गलती नहीं। तुम्हारा गुस्सा बेकार है। अपने मन में तुम यह भलीभाँति जानते हो कि तुम कितने बड़े व्यभिचारी हो। मेरे मुँह से क्यों कहलाते हो?"

"अपनी जीभ सँभाल रंडी।"

निर्मला ने तुरन्त एक जोर का थप्पड़ लगाया और बोली—"तुम्हारे विश्वासघात का पूरा सबूत है मेरे पास। तुमने सदोबा की गरीब लड़की से बलात्कार किया, उसका प्रमाण है। तुमने यूनियन के हिसाब में घोटाला किया।"

अब चन्द्रशेखर का होश ठीक हुआ। उसने देखा कि यह ऐसी-वैसी औरत नहीं है। इसलिए उसने अपनी बात का स्वर बदला—"मैंने हिसाब की गड़बड़ी इसलिए की कि मजदूर आन्दोलन से तुम्हारा मन हट जाए और घरबार की ओर लग जाए! मेरा तुम पर अनन्त प्रेम है। तुम्हारे लिए मैंने कैसी-कैसी कल्पनाएँ की थीं, लेकिन तुमने मेरी आशा की मीनारें ढहा दीं।"

लेकिन निर्मला इस फन्दे में न आई। दोनों बड़ी देर तक बहस करते रहे। चन्द्रशेखर ने फिर से नम्रता दिखाई—"अब हमें फिर से नया जीवन शुरू करना चाहिए। पिछली बातें भूल जाओ निर्मला।"

"वह वक्त हाथ से निकल गया है चन्द्रशेखर।" निर्मला ने उसके भ्रम का जाल तोड़ते हुए कहा—'तुम्हारा दिल काला है, मन मैला है। वह अपनी आदत छोड़ने वाला नहीं। तुम्हारा हृदय परिवर्तन होगा, ऐसी आशा रखने वाली गांधीजी की शिष्या मैं नहीं हूँ यह अच्छी तरह समझ लेना।"

चन्द्रशेखर ने चिढ़कर कहा—"यदि तू मेरा कहना नहीं मानती है तो याद रखना मैं भयंकर बदला लूँगा।"

"मालूम है किसे धमकी दे रहे हो? आज क्या ज्यादा पी ली है? मैं तुम्हें कहे देती हूँ कि—मैं तुमसे इसी वक्त हिसाब के पन्द्रह हजार रुपए वसूल करूँगी और वसूल किए बिना एक कदम भी पीछे नहीं हटूँगी।"

झे धमकी देती है ?"

कालो, वरना मैं कोर्ट में जाती हूँ।" सुनकर चन्द्रशेखर दिग्मूढ़
सारी चालाकी, चतुराई और धोखाधड़ी तिरोहित हो गई। नशा
अब उसने निर्मला को अनुनय-विनय और प्रेम-प्रदर्शन के द्वारा
फुसलाने की काफी कोशिश की, किन्तु निर्मला ऐसी नहीं थी कि

उसे निर्मला को पन्द्रह हजार का चेक देना ही पड़ा।

।"—कहकर निर्मला ने चेक पर कब्ज़ा किया—"इसमें से पाँच
दोबा की उस लड़की को देंगे, बाकी के दस हजार यूनियन के
किए जाएँगे। आज से तुम्हारे-हमारे संबंध खत्म होते हैं।
जितना तूफान मचा सकते हो। और यह देखो, इस घर से मैं
नी हुई साड़ी लिये जाती हूँ। तुम्हारी एक पाई भी मुझे नहीं

निर्मला बड़ी दबंग चाल से दीवानखाने के बाहर चली गई।
हरेक कदम चन्द्रशेखर की छाती पर वार बनकर पड़ता

जाने पर भी चन्द्रशेखर उस दिशा में देखता रह गया।